Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक:
रमेश चंद्र

संपादक:
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक:
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

सीनियर मैनेजर विज्ञापन:
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिस्पांस:
डा. राजेंद्रपाल जैन

सीनियर ऑफीसर रिस्पांस:
शबनम अग्रवाल

रिस्पांस सहयोगी:
अशोक माथुर

प्रोडक्शन:
हरेंद्र सिंह नेगी
उदेश कुमार

अंक सज्जा
हेम ज्योतिका

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था:
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय:
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400001
फ्रेजर रोड, पटना
अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर
33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1
13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700062
'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6 डी नगामवक्कम हाई रोड, मद्रास-600034
88 महात्मागांधी रोड, बंगलूर
407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान
वर्ष : ३०, अंक : ४५९, अगस्त : १९९०

भीष्म साहनी : हीरक जयंती अंक

उपन्यासिका

५६ गणित :
श्रवणकुमार

उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि हर औरत पजैस्सिव होती है. एक बार उसके हाथ कोई आदमी लग जाये तो उसे समूचे को हड़प लेना चाहती है. उन्हें पजैस्सिवनेस से बड़ी चिढ़ है. वह अपनी पत्नी की भी इसी पजैस्सिवनेस से चिढ़ उठते हैं. हां, अक्सर जब वह मेरे साथ होते हैं तो मैं चाहती हूं, वह कहीं जायें नहीं, मेरे पास ही रहें. काश कि मैं उन्हें रोक पाती !

लेकिन सच, कैसे बंध गया हूं एक फैंस्ड, एक इतने प्रतिबद्ध व्यक्ति से, इसलिए अक्सर सोचती हूं कि मुझे उनसे अधिक की या 'संपूर्णता' की आशा नहीं करनी चाहिए.

नहीं भई, कहीं भी छुटकारा नहीं. इस अनाम तकलीफ से किसी प्रकार भी मुक्ति नहीं.

आवरण पारदर्शी:
धर्मवीर जयनर
आवरण सज्जा:
जसवीर सिंह

भीष्म साहनी की कथा-रचनाएं

१० नीली आंखें
२० वाङ् चू
३२ मनादी
३९ बबली
५१ मुआवजे

आत्मरचना

१३ जिंदगी ७५° के कोण से
१७ भीष्मजी एक नजर में

परिचर्चाएं

१९ भीष्म साहनी निर्देशकों की निगाह में :
संजय मासूम
४३ भीष्म साहनी समकालीनों की निगाह में :
देवेंद्रकुमार चौबे
५४ भीष्म साहनी नाट्यकारों की निगाह में : **सामबे**

विशिष्ट आयोजन

१८ मेरे पति भीष्म साहनी :
शीला साहनी
२९ मेरी नजर के आईने में :
से.रा. यात्री
४६ भीष्म साहनी का कथा-संसार :
राजकुमार सैनी
४८ भीष्म साहनी की कृतियां :
रमाकांत, भारत यायावर, राकुगौ.

साक्षात्कार

३५ लेखक की विडंबना यह है कि वह अपने लिखे को काट नहीं सकता :
भीष्म साहनी से महेश दर्पण की बातचीत

धारावाही आयोजन

७१ लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत
७९ पुरुषोतम :
भगवतीशरण मिश्र

स्थायी स्तंभ

४ कथा पहेली
८ आपकी बात
९ पुरस्कार

कापीराइट ©1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलम का रक्षक

'टाट का कफन' में नफीस आफरीदी ने वर्त्तमान के संदर्भ में एक लेखक या कवि की स्थिति को काफी खूबसूरती से बयां किया है. कलम की ही बदौलत आज तक कई बड़ी-बड़ी क्रांतियां, सत्ता परिवर्त्तन हुए हैं और आज कलम के एक रक्षक की मृत्यु पर उसे कंधा देनेवाले भी नहीं मिलते लेखक अपनी लेखनी से गरीबों की समस्याओं को उठाने का प्रयत्न करता है परंतु वे लोग भी उसकी भूख का ख्याल नहीं करते. अपनी लेखनी को सार्थक बनाने के लिए उसे अपने जीवन, अपनी खुशियों की बलि देनी पड़ती है. अपने सारे कीमती वक्त को वह अपनी लेखनी में स्याही बनाकर डाल देता है किंतु बदले में उसे सिर्फ लोगों की गालियां, ताने सुनने को मिलते हैं. ऐसे महान व्यक्ति को भूखों मरना पड़ता है. पागलों की भांति रहना पड़ता है. और मरने पर उसे कफन भी देनेवाला कोई नहीं रहता.

● **विजयकुमारसिंह 'अजनबी', पटना सिटी**

पाठक ही समीक्षक

आबिद सुरती का उपन्यास 'आकाश के उस पार' हिंदी स्टंट फिल्मों का-सा अस्वाभाविक और प्रभावहीन है. यह अन्य सस्ती रुचिवाली कहानी-पत्रिकाओं के ही उपयुक्त है, 'सारिका' के समान स्तरीय पत्रिका के नहीं.

'जिज्जी' उच्चकोटि की मार्मिक कथा है. कहानी के सभी चरित्रों को उदात्तता प्रदान करना, पाठकों को सत्यं, शिवं, सुंदरम् के दर्शन कराते हुए उन्हें संवेदना की उच्च भावभूमि में स्थापित करना 'अंचल' जैसे वरिष्ठ साहित्यकार के अनुरूप ही है. उर्मिला जी के चरित्र की गरिमा, उनकी सौत तक के प्रति सदाशयता अनुपम है.

'बड़े होते लोग' में आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व परिलक्षित है. परिवार में स्वार्थ और संकीर्णता अधिकतर छोटों की ओर से ही प्रदर्शित होती है, बड़े को तो बड़ा रहना ही पड़ता है.

प्यार की प्यास कितनी तीव्र होती है, फिर वह प्यार मां से मिले या किसी लड़की से, इस सत्य की स्थापना 'किराये का इंद्रधनुष' कहानी में की गयी है.

लघुकथा 'मुंह चलाना' में सुंदर हास्य एवं व्यंग्य का पुट है.

'टाट का कफन' में एक नकारात्मक चरित्र के माध्यम से बेकारी बेकार व्यक्ति का अपमानित जीवन, उसका चिढ़चिढ़ापन आदि का यथार्थ वर्णन है.

'बेटी' बेटे-बहुओं के बुढ़ापे में अलग हो जाने तथा आंख फेर लेने की घर-घर की सीधी-सादी भाषा में कहानी है. अंततः उपेक्षिता 'बेटी' ही काम आयी.

वास्तव में कहानी के उन्नयन के लिए औजारों-हथियारों, बढ़इयों, लुहारों, जमादारों अथवा 'तोता-मास्टरों' की नहीं, सहृदय एवं संवेदनाशील पाठकों एवं उनकी हार्दिक प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता है तथा किसी कहानी की उत्तमता के लिए तथाकथित समालोचना के नहीं. प्रबुद्ध पाठकों के प्रमाण-पत्र ही पर्याप्त हैं जो कहानी में निहित उदात्त भावनाओं के आधार पर प्रदत्त हों..नुस्खों से अच्छी कहानी नहीं लिखी जाती.

● **नंदकिशोर जैन, लखनऊ**

रचना के पार

संवेदना की जमीन से उपजी एक सार्थक भाव प्रवण कहानी 'आकाश के उस पार' निश्चित रूप में आबिद सुरती के मानवीय सरोकार को उजागर करती है, परंतु इस कहानी ने कुछ प्रश्न खड़े किये हैं जो सिर्फ रचनाकार के सामने न होकर व्यापक साझेदारी की मांग करते हैं.

प्रश्न यह है कि अंजु यदि मर न गयी होती, या वह फूलते गुब्बारे की तरह बे औरत शह न होकर एक सुंदर और सामान्य पत्नी होती तो क्या नायक के मन में नील के प्रति जन्मी गहरी निरुद्वत भावना को नकारा जा सकता था? या उस स्थिति में नील की वह कठिन त्रासदी अर्थहीन हो जाती जिसे वह पल-पल अपने भीतर अकेले में जी रही थी. मुझे नहीं लगता कि नायक के मन में नील के दर्द से अनजाने जुड़ाव और उस जुड़ाव के कारण उपजा प्रेम, मात्र उस रिक्तता का परिणाम था जो अंजु के फुसफुस होने के कारण पैदा हुई थी. तो फिर नील की त्रासदी में हिस्सेदार होने की जरूरत महसूस करने की प्रक्रिया में, पत्नी तत्व की अनुपस्थिति क्यों जरूरी है या इस रचना में हो गयी है?

मेरे समूचे विचार तंत्र में जरूरत एक परिवर्तन भरी दृष्टि की है जो निश्चित रूप से प्रेम तत्व की ऊर्जा से फूटेगी जैसा आबिद ने पकड़ा है, परंतु इस दृष्टि के तहत समाज की बहुत-सी व्यवस्थाओं को, उदार तथा मानवीय भावना से अंतर्निहित होना होगा...पहले तो प्रेमतत्व को ही भ्रांतियों से मुक्त करने की बात है. प्रेम न तो विवाहोन्मुख प्रेरणा है, न स्त्री पुरुष के बीच देह संबंध की मांग का पर्याय...पर अभी प्रेम इन्हीं संज्ञाओं से परिभाषित होता है.

नीला के दुख से जुड़ाव का प्रश्न भावनात्मक तो है परंतु उस प्रश्न का हल भावुक प्रसंगों में भटककर नहीं तलाशा जा सकता ऐसा मैं सोचता हूं.

● **अशोकगुप्ता, नयी दिल्ली**

संवेदनाओं से खिलवाड़

'कहानी की तीसरी दुनिया के दो तोता मास्टर' (शैलेश मटियानी) पढ़ा, उन्होंने बड़ी बेबाकी और गहन अध्ययन के पश्चात दो महान हस्तियों के स्वभाव, कृतियों और उनके दृष्टिकोण का खुलकर बयान किया है. फिर भी वे स्पष्ट नहीं कर पाये की 'ये' फल ठीक है या 'वे' फल ठीक हैं. अगर मान लिया जाय की ये दोनों हस्तियां अपनी-अपनी जगह अपना खास महत्व रखती हैं, तो फिर समीकरण या सामंजस्य के संतुलन की प्रकृति तो दूर रह जाती है. ऐसे में मटियानी जी का आलेख कोई निर्णायक भूमिका अदा नहीं कर पाता. जबकि अपेक्षा यह रही है कि ऐसा केंद्र बिंदु बनाया जाय जहां से यह जाना जाय कि किनका वृत्त आड़ा-तिरछा है या फिर विकृत है. यहां सुधीश पचौरी की बात को नजर-अंदाज नहीं किया जा सकता है कि—"नामवर जी के कथा समीक्षा संबंधी लेख बहुत महान नजर नहीं आते...उनकी अपनी ऐतिहासिकता है. किंतु वह उतनी बड़ी नहीं जितनी की लोग उन्हें शिकायतें पहुंचाते हैं."

नये स्तंभ में से.रा. यात्री की शुरुआत अच्छी रही. मानवीय संवेदनाओं के साथ नाटकीय खिलवाड़ व्यंग्य ही नहीं, बल्कि चुनौती भरा प्रश्न है कि आज का मनुष्य इतना क्यों बनावटी होता जा रहा है? सच तो यह है कि ये रोजमर्रा की जिंदगी में इतने लत-पथ रहते हैं कि जीवन का अन्य पक्ष गैर-जरूरी सा प्रतीत होता है.

क्या व्यक्ति के जीवन में 'उपभोग' की त्रासदी इतनी है कि मानवीय संवेदना औपचारिक नाटकीय या कुंठित-सी प्रतीत होती है?

● **अरूण अभिषेक, पूर्णिया**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

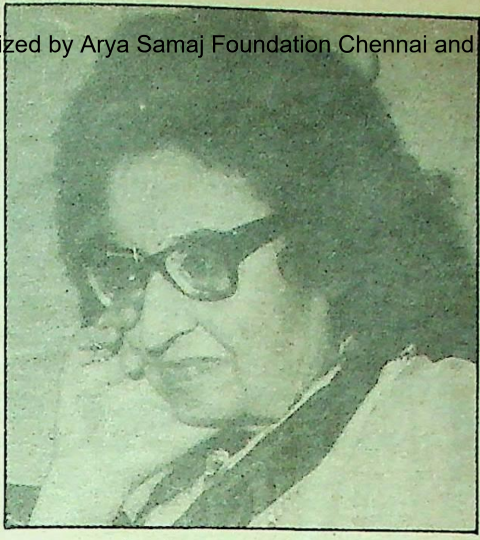

कुर्रतुल-ऐन हैदर को पच्चीसवां ज्ञानपीठ पुरस्कार

७ जुलाई, १९९० को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर परिषद की बैठक में २५ वें ज्ञानपीठ पुरस्कार की घोषणा कर दी गयी. यह पुरस्कार वर्ष १९८९ के लिए है. पुरस्कारजयी कृतिकार रहीं उर्दू की सुप्रसिद्ध लेखिका कुर्रतुल-ऐन हैदर. इस बार के पुरस्कार के लिए निर्धारित अवधि (१९६९-८३) में भारतीय साहित्य में उनके योगदान को विशेष रूप से उत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण माना गया है. ज्ञानपीठ पुरस्कार को भारतीय सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार माना जाता है. डेढ़ लाख राशि का यह साहित्यिक पुरस्कार भारतीय साहित्य को सर्वोत्कृष्ट सृजनात्मक योगदान के लिए प्रति वर्ष समर्पित किया जाता है. यह एकमात्र ऐसा पुरस्कार है जो हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित पंद्रह भाषाओं में से किसी भी भाषा में उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतीय नागरिक को भेंट किया जाता है.

कुर्रतुल-ऐन हैदर ने उर्दू को ज्ञानपीठ पुरस्कार दूसरी बार दिलवाया है. पांचवां ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९६९) फिराक गोरखपुरी को समर्पित किया गया था. इस तरह उर्दू को यह गौरव दोबारा पाने के लिए बीस बरस तक इंतजार करना पड़ा. जबकि इस बीच कन्नड़-हिंदी चार-चार बार, बंगला-मलयालम तीन-तीन बार, उड़िया-मराठी-गुजराती और तेलुगू दो-दो बार यह गौरव पा चुकी हैं.

कुर्रतुल-ऐन-हैदर बिजनौर के एक प्रतिष्ठित साहित्यिक परिवार से संबंधित हैं. उनके पिता सज्जाद हैदर यल्दराम और उनकी मां नजर सज्जाद दोनों ही प्रमुख उर्दू साहित्यकार थे. १९२७ में अलीगढ़ में जन्मी कुर्रतुल-ऐन-हैदर एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखिका है. उनके अब तक ५ उपन्यास, ४ उपन्यासिकाएं और ४ कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. साथ ही उन्होंने हेनरी-जेम्स की 'पोर्ट्रेट ऑफ लेडी' और टी.एस. एलियट की 'मर्डर इन द केथेड्रल' पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद भी किया है. अली सरदार जाफरी के साथ उन्होंने 'गालिब : पोयट्री एंड लेटर्स' और खुशवंत सिंह के साथ 'स्टोरीज फ्राम इंडिया' पुस्तकें तैयार की हैं. उन्हें १९६७ में साहित्य अकादमी पुरस्कार, १९६९ में सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार तथा १९८५ में गालिब पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं. इस बार ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए निर्धारित अवधि (१९६९-८३) में प्रकाशित उनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं— उर्दू का सबसे पहला अ-काल्पनिक उपन्यास 'कारे-जहां दराज है' (दो भाग) एक उपन्यास 'आखिरे-शब के हमसफर' और एक कहानी-संग्रह 'रोशनी की रफ्तार'. वह लेखन में निरंतर सक्रिय हैं और १९८८ में उनका नव्यतम उपन्यास 'गार्दिशे-रंगे-चमन' प्रकाशित हुआ है.

तीन दशक से भी पहले उनके उर्दू साहित्य-जगत में प्रवेश करते ही तत्काल एक तहलका-सा मच गया था. १९५९ में, जब वह पाकिस्तान में थीं, उनका उपन्यास 'आग का दरिया' प्रकाशित होते ही वह रातों-रात एक विशिष्ट साहित्यिक हस्ती बन गयीं. ७वें दशक के प्रारंभ में उनके भारत में बस जाने के पश्चात १९६५ में प्रकाशित उनका कहानी-संग्रह 'पतझड़ की आवाज' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय कहानी-संग्रह है जिस पर उन्हें १९६७ का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला. १९५९ में प्रकाशित उनके उपन्यास 'आग का दरिया' में प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक के भारत के चारित्रिक विकास का विश्लेषण किया गया है. लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है. दूसरी पुस्तक जो एक कहानी-संग्रह है, जड़ों से उखाड़कर आंधी-तूफान में झोंक दिये गये लोगों की दुखती रगों का लाजवाब दस्तावेज है. कुर्रतुल-ऐन-हैदर की अधिकतर कहानियां उनके भारत के सांस्कृतिक अतीत के प्रति विशेष लगाव और वर्तमान के साथ उसके संबंध-निरूपण के स्वभाव की बेजोड़ मिसालें हैं.

कुर्रतुल-ऐन-हैदर के लेखन की यह अभिलाक्षणिक विशेषता उनकी परवर्ती कृतियों में भी अबाध रूप से बनी रही है. १९६९-८३ की अवधि में प्रकाशित उनके उपन्यास 'कारे-जहां दराज है' और 'आखिरे-शब के हमसफर' भी हमारे लंबे इतिहास के पन्ने हैं. 'कारे-जहां दराज है' की प्रकृति आत्मकथात्मक है और यह लेखिका के पूर्वजों (जिला बिजनौर) के सैयदों की कहानी है जो १२वीं शताब्दी से शुरू होती है और वर्तमान काल तक जारी रहती है. वास्तव में उस परिवार की कहानी कहते हुए लेखिका ने भारतीय मुसलमानों के सामान्य सांस्कृतिक आचार-व्यवहार की संरचना की झांकी भी प्रस्तुत का है. 'आखिरे शब के हमसफर' (निशांत के सहयात्री) में एक उपमहाद्वीप के इतिहास के एक सर्वाधिक निर्णायक चरण का वर्णन है जो द्वितीय महायुद्ध के पहले के बंगाल की उग्रवादी घटनाओं और देशव्यापी भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर देश-विभाजन और फिर १९७१ की घटनाओं तक फैली है. जिनकी परिणति बंगला देश के उदय में हुइ. किंतु ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण से अधिक लेखिका की रुचि यह दिखाने में है कि उच्च आदर्शों से प्रेरित अपना सब कुछ त्यागकर क्रांति की धुन में निकले लोग किस प्रकार समय-परिवर्तन के साथ आदिम प्रवृत्तियों और ईर्ष्या के वशीभूति होकर निहायत मामूली आदमियों के स्तर पर उतर आते हैं, लोभ तथा लालसा में निप्त हो जाते हैं और सामान्य भोग-विलास के चक्कर में पड़ जाते हैं. संयोगवश उनका नव्यतम उपन्यास 'गार्दिशे-रंगे चमन' भी अपने में २०० वर्षों की अवधि समेटे है.

काल और स्थान दोनों में ही परिव्याप्त विशालता और विस्तार की गुणवत्ता कुर्रतुल-ऐन हैदर के कृतित्व की सर्वप्रथम विशेषता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे समय की कुछ अमूल्य कथा-कृतियां उन्हीं की देन हैं.

सारिका परिवार की ओर से पुरस्कारजयी कृतिकार को हार्दिक बधाई. □

लघु विज्ञापन

स्वास्थ्य, शक्ति एवं सुखमय विवाहित जीवन के लिए
डा० नरेश मित्रा
मौडर्न हैल्थ क्लीनिक
1768, लाल कुआँ, दिल्ली-6
फोन : 524645 (1 से 6 बजे तक)
ज्ञानवर्धक यौवन संदेश पुस्तक मुफ्त प्राप्त करें
मोटापा घटाने हेतु भी परामर्श लें
सन्तान के इच्छुक स्त्री-पुरुष स्वयं मिलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीली आंखें

यहां हर राह जाते के कुतूहल के लिए सामग्री थी, मनोरंजक, कामोत्तेजक! एक लड़की, घर छोड़कर आयी हुई, निराश्रय और फिर गरीब, जो कहोगे, सुन लेगी, जो सुनाओगे, सह लेगी, फिकरों की इस बौछार के सामने लड़की का चेहरा जर्द पड़ने लगा, और नीली आंखें त्रस्त हो उठीं. बार-बार सिर पर का आंचल संभालती हुई, पीपल के सहारे संज्ञाहीन-सी खड़ी थी.

रेखांकन : हेमज्योतिका

इस सड़क पर आने-जानेवालों का तांता केवल गहरी रात गये थमता है. कहीं-कहीं पर राह जाते लोग कुतूहलवश इकट्ठे भी हो जाते हैं और छोटी-सी भीड़ बन जाती है; लेकिन घड़ी भर बाद यह भीड़ रेशमी कपड़े की हल्की-सी गांठ की तरह खुल भी जाती है, और आमदोरफ्त का तांता उसी तरह कायम रहता है. इस क्षणिक जन-समूह की अपने में कोई विशेषता या अभिप्राय नहीं, लेकिन इसकी भी एक हल्की-सी ठोकर किसी को बरसों के लिए अचेत कर सकती है, कौन मानेगा?

इसी सड़क के किनारे, सायंकाल के बढ़ते अंधेरे में एक अस्पताल के सामने दो व्यक्ति खड़े रो रहे थे. एक बीस-बाईस वर्ष का लड़का और दूसरी सत्तरह-अठारह वर्ष की लड़की. ऐसा जान पड़ता था जैसे एक-दूसरे से जुदा हो रहे हों. लड़की बार-बार आंसू पोंछती और पास ही पीपल के पेड़ की ओट में सिमटी जाती; लड़का जमीन पर बैठा हुआ बड़े आग्रह से उसे रुक जाने को कह रहा था.

''देख राजो, दो दिन और मांग खा, फिर मैं ठीक हो जाऊंगा, खुदा कसम, मुझे छोड़कर मत जा.''

''मैं कहां से मांगूं? मुझे देता कौन है?''

''तो यूं छोड़कर चली जायेगी? सरम नहीं आयेगी तुझे? मैं मर रहा हूं और तू भागे जा रही है.''

''तू अस्पताल में मजे से है. तुझे तो वहां बिस्तर भी मिलता है, मैं बाहर सड़क पर क्या करूं?'' और फिर लड़की की आंखें आंसुओं से डबडबा आयीं.

लड़का हल्के नीले रंग की बीमारों की वर्दी पहने हुए था, चेहरे का रंग जर्द और शरीर शिथिल, खड़ा तक न हो सकता था. जिस लड़की को वह बार-बार जाने से रोक रहा था, वह भी कोई सुंदरी न थी, साधारण ग्रामीण लड़की थी. उसका भी चेहरा पीला और रो-रोकर थका हुआ, कपड़े मैले और कहीं-कहीं पर से फटे हुए, सिर के बाल रूखे और बिखरे हुए थे. हां, आंखें उसकी नीली थीं, स्वच्छ आकाश की-सी नीली जो किसी-किसी वक्त आंसू पोंछने के बाद धुली हुई, आकर्षक जान पड़तीं.

पास खड़े हुए लोग इस जुदाई का तमाशा देख रहे थे. ज्यों-ज्यों भीड़ बढ़ती जाती, लड़की सहमी हुई पेड़ की ओट में छिपती जाती. लड़का इन तमाशाइयों के सहारे लड़की को रोक लेना चाहता था. पास खड़े हुए एक बाबू को हाथ जोड़कर कहने लगा, ''बाबू साहब, इसे समझाओ, अपना देश होता तो दूसरी बात थी, परदेस में मुझे यों छोड़े जा रही है, मैं इसे कहां से ढूंढूंगा?''

''तू इसे अस्पताल में क्यों नहीं रखता?'' बाबू ने पूछा.

''वहीं पर थी बाबू, पर साहब ने निकाल दिया, वहां सिरफ बीमार को रहने देते हैं.''

अब के बाबू ने लड़की को कहा, ''अरी ठीक ही तो कहता है, दो दिन और मांग खा, जब यह तंदुरुस्त हो जाये तो काम करने लगेगा.''

''यह क्या काम करेगा, घर से ले आया और यहां आकर बीमार पड़ गया. मैं कहां से मांगकर इसे खिलाऊं?''

लड़का व्याकुलता से बोल उठा, ''अरी मैं औरत के हाथ का मांगा हुआ खाऊंगा? देखो साहब, यह जोड़ा मैंने इसे सिलवा कर दिया है.''

''तो यह जाना कहां चाहती है?'' बाबू ने पूछा.

''मैं क्या जानूं साहब, कहां जाना चाहती है.''

लड़की चुप थी.

''अरी, बोलती क्यों नहीं, कहां जायेगी?''

अबकी रुंधी हुई आवाज में लड़की ने जवाब दिया, ''मुझे यहां डर लगता है.'' और फूट-फूटकर रोने लगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लड़की का रोना एक भूखे बच्चे के रोने की तरह सरल जान पड़ता था, लेकिन अचंभे की बात थी कि जिस लड़की को सड़क पर डर लगता है, वह अपने एक मात्र आश्रय को छोड़कर कहां जाना चाहती है?

किसी साहब का अधेड़ उमर का बहरा भी, अपने लड़के के साथ चलते-चलते रुक गया था. पहले तो वार्तालाप सुनता रहा, फिर अपने लड़के से पूछा, ''क्यों मंगू, यह रातवाली लड़की तो नहीं क्या?'' और जब मंगू ने इसके उत्तर में ''दिक्खे तो वही'' जवाब दिया, तो बहरा भीड़ के दायरे में अंदर आ गया, और बीमार को संबोधित करके कहने लगा, ''अरे, यह तेरी औरत है? औरत को यूं फेंक जाते हैं? जानता है, रात-भर क्या बीती इस पे? देखो बाबू, यह लड़की बच गयी सो हम हैरान हैं. दो शराबी इसके पीछे पड़ गये. कभी यह रोती-चिल्लाती एक गली में जा छिपती, कभी दूसरी में. दस बार हमारी नींद टूटी होगी रात को.''

इस पर भीड़ में से एक मनचले ने आवाज कसी, ''अरे, तू ने ही तो गंदा कर रहे हैं.'' और सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए इधर-उधर देखने लगे.

एक दूसरे साहब ने अपना संशय मिटाना चाहा—

''क्यों री, यह तेरा खाविंद है?''

लड़की, डरी हुई, चुप खड़ी रही.

''देखा साहब, मैंने कहा नहीं था. जो खाविंद होता तो बोलती नहीं?''

लोगों का कुतूहल बढ़ने लगा. लड़की से फिर पूछा गया—

''तो इसके साथ भागकर आयी हो? शादी नहीं की?''

पीपल की ओट में से, सकुचाते हुए लड़की ने धीरे से जवाब दिया:

''शादी करी है, गली में फकीर ने करवायी थी.''

तमाशाइयों में से कई खिल-खिलाकर हंसे, ''यह बाबू ठीक कहता है. यह शादी इसी तरह की है.''

रेखांकन : हेमज्योतिका

शराब नहीं पी रखी थी रात को? खूब पहचाना तुमने?'' कई लोग हंसने लगे. बहरा थोड़ी देर हत्-बुद्धि भीड़ को देखता रहा, फिर चुपचाप भीड़ में से निकलकर चला गया.

जो थोड़ी-सी सहानुभूति लड़की के प्रति बन पायी थी, वह इस एक वाक्य ने छिन्न कर दी. लड़की इस पेड़ के नीचे दूसरी रात न बिताना चाहती थी. व्याकुल और डरी हुई, एक पागल की तरह यहां से भाग जाना चाहती थी.

भीड़ के लिए वार्तालाप बोझल और नीरस हो रहा था. इस एक वाक्य से कइयों के दिल हल्के हुए. एक साहब सिगरेट का कश लगाकर चुटकी बजाते हुए बोले, ''यह सब बकवास है, यह इसकी औरत नहीं, साला कहीं से भगा लाया है. अब तंग आ गया है और फेंकना चाहता है.''

''अरे वह तो खुद जाना चाहती है, यह तो उसे रोक रहा है.'' किसी ने जवाब दिया.

''तो इसे कोई और मिल गया होगा जो जाना चाहती है. साले शहर को

लोगों को फिकरेबाजी का अच्छा अवसर मिल गया था. लड़की पर तरह-तरह के आक्षेप होने लगे, जैसे किसी पक्षी के पंख नुचने लगें. बीमार जमीन पर बैठा, एक हाथ से पेट दबाता हुआ, बड़ी दीनता से, कभी एक की तरफ, कभी दूसरे की तरफ देख रहा था.

''टका जेब में नहीं और आप इश्क करने निकले हैं!'' एक ने कहा.

''लड़की जवान है, इसीलिए साला इसे जाने नहीं देता!''

''बीमार है तो भी...''

फिर कई लोग हंसने लगे.

अब एक दाढ़ीवाले सज्जन भी इस भीड़ में खड़े तमाशा देख रहे थे. सिर पर तुर्रेवाली सफेद पगड़ी, काला कोट, गहरी सिलवटोंवाली सलवार, मौका देखकर सीधे लड़की के पास जा पहुंचे और अपने कामातुर हाथों से उसकी पीठ, कंधों और बालों को सहलाने लगे और उसे आश्वासन देने लगे. लड़के ने देखा तो उसका दिल बैठ गया; लेकिन सिवाय व्याकुल याचना के और क्या कर सकता था.

दो फौजी भी चलते-चलते आन खड़े हुए थे. एक ने दूसरे को कहा, ''चीज अच्छी है, करूं सिफारिश तेरी? सस्ते में काम हो जायेगा. जालिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आंखें है कि बस...''

भीड़ बढ़ने लगी.

यहां हर राह जाते के कुतूहल के लिए सामग्री थी, मनोरंजक, कामोत्तेजक! एक लड़की, घर छोड़कर आयी हुई, निराश्रय और फिर गरीब, जो कहोगे, सुन लेगी, जो सुनाओगे, सह लेगी. फिकरों की इस बौछार के सामने लड़की का चेहरा जर्द पड़ने लगा, और नीली आंखें त्रस्त हो उठीं. बार-बार सिर पर का आंचल संभालती हुई, पीपल के सहारे संज्ञाहीन-सी खड़ी थी. और इन्हीं फिकरों में बीमार की क्षीण याचना बार-बार सुनने में आती :

''देख राजो मत जा. ...मैं जरूर अच्छा हो जाऊंगा...नहीं हुआ तो देस लौट चलेंगे. ...अरी, देखती नहीं, मैं किस हालत में हूं? मेरे पास से मत जा...'' और बार-बार रोने लगता

एक हिंदुत्व-प्रेमी भी इस भीड़ में खड़े थे. आगे बढ़कर बड़ी गंभीरता से पूछने लगे, ''अरे, यह लड़का हिंदू है कि मुसलमान?''

एक दूसरे हिंदू सज्जन ने जवाब दिया, ''कभी हिंदू भी लड़कियां भगाकर लाते हैं, जरूर मुसलमान होगा कोई.''

एक तीसरे ने कहा, ''इसके गले में तावीज नहीं देखते? मुसलमान ही तो है.''

लेकिन उन्हें फिर शक गुजरा, ''तो फिर यह साला मुसलमान, किसी हिंदू लड़की को तो भगाकर नहीं ले आया?''

लेकिन लड़की के गले में भी एक तावीज बंधा हुआ था जो फकीर द्वारा करायी गयी शादी के वक्त, चिर सुहाग की कामना करते हुए उसने फकीर से लेकर पहना था. उसका काला धागा अब भी लड़की की गर्दन पर दीख रहा था, सो बात आगे नहीं बढ़ पायी.

धीरे-धीरे कई एक बातों का पता चला.

केवल दस रोज पहले ही यह शादी हुई थी. जब वे दोनों मजदूरी की तलाश में अपना गांव छोड़कर यहां भाग आये थे. दोनों एक-दूसरे के प्रेम में उलझे हुए, बेसुध चले आये. तब इसकी ओर कोई आंख उठाकर भी देखता तो लड़का अपनी जान पर खेल जाता. पहले तो हफ्ता भर मजदूरी की तलाश में इस नये शहर की खाक छानते रहे. जब मजदूरी मिली तो एक रात लड़का पेट दर्द से चीख उठा, और रात-भर छटपटाता रहा. राजो किंकर्तव्य-विमूढ़ उसके सिरहाने बैठी हाय-हाय करती रही. सुबह कहीं दर्द शांत हुआ और लड़का सो गया. पर तीसरे दिन फिर दर्द का दौरा हुआ, अब की आधा दिन और आधी रात तड़पते बीती. राजो कांप उठी. अजनबी शहर में एक-एक क्षण असह्य हो उठा. दूसरे दिन लड़खड़ाते हुए दोनों इस अस्पताल के सामने पहुंचे. खैराती अस्पतालवालों ने रहम खाया और लड़के को तो दाखिल कर लिया; लेकिन लड़की बाहर अकेली रह गयी. सारा दिन उसकी खिड़की के पास खड़ी रहती है. उसकी सेहत की दुआएं मांगती. लेकिन एक दिन बड़े साहब ने देख लिया, और झिड़ककर अस्पताल की हद से बाहर निकाल दिया. तब यह मांगने निकली. अस्पताल के पास ही एक रेल का पुल है, जहां आने-जानेवालों का सामान दूसरे पार ले जाने का एक पैसा मिलता है. दिन-भर डरती-सकुचाती मजदूरी तो करती रही, लेकिन अपनी नीली आंखों को लोगों की नजरों से न बचा पायी. कल रात जब इसी पीपल के पेड़ के नीचे आकर सोने लगी तो एक नर-पिशाच की परछाई देखी. राजो पहले तो सहमी, फिर चीखती-चिल्लाती उठ खड़ी हुई और रात-भर उसके ढूंढते साये से भागती फिरी...

दाढ़ीवाले सज्जन और भी दयालु हो रहे थे. उसके कंधे सहलाते हुए धीरे से कहने लगे, ''अगर यहां नहीं रहना चाहती, तो तेरा इंतजाम मैं कर दूंगा, तू अपने देश चली जा. मैं तुझे गाड़ी में बिठला आऊंगा.''

ज्यों-ज्यों यह दाढ़ीवाला आदमी लड़की के नजदीक जाकर उसे आश्वासन देता, बीमार पति का हृदय उतना ही अधिक व्याकुल हो उठता. दर्शकों की फिकरेबाजी लड़के को इतना विचलित न कर पाती थी, जितना कि इस अपरिचित आदमी का आश्वासन.

जब पीछे खड़े हुए दो फौजी मजाक करते हुए चले गये, तब भीड़ कुछ चुप हुई.

एक शख्स ने पूछा, ''क्यों बे, मजदूरी कहां करता है?''

''पुल पर, साहब!'' लड़के ने जवाब दिया.

''पुल पर? अरे पुल पर मजदूरी करके इसका पेट भी पालेगा और अपना भी?''

''तो साले, खिला नहीं सकता था तो इस मां को साथ क्यों उठा लाया था?'' और फिर फिकरों की बौछार पड़ने लगी.

किसी को दया आयी. जेब में से चार पैसे निकालकर लड़के के पास फेंके और कहा, ''इसे अभी गांव भेज दे, नहीं तो तेरे हाथ से निकल जायेगी, समझा?''

लड़के ने इकन्नी माथे पर लगायी. उसकी टूटी आशा फिर बनने लगी. याचना-भरे स्वर में सब लोगों से मांगने लगा, ''दो दिन और गुजर हो जाने दो बाबू, फिर मैं मजदूरी लायक हो जाऊंगा. हम भिखमंगे नहीं हैं, बाबू!''

सब दर्शकों के सामने से तीन-तीन बार घूम जाने के बाद उसके हाथ में केवल पांच आने पैसे इकट्ठे हो पाये. लड़के ने चुपचाप वह पैसे राजो की मुट्ठी में रख दिये.

ऐन इसी वक्त दूर से लाल पगड़ीवाला सिपाही अपनी गश्त पर आता हुआ नजर आया. लड़की ने उसे देखा तो झट से पेड़ के पीछे छिपकर खड़ी हो गयी. बीमार ने सिपाही को आते देखा तो उसका सारा शरीर कांपने लगा. घबराया हुआ बोला, ''बाबू जी, इससे पैसे ले लो, नहीं तो सिपाही सब छीन लेगा.''

''अरे, घबराओ नहीं, कुछ नहीं कहेगा.''

''नहीं बाबू जी, यह सब छीन लेगा, यह हमें मिलने भी नहीं देता.''

लड़की ने फौरन आगे बढ़कर साथ खड़े हुए दाढ़ीवाले के हाथ में पैसे रख दिये और फिर छिपकर खड़ी हो गयी. सिपाही की नजर जब बीमार पर पड़ी तो वह बढ़ता हुआ चला आया, ''उठ हरामजादे. अभी तक यहीं पर बैठा है!''

''हजूर, अभी तक अस्पताल का दरवाजा बंद नहीं हुआ है. मांग नहीं रहा हूं हजूर. अभी चला जाऊंगा.'' बीमार ने गिड़गिड़ाकर कहा.

सिपाही ने छूटते ही बीमार की कांपती देह पर जोर से दो ठुड्डे लगाये, और सिर पर थप्पड़ मारा. वह हड़बड़ाकर हाथ जोड़ता हुआ, लड़खड़ाता हुआ अस्पताल की ओर जाने लगा. अस्पताल के दरवाजे पर पहुंचकर, एक बार फिर लड़के ने चीखकर पुकारा, ''राजो, मत जाइयो...दो दिन इन पैसों पर गुजरकर मुझे ठीक हो जाने दे. दोनों देस लौट चलेंगे, यहां एक दिन नहीं रहेंगे. मुझे छोड़कर मत जा.'' और फिर धीरे-धीरे अपनी दुखती पसलियों पर हाथ रखे, दर्द से हाय-हाय करता हुआ, अंधेरे में खो गया.

सिपाही चला गया. धीरे-धीरे भीड़ भी एक दुःस्वप्न के दृश्य की तरह बिखर गयी. लेकिन दाढ़ीवाला, इस दुःस्वप्न की कुरूप छाया की तरह, फिर धीरे-धीरे लड़की के पास पहुंचा. अब अंधेरे में देखनेवाला उसे कोई न था. केवल बीमार, अस्पताल की एक खिड़की के पीछे दोनों हाथों से खिड़की के सीखचों को पकड़े हुए आंखें फाड़-फाड़कर बाहिर झांक रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

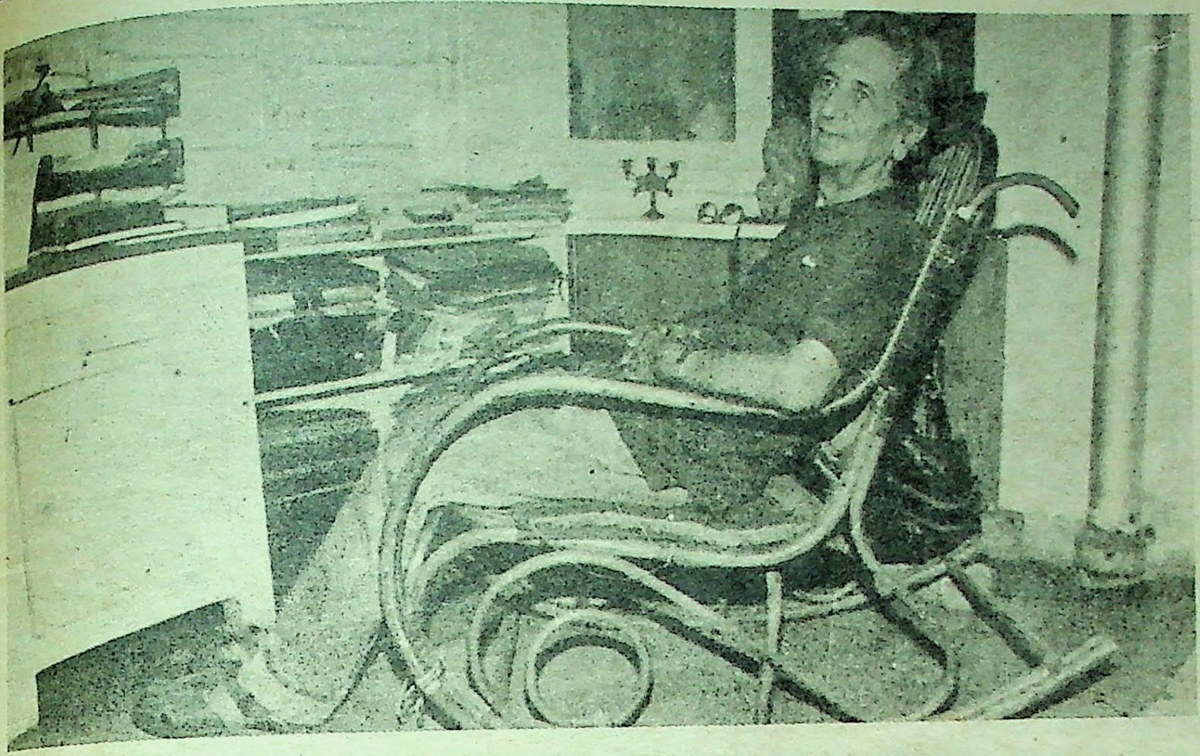

जिंदगी—७५° के कोण से

भीष्म साहनी

'तरह-तरह की यादें, अनगिनत अधूरे चित्र, इन्हीं अधूरे चित्रों, संस्कारों, अनुभवों की पूंजी को लेकर मैं साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ था. शायद सभी ऐसे लोग जो परिस्थितियों द्वारा धकेले जाते हैं, जो व्यवहार की दुनिया में निकम्मे साबित होते हैं, अपने अरमान पूरे करने के लिए साहित्य का दरवाजा खटखटाते हैं...'' कभी यह कहा था भीष्मजी ने. आज जीवन के पिचहत्तर वर्ष पूरे करने जा रहे भीष्मजी बता रहे हैं कि उस पूंजी का हुआ क्या! उसमें कितनी श्रीवृद्धि हुई. कि अपने विगत का स्मरण उन्हें कौन-सी अनुभूतियां दे जाता रहा है!

फर्क तो बहुत होता है, ७५ और ५० और २५ में, २५ की उम्र में नजर सारा वक्त आगे की ओर उठी रहती है, ५० पर शायद आप आगे-पीछे दोनों ओर देखने लगते है, पर ७५ पर पहुंचने पर तो नजर पीछे की ओर ही ज्यादा मुड़ी रहती है. आगे देखने को बहुत रह नहीं गया होता. २५ की उम्र में आप मनसूबा बांधते हैं, सपने देखते हैं, आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाने की क्षमता रखते हैं, ५० की उम्र में आप अपने ढर्रे पर चल रहे होते हैं, उतावलेपन की जगह कदमों में कुछ-कुछ स्थिरता-सी आ चुकी होती है. पर ७५ पर पहुंचने पर आप अपना किया-कराया समेटने की मन:स्थिति में होते हैं. जो बन पाया, उसी को गनीमत समझने लगते हैं. छोटी उम्र में तो हम फतवे भी देते हैं, जो बात कहते हैं, छाती ठोककर, उतने ही विश्वास के साथ भविष्यवाणी भी करते हैं, पर ७५ तक पहुंचते-पहुंचते छाती ठोककर कुछ कहनेवाली मानसिकता शिथिल पड़ चुकी होती है.

जग में अंधियारा छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता,
पर जगती का तम हर न सका.
मैं जीवन में कुछ कर न सका.

बच्चनजी ने अपने ये उद्गार व्यक्त तो जवानी के दिनों में ही किये थे, पर अंतिम पंक्ति को छोड़कर जिस मानसिकता की झलक इन पंक्तियों में मिलती है वह कुछ-कुछ ७५ वर्ष की मानसिकता से ही मेल खाती है. अंतिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

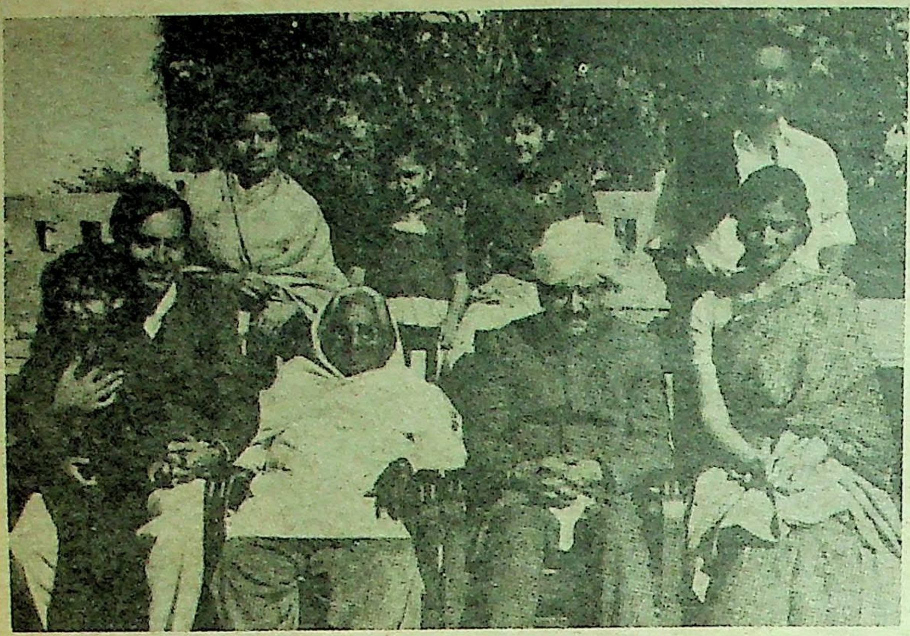

● तीन पीढ़ियां : भीष्म साहनी, बलराज साहनी अपने माता-पिता, पत्नियों और अपने बाल-गोपालों के साथ.

पंक्ति की नकारात्मक गूंज ७५ वर्ष के व्यक्ति की वाणी में कम ही सुनाई पड़ती है, जीवन को त्रासदी के रूप में देखना भी जवानी का ही गुण है, बुढ़ापे का नहीं. बुढ़ापे की मानसिकता को तो शायद अंग्रेज कवि चेस्टर्टन ने ज्यादा सही अभिव्यक्ति दी है:

It is something to have done, as we have done
It is something to have wept as we have wept,
It is something to have watch'd the stars, when all men slept.

छाती ठोंककर कुछ कह सकने की क्षमता या किला फतह करने की महत्वाकांक्षा मन में से निकल चुकी होती है. यों तो किला फतह करने की भावना साहित्य-सृजन के क्षेत्र में जवानी के दिनों में भी उतनी ही अटपटी होती है जितनी वयस्क हो जाने पर. लेखन के क्षेत्र में कोई भी माई का लाल किला फहत करने के लिये नहीं उतरता. जो ऐसा समझकर कलम उठाता है, कि दुनिया को एक नया करिश्मा कर दिखा देगा, वह शीघ्र ही लेखन का क्षेत्र छोड़, कहीं ठेकेदारी या सरकारी नौकरी करने लगता है, करिश्मा दिखाने के लिये यह क्षेत्र अनुकूल नहीं है. हां, कोई रचना करिश्मा बन जाये तो अलग बात है.

समेटने का वक्त तो बेशक आ गया है. पर वास्तव में समेटता कोई नहीं. अन्य सभी काम पहले की तरह चलते रहते हैं, जबकि समेटने का काम स्थगित होता रहता है. मेरा घर पिछले चालीस साल के सामान से अटा पड़ा है, बहुत कुछ है जो मैं खुद बटोरता रहा हूं, बहुत कुछ है जो मेरे प्रियजन छोड़ गये हैं. घर में रोज झगड़ा होता है कि घर का फालतू सामान कब निकलेगा. कभी-कभी तो पत्नी दो टूक कह देती है, "हम चले जायेंगे तो यह कूड़ा बच्चों को साफ करना पड़ेगा. हम खुद ही क्यों न साफ कर जायें?"

एक दिन मैं इसे साफ करने बैठा भी था. पुरानी चिट्ठियों का अंबार था. सोचा था, पुराने पत्र-व्यवहार की संगति ही क्या रह गयी है. पर चिट्ठियों को हाथ लगाना भूल थी. बिना हाथ लगाये, आंखें बंद किये पूरा अंबार का अंबार फेंक देता तो सही था. यहां दो घंटे तक उलझे रहने के बाद दो पत्र फेंकने के लिये निकाल पाया. और वे भी परिपत्र थे. उनमें से एक फिर वापिस टांक दिया.

बहुत-सी किताबें इकट्ठा करता रहा हूं, इस उम्मीद पर कि कभी पढ़ूंगा. अब जानता हूं कि इन्हें पढ़ नहीं पाऊंगा. फिर भी हर आये दिन और किताबें इक्ट्ठी करता रहता हूं.

बात मानसिकता की है जो बुढ़ापे को कबूल करने से इंकार करती है, और ऐसा लगता है, जिंदगी के आखिरी दिन तक चलता रहेगा.

बचपन में सुना था कि कोई कंजूस मरते दम तक अपना धन किसी को देना नहीं चाहता था. अब समझ में आता है कि वह क्यों नहीं देना चाहता था, इसलिए नहीं कि वह कंजूस था, या उसकी आत्मा धन के साथ चिपटी हुई थी, वरन इसलिए कि अशरफियों से भरा घड़ा उसकी जिंदगी का प्रतीक बना हुआ था जिस पर से उसकी आंखें हटाए नहीं हटती थीं.

पर समेटने की बात व्यवहार-संगत है इसलिए इसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती. यों तो जिंदा आदमी सदा जिंदगी के बारे में ही सोचता है, मौत का विचार उसे परेशान नहीं करता. एक जीते-जागते व्यक्ति के लिए मृत्यु का विचार असंगत ही बना रहता है. पर ७५ तक पहुंचते-पहुंचते कुछ आहटें-सी उसे जरूर सुनाई पड़ने लगती हैं, पर्दे के पीछे किसी की उपस्थिति का भास जरूर जेहन में रहने लगता है, जो एक तरह की याददहानी है कि अब ज्यादा लंबे मनसूबे तुम नहीं बांध सकते. नये-नये काम तो अभी भी हाथ में लिये जाते हैं पर लंबे काल की योजनाएं अब नहीं बनतीं. अब तो बैंक राशि जमा करवानी हो तो अल्पकाल के लिये, लंबी अवधि के लिये नहीं. तीन साल की अवधि भी लंबी जान पड़ती है. छः साल की अवधि का तो सवाल ही पैदा नहीं होता. फिर भी इस विचार से मन में बेचैनी पैदा हो, या दिल बैठ-बैठ जाये, ऐसा कदापि नहीं होता. जिंदा रहने की अपनी मस्ती होती है, जिसके सामने अन्य सभी विचार गौण हो जाते हैं.

जिस विश्वास के साथ और जिस एकाग्रता और भावोन्माद में जवानी में लोग जिंदगी की बाजी लगा देते हैं—और शायद दुनिया उसी के सहारे चलती है—किसी ध्येय के लिये, सब कुछ भूल कर, कूद जाते हैं, वह विश्वास और भावोन्माद ७५ तक पहुंचते-पहुंचते जरूर शिथिल पड़ जाता है.

मेरे एक मित्र विलायत में इंजीनियरिंग पढ़ने गये. यह बहुत दिन पहले की बात है. विलायत में ही उनके विचार बदल गये, वामपंथी विचारधारा में विश्वास करने लगे. जब इंजीनियरिंग की पढ़ाई समाप्त करके भारत लौटे और जहाज बंबई की बंदरगाह से आ लगा तो सीधा घर जाने की बजाय कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर जा पहुंचे. नाम लिखवाया और तीस रुपये मासिक पगार पर पार्टी का काम करने लगे, और साल-दर-साल उसी में जुटे रहे. एक बार भी मुड़कर नहीं देखा. ऐसे ही अनेक अन्य लोगों को भी कूदते देखा. किसी को कला और संस्कृति के क्षेत्र में, किसी को स्वतंत्रता-आंदोलन में, किसी को अपना रास्ता खोज पाने के लिये घर छोड़ते देखा. यह कूद जाने की उन्मत्त-सी भावना ७५ तक पहुंचते-पहुंचते शेष नहीं रह जाती. न तो विचार ही जल्दी बदल पाते हैं, न कूद जाने के लिये पैर ही उठते हैं. यही गनीमत है कि जिस ढर्रे पर वर्षों से चलते आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हो उसी पर साबत कदमी से बने रहो.

एक और बात में भी २५ और ७५ में अंतर पाया जाता है.

कुछ दिन पहले राजस्थान की यात्रा करते समय एक नव-विवाहित दंपती से मिल-बैठने का मौका मिला. वे लोग भी उसी निवासगृह में टिके हुए थे जहां पर मैं और मेरी पत्नी थे.

युवा पति-पत्नी एक दूसरे के प्रेम में डूबे हुए थे. एक-दूसरे पर निछावर थे. पत्नी सुंदर नहीं थी, नाक-नक्श की दृष्टि से बड़ी साधारण-सी थी, पति भी सांवले रंग का छोटे कद का जीव था. पर उनकी आंखें एक-दूसरे पर से हटती ही नहीं थीं.

"हम एक-दूसरे के लिए बने हैं, जी."

युवा पत्नी बार-बार कहती, दोनों प्रेम का ऐसा झूला झूल रहे थे कि देखते बनता था.

उनकी बातें सुनते हुए, उनके प्रेमोद्गार की सच्चाई से तो इंकार नहीं था, पर उसके भीतर छिपी जीवन की विडंबना की अनुगूंज हमें बार-बार सुनायी पड़ रही थी. अनेक प्रेमियों की जीवन यात्रा के अनेक चरण देख चुकने के बाद, कहीं-कहीं पर तो आरंभ से अंत तक, जीवन के यथार्थ और प्रेम के उन्मत्त आवेगों के बीच तालमेल बैठा पाना असंभव हो जाता है. ७५ तक पहुंचते-पहुंचते, जीवन की इस विडंबना का बोध भी मन में बैठ चुका होता है. भले ही वह प्रेम के शपथ हों या बड़े-बड़े आदर्शों की या जीवन मूल्यों की दुहाई हो या बड़े-बड़े दावों की, जीवन के अनुभव उन पर प्रश्न चिन्ह लगाये बिना नहीं रहते.

इसका यह अर्थ नहीं कि ७५ वर्ष की अवस्था तक पहुंचने पर मनुष्य को जीवन की व्यर्थता का बोध होने लगता है. कदापि नहीं. बल्कि बुढ़ापे की दहलीज पर खड़े तुम दुनिया को देखो तो दुनिया पहले से कुछ ज्यादा ही रंगीन नजर आती है. यह इस सब के बावजूद कि तुम जीवन में बहुत कुछ देख चुके हो, बहुत कुछ खो चुके हो, बहुत से थपेड़े भी खा चुके हो. दुनिया के रंग पहले से कहीं ज्यादा चटकीले, ज्यादा आकर्षक नजर आते हैं. हर वसंत पहले की तुलना में ज्यादा निखरा-निखरा, भले ही वह आकाश की नीलिमा रही हो या बच्चों की हंसती आंखें या स्त्रियों की कमनीयता. क्या मालूम इसका कारण यह रहा हो कि इसे छोड़ने के दिन नजदीक आ रहे हैं, या यह कि जवानी के दिनों में दिमाग पर चर्बी चढ़ी रहती थी, तरह-तरह के अपने ही जुनून घेरे रहते थे, आंख उठाकर दुनिया के रंगों को देखने का मौका ही नहीं मिलता था, या शायद इसलिये कि ७५ तक पहुंचते-पहुंचते मनुष्य अभिनेता कम और दर्शक ज्यादा बन चुका होता है.

कुछ मुद्दत पहले एक बुजुर्ग से मिलने गया जो बीमारी से अभी-अभी उठे थे और पूरी तरह तंदरुस्त नहीं हो पाये थे. मैं उनके पास बैठा उनकी तीमारदारी कर रहा था. जब मैंने पाया कि वह बार-बार, उचक-उचककर खिड़की के बाहर देख रहे हैं. जब भी बाहर सड़क पर जाती हंसती-बतियाती स्त्रियों की आवाज उनके कान में पड़ती कि वह उचककर बाहर देखने लगते. मैंने चुटकी ली तो मुस्कराकर कहने लगे:

''अब उनकी तरफ देखने की भी इजाजत नहीं है? वे हमारी तरफ नहीं देखेंगी तो क्या हम भी उनकी तरफ नहीं देखें. यह जुल्म तो न करो, यार.''

फिर यह गालिब का शेअर गुनगुनाने लगे:

''गो हाथ को जुंबश नहीं,
आंखों में तो दम है,
रहने दो अभी सागर-ओ-मीना
मेरे आगे.''

मैं जीवन यात्रा में गिरता-पड़ता बहुत-सी मंजिलें लांघकर ७५ की अवस्था तक पहुंचा हूं, पर इसका यह मतलब नहीं कि मैंने जीवन को समझ लिया है, या जीवन का कोई सत्य मेरे हाथ आ गया है. या कि जीवन पर मेरी पकड़ ज्यादा मजबूत हो गयी है, या कि मैंने जिंदगी जीने का कोई सही रास्ता ढूंढ निकाला है. जीवन अभी भी मेरे लिये अबूझ पहेली बना हुआ है, इसका यह मतलब भी नहीं कि ७५ का हो गया हूं तो बढ़िया कहानी लिख पाऊंगा. बढ़िया कहानी लिखने के लिये कोई उम्र नहीं होती. सालों की गिनती के आधार पर कोई बड़ा या छोटा लेखक नहीं होता. जिंदगी पर पकड़ जवानी में भी ढीली पड़ जाती है और बुढ़ापे में भी, मानसिक और सर्जनात्मक स्तर पर जवानी में भी शिथिलता आ सकती है और बुढ़ापे में भी. हां, बुढ़ापे की अपनी कुछ व्याधियां जरूर हैं जिनका असर आपके लेखन पर पड़े बिना नहीं रहता—जैसे—आपकी अपनी दृष्टि का पैनापन जाता रहे, आप अपने को दोहराने लगें, आवश्यक और अनावश्यक का भेद न कर पायें, आपका दिल ठंडा पड़ जाये, बाहर के प्रभाव आप तक न पहुंच पायें, आदि-आदि. मात्र

● तीन पीढ़ियां: भीष्म साहनी अपनी पत्नी, बेटी, दामाद और उनके बेटे के साथ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव के बल पर ही तो रचनाएं नहीं रची जातीं.

जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखने के बाद केवल सतत काल प्रवाह का ही बोध होता है, कोई नपे—तुले निष्कर्ष इंसान नहीं निकाल पाता. प्रत्येक काल खंड के अपने दबाव, अपने मानदंड, अपने आवेग होते हैं, अपने संघर्ष और विचारधाराएं भी. और अपना रास्ता खोजने के प्रयास भी. यहां दिशाहीनता का बोध नहीं होता. पर परिवर्तन का बोध होता है जिसकी व्याख्या इतिहास के जानकार ही कर पायें तो कर पायें. जमाना था जब हमारे समाज में खादी पहननेवाले स्वतंत्रता सेनानी, और आत्म बलिदान के प्रतीक माने जाते थे. खादी का जादू न जाने कहां गुम हो गया है, और खादी पहननेवाले अपना सारा प्रभाव खो बैठे हैं. जमाना था जब स्तालिन का नाम युगप्रवर्तक के रूप में लिया जाता था अब उसके अपने देश में ही असंख्य लोग उसे दानव की संज्ञा देने लगे हैं. जमाना था जब रूस की अक्तूबर क्रांति को युगांतरकारी घटना माना जाता था जिसने दुनिया के सामने नयी-नयी संभावनाओं के द्वार खोल दिये थे. अब रूस की ही किसी पत्रिका में यह पढ़ने को मिले कि ''हमारे देश के लाखों—लाख लोगों को इस बात का यकीन हो गया है कि अक्तूबर क्रांति एक भयानक भूल थी, कि देश में होनेवाले गृहयुद्ध ने हमारे पतन का सूत्रपात किया था...'' तो दिल को गहरा धक्का तो लगता ही है, उस परिवर्तन का भी अंदाज हो जाता है.

कभी सोचा नहीं था कि मेरे जीवन काल में ही इतने बड़े परिवर्तन देखने को मिलेंगे. मेरे देखते-देखते ही पंजाब का स्वरूप बदल गया है. काश्मीर की घाटी में खून के छींटे उड़ने लगे हैं...

इन सब परिवर्तनों को देखते हुए भी मन में विरक्ति का भाव नहीं उठता. हम अपने काल खंड से गहरे में जुड़े होते हैं, उसका अंग होते हैं. उसमें घटनेवाली घटनाएं हमें विचलित और उद्वेलित करती हैं और इस काल खंड में सक्रिय तत्वों के संघर्ष में हम मानसिक स्तर पर कहीं जुड़ते भी हैं, निश्चेष्ट दर्शक मात्र बने नहीं रहते.

जीवन प्रवाह की उद्दाम गति का भास पहले की ही भांति होता रहता है, जिंदगी के बदलते मंजर इसी प्रवाह के द्योतक हैं. न जाने आगे देखने को क्या मिलेगा. पर इतना देख चुकने के बाद भी न तो, जैसा मैंने कहा, जिंदगी पर मेरी पकड़ ज्यादा मजबूत हुई है, न ही मैंने जिंदगी का कोई भेद पा लिया है. अपने अनुभवी जीवन की दुहाई देने के बावजूद शायद एक ही बात हाथ लगी है कि मनुष्य के अपने हाथ में केवल उसका परिश्रम ही है, उसी पर उसका बस है, शेष सब अनिश्चित है.

''रौ में है रख्श-ए-उम्र
कहां देखिये थमे.
न हाथ बाग पर हैं,
न है पा रिकाब में.''

नागरजी की मृत्यु के कुछेक महीने पहले मैं उनके घर पर उनसे मिला था. अमरकांत और शेखर जोशी भी साथ में थे. नागरजी बहुत दुबला गये थे. उनकी बीनाई कमजोर पड़ गयी थी. सुनाई भी कम देता था, शरीर रोग ग्रस्त हो चुका था. स्वयं हाथ से लिख पाने से लाचार थे. पढ़ पाने से भी लाचार. पर जब उनके रचनात्मक कार्य की चर्चा चली तो चहककर बोले :

''कबीर पर सामग्री इकट्ठा कर रहा हूं. बहुत-सी कर ली है, दो वर्ष से कर रहा हूं. शीघ्र ही लिखने में जुट जाऊंगा. वह किताब तो लिखना ही है...''

कभी सोचा नहीं था कि मेरे जीवन काल में ही इतने बड़े परिवर्तन देखने को मिलेंगे. मेरे देखते-देखते ही पंजाब का स्वरूप बदल गया है. काश्मीर की घाटी में खून के छींटे उड़ने लगे हैं...

उनका उत्साह देखकर रश्क होता था.

नागरजी का उत्साह और उनकी लगन, मेरा संबल है, मुझ जैसे ही अनेक वयस्क लेखकों का संबल है. लेखक के मन में इस प्रकार की कोई भ्रांति नहीं होती कि उसका साहित्यिक योगदान बड़ा महत्वपूर्ण होगा, न ही इस बात की खुशफहमी कि वह कोई बहुत बड़ी देन अपने पीछे छोड़ जायेगा. बल्कि लेखक, विशेषकर आज के जमाने में भली-भांति जानता है कि उसके चले जाने के कुछ ही वर्षों बाद उसकी किताबें किसी पुस्तकालय के तख्ते पर पड़ी धूल चाट रही होंगी. किसी ने अनुमान लगाया था कि आजकल, मरणोपरांत किसी लेखक की उम्र दस-पंद्रह साल से ज्यादा नहीं होती. लोग भूल-भुला जाते हैं. पर लेखक के लिये, भले ही उसकी रचनाओं की कुछ भी गति हो, उसका लेखन, उसके लिये सार्थक क्रिया है, जिसके साथ वह तन-मन से जुड़ा होता है. यह भी मन-भुलावा ही सही. भले ही आपके जीते जी भी कोई पाठक आपकी चीज उठाकर पढ़ना गवारा न करे. भले ही सुधी आलोचक चिल्ला-चिल्लाकर कहते रहें : ''चुक गया. चुक गया. चुक गया.'' विरले ही कभी कोई लेखक स्वयं अपने हाथ से कलम रख देता है. यह उसका जुनून भी है और समझ लीजिये ढर्रा भी है. बुढ़ापे की दहलीज पर पहुंचकर लिखना छोड़ देगा तो जायेगा कहां? अधर में लटक जायेगा. ढर्रा भी अपने में बड़े काम की चीज है. ज्यादा होगा, फुसफुसी कहानियां लिखेगा, अटपटे उपन्यास लिखेगा, इससे नुकसान तो इतना ही होगा कि उसकी किताबों का वजन पांच किलोग्राम से बढ़कर छः किलोग्राम हो जायेगा, सात किलोग्राम हो जायेगा. कुछ किताबें रद्दी के दाम बिकेंगी, पर उसका जुनून तो बना रहेगा, अपनी धुन में तो लगा रहेगा. और रद्दी के दाम भी तो बढ़ रहे हैं.

पर मैं इस जुनून को इतना हल्का भी नहीं समझता. किसी भी काम की भांति यह भी पूरी तन्मयता मांगता है और जिगर का खून मांगता है और दुनिया भर से जुड़ने का गौरव और उल्लास प्रदान करता है.

यों तो जिंदगी में प्रत्येक व्यक्ति अपना रास्ता, टटोल-टटोलकर, स्वयं बनाता है, अपनी ही अक्ल के मुताबिक चलता भी है, पर जिंदगी की राह पर चलते हुए कभी किसी द्वारा दी हुई सीख या किसी के मुंह से सुने दो शब्द मन में अटक जाते हैं और भुलाये नहीं भूलते. ऐसे ही अनेक वाक्य मेरे मन में भी अटके रह गये हैं. मैं नहीं जानता कहां तक उन्होंने मेरा पथ प्रदर्शन किया है, पर मन में अटके जरूर रहे हैं. मेरे पिता कहा करते थे : ''मुट्ठी भर मिट्टी भी उठाना हो तो बड़े ढेर में से उठाना.'' और मां कहा करती थीं : ''थोड़ा लद सवेले आ.'' (यह पंजाबी का 'अखाण' है. देहातों में लोग गधे की पीठ पर भूसी या अनाज के बोरे या बेचनेवाली कोई भी चीज लादकर शहर की ओर निकल जाया करते थे. कहा है कि थोड़ा सामान लादकर ले जाओ ताकि उससे निबटकर जल्दी घर लौट सको. मतलब कि थोड़ी कमाई से संतुष्ट रहो.) और एक सीख मुझे मेरे भाई से भी मिली थी. एक बार कोई जरूरत पड़ने पर मैंने उन्हें लिखा कि अमुक व्यक्ति से मेरी सिफारिश कर दो ताकि मेरा काम हो जाये. जवाब में उन्होंने मुझे लिखा : ''पेड़ पर से अपने हाथ से फल तोड़ने का अपना ही मजा है. मैं तुम्हें इस सुख से वंचित करना नहीं चाहता.''

इसी प्रकार के अनेक वाक्य और वाक्यांश मैं अपने मन में संजोये हुए हूं, अस्तु!

२७.६.१९९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्म साहनी : एक नजर में

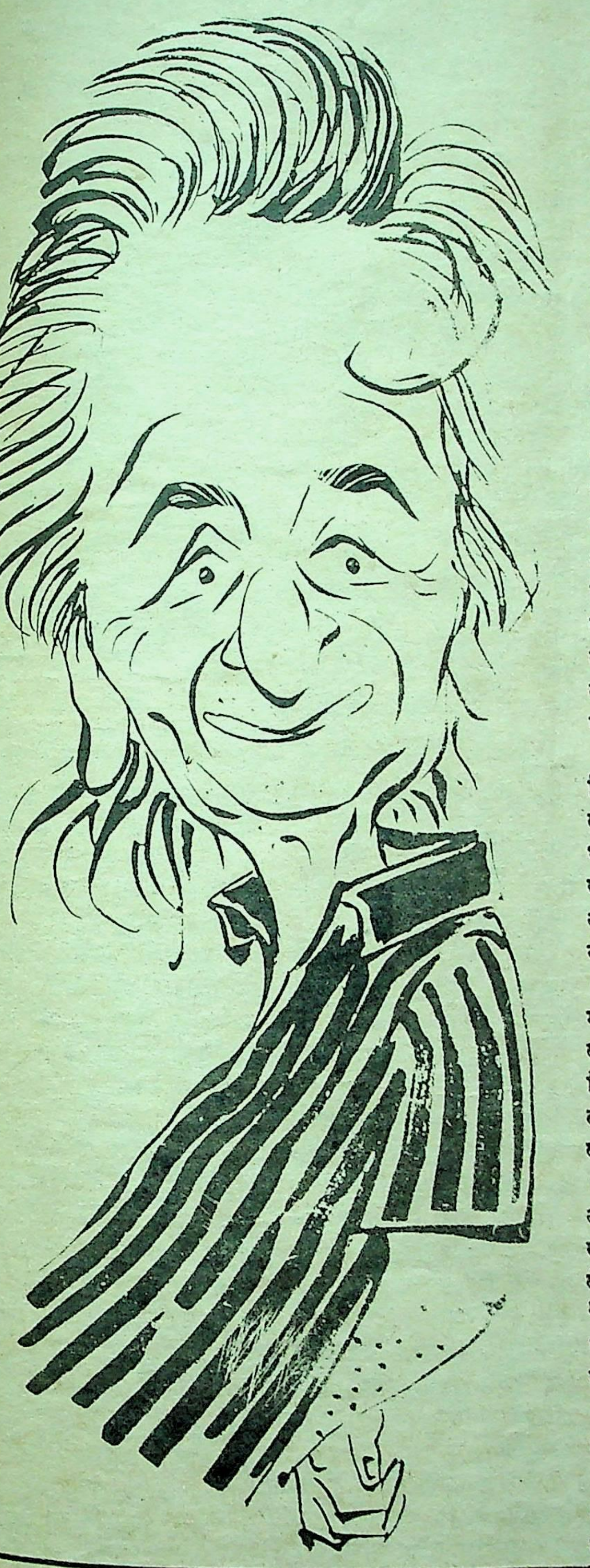

जन्म : ८ अगस्त, १९१५ रावलपिंडी (पाकिस्तान)

शिक्षा : एम. ए. पी-एच. डी.

पिता श्री हरबंसलाल साहनी एवं माता श्रीमती लक्ष्मी देवी. पिता व्यापार करते थे और आर्य समाज के सक्रिय सदस्य थे. आरंभिक शिक्षा गुरुकुल पोठोहार में हुई पर दो वर्ष बाद ही स्थानीय डी.ए.वी.स्कूल में दाखिल. १९३१ में मैट्रिकुलेशन और १९३३ में इंटरमीडियेट की कक्षाएं पास कीं. १९३३ में लाहौर चले गये. वहीं गवर्नमेंट कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया. घर लौटकर पिता के साथ व्यापार करने लगे और साथ ही स्थानीय डी.ए.वी. कॉलेज में ऑनरेरी तौर पर पढ़ाने व नाटक खेलने लगे.

१३ अगस्त, १९४७ को दिल्ली के लिए रवाना. पहले कुछ समय बंबई में अपने बड़े भाई के साथ (बलराज साहनी) रहे. कुछ समय अंबाला के एक कॉलिज में नौकरी भी की. अंततः १९४९-५० में दिल्ली पहुंच गये. यहां युवा रचनाकारों की एक साप्ताहिक गोष्ठी में नियमित रूप से भाग लेने लगे. इन्हीं दिनों दिल्ली कॉलिज में कार्यरत हो गये. १९५७ में भारत सरकार की ओर से इनका चुनाव सोवियत संघ में अनुवादक के रूप में कर लिया गया. ६३ में भारत लौटने पर फिर से आप दिल्ली कॉलिज में पढ़ाने लगे. १९६५ से १९६७ तक 'नई कहानियां' का संपादन किया. सन् १९८० में अध्यापन से अवकाश प्राप्त कर स्वतंत्र लेखन में जुट गये.

अब तक प्रकाशित कृतियां

उपन्यास: 'झरोखे' [१९६७], 'कड़ियां' [१९७०], 'तमस' [१९७३], 'बसंती' [१९८०] तथा 'मय्यादास की माड़ी' [१९८८]

कहानी संग्रह: 'भाग्य रेखा' [१९५३], 'पहला पाठ' [१९५६], 'भटकती राख' [१९६६], 'पटरियां' [१९७३], 'वाङ्चू' [१९७८], 'शोभा यात्रा' [१९८१], 'निशाचर'. [१९८३], 'पाली' [१९८९], के अतिरिक्त 'मेरी प्रिय कहानियां', 'प्रतिनिधि कहनियां' और 'हिंदी कहानी संग्रह' [संपादन].

नाटक: 'हानूश' [१९७७], 'कबिरा खड़ा बजार में' [१९८१], 'माधवी' [१९८४].

जीवनी: 'बलराज, माई ब्रदर' [१९८१].

निबंध संग्रह: 'अपनी बात' [१९८९].

बाल साहित्य: 'गुलेल का खेल' [१९८०] तथा 'वापसी'.

पुरस्कार-सम्मान

- भाषा विभाग, पंजाब द्वारा १९७५ में 'शिरोमणि लेखक' पुरस्कार.
- 'तमस' उपन्यास पर १९७६ में साहित्य अकादेमी पुरस्कार.
- अफ्रोएशियाई लेखक संघ की ओर से १९८० में 'लोटस पुरस्कार'.
- १९७९-८० में दिल्ली साहित्य कला परिषद द्वारा सम्मानित.
- १९८५ में उपन्यास 'बसंती' पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से पुरस्कृत.
- १९९० में हिंदी-उर्दू साहित्य पुरस्कार [लखनऊ].
- १९९० में 'मय्यादास की माडी' उपन्यास के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत.
- अनेक पुस्तकों के विविध भारतीय व विदेशी भाषाओं में अनुवाद.
- नाटकों व फिल्मों में अभिनय.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्मजी की सगाई तो किसी और से साथ तय हुई थी

☐ शीला साहनी

अब

तब

शीलाजी से बातचीत शुरू ही हुई थी कि टेलीफोन मेकेनिक आ गया और उन्होंने थोड़ी देर ठहर जाने की गुजारिश यह कहते हुए की कि यह काम भी मुझे ही करना है. भीतर भीष्मजी बैठे हैं, परंतु वे एक पल के लिए भी इधर नहीं आयेंगे फिर शीला जी टेलीफोन ठीक करवाने में जुट गयीं. घर का हो या बाहर का, रत्ती से रेवा तक का काम शीलाजी करती हैं. भीष्मजी रसोई के काम-धाम में भले ही मदद कर दें, परंतु ड्राइंग-रूम से लेकर बाहर की दुनिया का काम-काज शीलाजी ही संभालती हैं.

टेलीफोन मेकेनिक के चले जाने के बाद बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू हुआ. शीलाजी ने बताया, "देखिए, अभी आपके सामने टेलीफोन मैकेनिक पुराने टेलीफोन सेट का साठ रुपये मांग रहा था. अगर मेरी जगह भीष्मजी होते तो तुरंत निकालकर दे देते.

उन्होंने कहा कि वो पति के रूप में तो बहुत अच्छे हैं, परंतु व्यावहारिक बिल्कुल नहीं हैं. इनकी अच्छाई का सभी नाजायज लाभ उठाते हैं. मैं तो इनकी विनम्रता से परेशान हूं. इनकी विनम्रता का लाभ दूसरे लोग उठाते हैं और उससे तकलीफ मुझे होती है.

वे साधु हैं, कर्मयोगी हैं, निष्काम कर्मयोगी हैं, ये सारी बातें तो बड़ी ऊंची हैं, परंतु बीबी के लिए यह कमाल की बातें नहीं होती, बल्कि मुसीबत होती हैं.

शीलाजी ने बताया कि भीष्मजी को हुक्म लेना खूब आता है, देना नहीं आता. वे खुद मेरे साथ खाना बनाते हैं, ये कुछ भी करते हुए कभी नहीं थकते. उन्होंने कभी भी मुझे दबाया नहीं, परंतु मेरी सुख-सुविधाओं के प्रति उनका ध्यान भी नहीं गया.

मुझे इस बात का हमेशा डर लगा रहता है कि भीष्मजी फिर मुझे फंसायेंगे! वे हमेशा निश्चिंतता से अनिश्चिता की ओर प्रस्थान करते हैं. जैसे कि मास्को चले गये. वे पहले कांग्रेस में थे, फिर कम्युनिस्ट पार्टी में चले गये. उन्होंने कभी नहीं सोचा कि बाल-बच्चों का क्या होगा?

वैसे, इनके साथ रहकर मुझे साहित्य में रुचि पैदा हुई. मैं तो दर्शन-शास्त्र की छात्रा थी.

भीष्मजी से पहली बार आमने सामने होने के संदर्भ में बताते हुए शीलाजी कहती हैं कि रावलपिंडी में मेरे पिताजी पुलिस में थे. एक बार भीष्मजी 'भूतगाड़ी' नामक नाटक को खुद रूपांतरित और निर्देशित करके अभिनय कर रहे थे. पिताजी मुझे नाटक दिखाने ले गये. इसी नाटक में भीष्मजी को मैंने पहली बार देखा. यह नाटक मुझे काफी अच्छा लगा. इसमें भीष्मजी ने अभिनय भी अच्छा किया था.

मैं रावलपिंडी में डी.ए.वी. कॉलेज में बी.ए. (तृतीय वर्ष) की छात्रा थी. वहीं अंग्रेजी के क्लास में पढ़ाते हुए उनसे पहली मुलाकात हुई. उन्होंने बहुत अच्छा पढ़ाया था. अंग्रेजी के नाटक का पहले उन्होंने साराश बता दिया, फिर रोचक ढंग से नाटक पढ़ाया. इससे मैं काफी प्रभावित हुई थी.

उन दिनों मैं कॉलेज साइकिल से जाती थी और भीष्मजी बहुत सीधे-सादे, बहुत चुप और गंभीर रहने वाले प्राध्यापक थे, जबकि मैं काफी चंचल थी.

१९४४ में मैं बीस बरस की थी और भीष्म जी २८ बरस के थे. एम.ए. की परीक्षा देने के पांच दिनों के बाद मेरी शादी हुई. हालांकि भीष्म जी की सगाई उनके माता-पिता ने बचपन में ही किसी और लड़की के साथ तय कर रखी थी. वह लड़की काफी मोटी-तगड़ी थी. वह पढ़ी-लिखी नहीं थी. भीष्मजी ने मुझे पसंद किया था. ☐

☐ प्रस्तुति : सामबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तमस' और 'मोहन जोशी' का अभिनेता भीष्म साहनी कैसा था?

उन्होंने किरदार को बखूबी निभाया

□ गोबिंद निहलानी

देखिए, विभाजन की थीम, बल्कि उससे भी ज्यादा सांप्रदायिकता पर एक फिल्म करने का इरादा था बहुत दिनों से. इस लिहाज से मैं एक अच्छा साहित्यिक कार्य ढूंढ रहा था. इस विषय पर मुझे लघु कथाएं तो बहुत मिलीं, पर उपन्यास कोई नहीं मिल पा रहा था. 'झूठा सच' तो था, पर काफी बड़ा था. जिस दौरान 'गांधी' बन रही थी, उस दौरान मैं एक दिन दिल्ली के श्रीराम सेंटर स्थित किताबों की एक दुकान में गया, यों ही किताबें आदि देखने. वहीं मुझे 'तमस' नजर आयी. मैंने इससे पहले कभी भी भीष्म साहनी को पढ़ा नहीं था. तमस नाम मुझे बहुत अच्छा लगा और मैंने किताब खरीद ली. फिर जब पढ़ना शुरू किया, तो रख ही नहीं पाया. बांध लिया मुझे उपन्यास ने. तभी मैंने सोच लिया था कि इस पर फिल्म बनाऊंगा.

मुझे इस उपन्यास में दो चीजें दिखाई दीं. एक तो भीष्मजी ने यह उपन्यास तीस साल बाद लिखा था. यानी वक्त की इतनी लंबी दूरी होने के बावजूद बिल्कुल सटीक या कहें प्रासंगिक नजर आया. फिर उन्होंने जो बात कही थी, वह विशुद्ध रूप से भावनात्मक नहीं थी. पूरे उपन्यास में एक सादापन था, सहजता थी और सबसे अहम बात कि ईमानदारी दिखी. किसी भी धर्म के ऊपर 'जजमेंट' पास करने की कोशिश नहीं थी. कृत्रिमता मुझे बहुत कम दिखी. तो जो ये ईमानदारी, अंर्तदृष्टि दिखी, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ. सच कहूं तो इसके पहले मैंने ऐसा उपन्यास नहीं पढ़ा था.

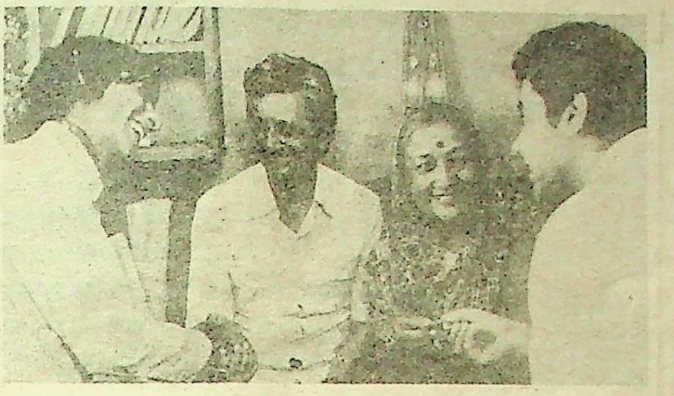

'मोहन जोशी हाजिर हो' फिल्म के एक दृश्य में नसीरुद्दीन शाह और दीना पाठक के बीच अभिनेता भीष्म साहनी.

एक महत्वपूर्ण बात यह कि चूंकि भीष्म साहनी प्रगतिशील विचारधारा के आदमी हैं, लिहाजा उनका नजरिया सांप्रदायिक नहीं है. इसीलिए उपन्यास की मुख्य बात जो है, यह नहीं है कि विभाजन क्यों हुआ; बल्कि यह है कि राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किस तरह लोगों का इस्तेमाल किया जाता है. मतलब आज की सच्चाई के साथ 'तमस' गहरे जुड़ा हुआ है.

मैं आज भी गर्व का अनुभव करता हूं कि मैंने भीष्मजी के तमस का फिल्मांकन किया. कम-से-कम इस बहाने एक सार्थक बहस की शुरुआत तो हुई. एक जागृति तो पैदा हुई.

जहां तक भीष्मजी द्वारा 'तमस' में अभिनय करने की बात है, तो जब मैंने उपन्यास पढ़ा और सरदार हरनाम सिंह का चरित्र पढ़ा तो मुझे लगा कि भीष्मजी इस किरदार को बखूबी निभा पायेंगे. क्योंकि उस चरित्र में एक सादापन था, जिसे कहते हैं न पैदाइशी ईमानदारी, वह थी और भीष्मजी में ये सारी बातें मुझे दिखायी दीं. उनकी आंखों में, आवाज में मुझे ईमानदारी दिखी. इसलिए मैंने उन्हें चुना. जब हम शूटिंग कर रहे थे, तो मेरा अंदाजा सही निकला. बेहद स्वाभाविक अभिनय किया उन्होंने. उनकी 'परफार्मेंस' ऐसी थी कि वो पूरी यूनिट को 'रच' करते थे.

उन्होंने बेहतरीन अभिनय किया

□ सईद मिर्जा

जिन्होंने 'मोहन जोशी हाजिर हो' देखी है, वे उसमें भीष्म साहनी के अभिनय को यकीनन आज तक भुला नहीं पाये होंगे. एक प्रतिष्ठित लेखक द्वारा उतना स्वाभाविक अभिनय करना कई लोगों के आश्चर्य की वजह बन गया था. मंजे हुए अभिनेता-अभिनेत्रियों के बीच खालिस लेखक-कहानीकार भीष्म साहनी ने अपने किरदार को जिस तरीके से जिया, उसने यह प्रमाणित कर दिया कि साहनी प्रतिभाशाली सृजनकर्मी ही नहीं, प्रतिभाशाली अभिनयकर्मी भी हैं.

अपनी लीक से हटकर बनायी गयी फिल्मों की वजह से हमेशा चर्चा के केंद्र में रहनेवाले सईद अख्तर मिर्जा 'मोहन जोशी हाजिर हो' के निर्देशक थे. अभिनेता भीष्म साहनी पर उन्होंने अपने विचार कुछ इन शब्दों में व्यक्त किये—''मैंने भीष्मजी से अभिनय करवाने का निर्णय इसलिए लिया, क्योंकि मुझे उनके चेहरे पर बहुत कुछ नजर आया. साफ लफ्जों में कहूं, तो उनके चेहरे पर मुझे तवारीख (इतिहास) नजर आयी, एक तरह की 'डाक्यूमेंटरी'. और फिल्म इस बात की शाहिद (गवाह) है कि मेरी आंखों ने धोखा नहीं खाया था. कितनी गजब की 'परफारमेंस' दी उन्होंने! मैं जितना सोचता था, उससे कहीं बढ़कर बेहतरीन काम किया.

''सबसे अहम बात यह रही कि मुझे उन्हें कुछ भी सिखाना नहीं पड़ा. एक बार भी यह नहीं कहना पड़ा, कि मैं यह चाहता हूं या आप ऐसा करिए. जबकि वो खुद मुझसे कहते थे कि तुम सबको कुछ-न-कुछ बताते हो, सिखाते हो, मुझे भी सिखाओ. लेकिन बतौर निर्देशक मैं जानता था कि उन्हें कुछ सिखाने-बताने की कोई जरूरत ही नहीं है. यकीनन भीष्म साहनी जी में अद्भुत अभिनय-क्षमता है, महान अभिनेता हैं वो.

''स्वभाव इतना सहयोगी है कि पूछिए मत. एक अत्यंत उम्दा इनसान में जितनी खासियत होनी चाहिए, सारी-की-सारी उनमें हैं. बुजुर्ग होते हुए भी वो किसी मुश्किल के सामने विचलित नहीं होते थे. 'पानी में तैरते' हुए वो कई दफा लोकेशन पर पहुंचे और एक बार भी यह शिकायत नहीं की कि भई मैं बुजुर्ग आदमी हूं, मुझे इस तरह तकलीफ होती है.'' □

—प्रस्तुति : संजय मासूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाङ्‌चू

रेखांकन : हेमज्योतिका

भीष्म जी की प्रतिनिधि कहानी के रूप में आमतौर पर 'चीफ की दावत' और 'अमृतसर आ गया है' के नाम लिये जाते हैं पर वे स्वयं 'वाङ चू' को भी अपनी प्रतिनिधि कहानी मानते हैं. प्रस्तुत है यह कहानी और डॉ. गंगा प्रसाद विमल की टिप्पणी जो इस कहानी को पुनर्मूल्यांकित करने का अपने ढंग से प्रयास भी करती है.

तभी दूर से वाङ् चू आता दिखाई दिया.

नदी के किनारे, लालमंडी की सड़क पर धीरे-धीरे डोलता-सा चला आ रहा था. धूसर रंग का चोगा पहने था और दूर से लगता था कि बौद्ध भिक्षुओं की ही भांति उसका सिर भी घुटा हुआ है. पीछे शंकराचार्य की ऊंची पहाड़ी थी और ऊपर स्वच्छ नीला आकाश. सड़क के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे सफेदे के पेड़ों की कतारें. क्षण भर के लिए मुझे लगा, जैसे वाङ् चू इतिहास के पन्नों पर से उतरकर आ गया है. प्राचीन-काल में इसी भांति देश-विदेश से आनेवाले चीवरधारी भिक्षु पहाड़ों और घाटियों को लांघकर भारत में आया करते होंगे. अतीत के ऐसे ही रोमांचकारी धुंधलके में वाङ् चू भी चलता हुआ नजर आया. जब से वह श्रीनगर में आया था, बौद्ध विहारों के खंडहरों और संग्रहालयों में घूम रहा था. इस समय भी वह लालमंडी के संग्रहालय में से निकलकर आ रहा था, जहां बौद्धकाल के अनेक अवशेष रखे हैं. उसकी मन:स्थिति को देखते हुए वह सचमुच ही वर्तमान से कटकर अतीत के ही किसी कालखंड में विचर रहा था.

"बोधिसत्वों से भेंट हो गयी?" पास आने पर मैंने चुटकी ली.

वह मुस्करा दिया, हल्की टेढ़ी-सी मुस्कान, जिसे मेरी मौसेरी बहन डेढ़ दांत की मुस्कान कहा करती थी, क्योंकि मुस्कराते वक्त वाङ् चू का ऊपर का होंठ केवल एक ओर से थोड़ा-सा ऊपर को उठता था.

"संग्रहालय के बाहर बहुत-सी मूर्तियां रखी हैं. मैं वही देखता रहा." उसने धीमे से कहा, फिर वह सहसा भावुक होकर बोला, "एक मूर्ति के केवल पैर-ही-पैर बचे हैं..."

मैंने सोचा, आगे कुछ कहेगा, परंतु वह इतना भावविह्वल हो उठा था कि उसका गला रुंध गया और उसके लिए बोलना असंभव हो गया.

हम एक साथ घर की ओर लौटने लगे.

"महाप्राण के भी पैर ही पहले दिखाए जाते थे." उसने कांपती-सी आवाज़ में कहा और अपना हाथ मेरी कोहनी पर रख दिया. उसके हाथ का हल्का-सा कंपन, धड़कते दिल की तरह महसूस हो रहा था.

"आरंभ में महाप्राण की मूर्तियां नहीं बनाई जाती थीं ना! तुम तो जानते हो, पहले स्तूप के नीचे केवल पैर ही दिखाए जाते थे. मूर्तियां तो बाद में बनाई जाने लगी थीं."

ज़ाहिर है बोधिसत्व के पैर देखकर उसे महाप्राण के पैर याद हो आये थे और वह भावुक हो उठा था. कुछ पता नहीं चलता था, कौन-सी बात किस वक्त वाङ् चू को पुलकाने लगे, किस वक्त वह गदगद होने लगे.

"तुमने बहुत देर कर दी. सभी लोग तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं. मैं चिनारों के नीचे भी तुम्हें खोज आया हूं," मैंने कहा.

"मैं संग्रहालय में था."

"वह तो ठीक है, पर दो बजे तक हमें हब्बा कदल पहुंच जाना चाहिए, वरना जाने का कोई लाभ नहीं."

उसने छोटे-छोटे झटकों के साथ तीन बार सिर हिलाया और कदम बढ़ा दिये.

वाङ् चू भारत में मतवाला बना घूम रहा था. वह महाप्राण के जन्म-स्थान लुंबिनी की यात्रा नंगे पांव कर चुका था, सारा रास्ता हाथ जोड़े हुए. जिस-जिस दिशा में महाप्राण के चरण उठे थे, वाङ् चू मंत्रमुग्ध-सा उसी-उसी दिशा में घूम आया था. सारनाथ में, जहां महाप्राण ने अपना पहला प्रवचन किया था और दो मृगशावक मंत्रमुग्ध-से झाड़ियों में से निकलकर उनकी ओर देखते रह गये थे. वाङ् चू एक पीपल के पेड़ के नीचे घंटों नतमस्तक बैठा रहा था, यहां तक कि उसके कथनानुसार उसके मस्तक में अस्फुट-से वाक्य गूंजने लगे थे और उसे लगा था, जैसे महाप्राण का पहला प्रवचन सुन रहा है. वह इस भक्तिपूर्ण कल्पना में इतना गहरा डूब गया था कि सारनाथ में ही रहने लगा था. गंगा की धारा को वह दसियों शताब्दियों के धुंधलके में पावन जलप्रवाह के रूप में देखता. जब से श्रीनगर में आया था, बर्फ से ढके पहाड़ों की चोटियों की ओर देखते हुए अक्सर मुझसे कहता, "वह रास्ता ल्हासा को जाता है ना, उसी रास्ते बौद्ध ग्रंथ तिब्बत में भेजे गये थे," वह उस पर्वतमाला को भी पुण्य-पावन मानता था, क्योंकि उन पर बिछी पगडंडियों के रास्ते बौद्ध भिक्षु तिब्बत की ओर गये थे.

वाङ् चू कुछ वर्षों पहले वृद्ध प्रोफेसर तान शान के साथ भारत आया था. कुछ दिनों तक तो वह पहले उन्हीं के साथ रहा और हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन करता रहा, फिर प्रोफेसर शान चीन लौट गये और वह यहीं बना रहा और बौद्ध सोसाइटी से अनुदान प्राप्त कर सारनाथ में आकर बैठ गया. भावुक काव्यमयी प्रकृति का जीव, जो प्राचीनता के मनमोहक वातावरण में विचरते रहना चाहता था. वह यहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्यों की खोज करने नहीं आया था. वह तो बोधिसत्वों की मूर्तियों को देखकर गद्‌गद होने आया था. महीने भर से संग्रहालयों के चक्कर काट रहा था, लेकिन उसने कभी नहीं बताया कि बौद्ध धर्म की किस शिक्षा से उसे सबसे अधिक प्रेरणा मिलती है. न तो वह किसी तथ्य को पाकर उत्साह से खिल उठता, न उसे कोई संशय परेशान करता. वह भक्त अधिक और जिज्ञासु कम था.

मुझे याद नहीं कि उसने हमारे साथ कभी खुलकर बात की हो, या किसी विषय पर अपना मत पेश किया हो. उन दिनों मेरे दोस्तों के बीच घंटों बहसें चला करतीं, कभी देश की राजनीति के बारे में, कभी धर्म के बारे में, लेकिन वाङ्‌-चू इनमें कभी भाग नहीं लेता था. वह सारा वक्त धीमे-धीमे मुस्कराता रहता और कमरे के एक कोने में दुबककर बैठा रहता. उन दिनों देश में वलवलों का सैलाब-सा उठ रहा था. स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर था और हमारे बीच उसी की चर्चा रहती—कांग्रेस कौन-सी नीति अपनाएगी, आंदोलन कौन-सा रुख पकड़ेगा. क्रियात्मक स्तर पर तो हम लोग कुछ करते-कराते नहीं थे, लेकिन भावनात्मक स्तर पर उसके साथ बहुत कुछ जुड़े हुए थे. इस पर वाङ्‌-चू की तटस्थता कभी हमें अखरने लगती, तो कभी अचंभे में डाल देती. वह हमारे देश की ही गतिविधि के बारे में नहीं, अपने देश की गतिविधि में भी कोई विशेष दिलचस्पी नहीं लेता था. उसके अपने देश के बारे में भी पूछो, तो मुस्कराता सिर हिलाता रहता था.

कुछ दिनों से श्रीनगर की हवा भी बदली हुई थी. कुछ मास पहले यहां गोली चली थी. कश्मीर के लोग महाराजा के खिलाफ उठ खड़े हुए थे, और अब कुछ दिनों से शहर में एक नयी उत्तेजना पायी जाती थी. नेहरूजी श्रीनगर आनेवाले थे और उनका स्वागत करने के लिए नगर को दुल्हन की तरह सजाया जा रहा था. आज ही दोपहर को नेहरूजी श्रीनगर पहुंच रहे थे. नदी के रास्ते नावों के जुलूस की शक्ल में उन्हें लाने की योजना थी और इसी कारण मैं वाङ्‌-चू को खोजता हुआ उस ओर आ निकला था.

हम घर की ओर बढ़े जा रहे थे, जब सहसा वाङ्‌-चू ठिठककर खड़ा हो गया.

"क्या मेरा जाना बहुत जरूरी है? जैसा तुम कहो..."

मुझे धक्का-सा लगा. ऐसे समय में, जब लाखों लोग नेहरूजी के स्वागत के लिए इकट्ठे हो रहे थे, वाङ्‌-चू का यह कहना कि अगर वह साथ में न जाये, तो कैसा रहे, मुझे सचमुच बुरा लगा. लेकिन फिर स्वयं ही कुछ सोचकर उसने अपने आग्रह को दोहराया नहीं और हम घर की ओर साथ-साथ जाने लगे.

कुछ देर बाद हब्बा कदल के पुल के निकट लाखों की भीड़ में हम लोग खड़े थे—मैं, वाङ्‌-चू तथा मेरे दो-तीन मित्र. चारों ओर, जहां तक नजर जाती, लोग-ही-लोग थे—मकानों की छतों पर, पुल पर, नदी के ढलवां किनारों पर. मैं बार-बार कनखियों से वाङ्‌-चू के चेहरे की ओर देख रहा था कि उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई है, कि हमारे दिल में उठनेवाले वलवलों का उस पर क्या असर हुआ है. यों भी यह मेरी आदत-सी गयी बन है, जब भी कोई विदेशी साथ में हो, मैं उसके चेहरे का भाव पढ़ने की कोशिश करता रहता हूं कि हमारे रीति-रिवाज, हमारे जीवन-यापन के बारे में उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है. वाङ्‌-चू अधमुंदी आंखों से सामने का दृश्य देखे जा रहा था. जिस समय नेहरूजी की नाव सामने आयी, तो जैसे मकानों की छतें भी हिल उठीं. राजहंस की शक्ल की सफेद नाव में नेहरूजी स्थानीय नेताओं के साथ खड़े हाथ हिला-हिलाकर लोगों का अभिवादन कर रहे थे. और हवा में फूल-ही-फूल बिखर गये. मैंने पलटकर वाङ्‌-चू के चेहरे की ओर देखा. वह पहले ही की तरह निश्चेष्ट-सा सामने का दृश्य देखे जा रहा था.

"आपको नेहरूजी कैसे लगे?" मेरे एक साथी ने वाङ्‌-चू से पूछा.

वाङ्‌ चू ने अपनी टेढ़ी-सी आंखें उठाकर उसके चेहरे की ओर देखा. फिर अपनी डेढ़ दांत की मुस्कान के साथ कहा, "अच्छा, बहुत अच्छा!"

वाङ्‌-चू मामूली-सी हिंदी और अंग्रेजी जानता था. अगर तेज बोलो तो उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता था.

नेहरूजी की नाव दूर जा चुकी थी, लेकिन नावों का जुलूस अभी भी चलता जा रहा था, जब वाङ्‌-चू सहसा मुझसे बोला, "मैं थोड़ी देर के लिए संग्रहालय में जाना चाहूंगा. इधर से रास्ता जाता है, मैं स्वयं चला जाऊंगा." और वह बिना कुछ कहे, एक बार अधमिची आंखों से मुस्कराया और हल्के-से हाथ हिलाकर मुड़ गया.

हम सभी हैरान रह गये. इसे सचमुच जुलूस में रुचि नहीं रही होगी, जो इतनी जल्दी संग्रहालय की ओर अकेला चल दिया है.

"यार, किस बूदम को उठा लाये हो? यह क्या चीज है? कहां से पकड़ लाए हो इसे?" मेरे एक मित्र ने कहा.

"बाहर का रहनेवाला है, इसे हमारी बातों में कैसे रुचि हो सकती है!" मैंने सफाई देते हुए कहा.

"वाह, देश में इतना कुछ हो रहा हो और इसे रुचि ही न हो!"

वाङ्‌-चू अब तक दूर जा चुका था और भीड़ में से निकलकर पेड़ों की कतार के नीचे आंखों से ओझल होता जा रहा था.

"मगर यह है कौन?" दूसरा एक मित्र बोला, "यह न बोलता है, न चहकता है. कुछ पता नहीं चलता, हंस रहा है, या रो रहा है! सारा वक्त एक कोने में दुबककर बैठा रहता है."

"नहीं, नहीं, बड़ा समझदार आदमी है. पिछले पांच साल से यहां पर रह रहा है. बड़ा पढ़ा-लिखा आदमी है. बौद्ध धर्म के बारे में बहुत कुछ जानता है." मैंने फिर उसकी सफाई देते हुए कहा.

मेरी नजर में इस बात का बड़ा महत्त्व था कि वह बौद्ध ग्रंथ बांचता है और उन्हें बांचने के लिए इतनी दूर से आया है.

> कभी वह मुस्कराता, कभी सिर हिलाता और सारा वक्त दार्शनिकों की तरह मेरे चेहरे की ओर देखता रहा. मुझे लग रहा था कि मेरे कहे का उस पर कोई असर नहीं हो रहा, कि चिकने घड़े पर मैं पानी उंडेले जा रहा हूं.

"अरे भाड़ में जाये ऐसी पढ़ाई! वाह जी, जुलूस को छोड़कर म्यूजियम की ओर चल दिया है!"

"सीधी-सी बात है, यार!" मैंने जोड़ा, "इसे यहां भारत का वर्तमान खींचकर नहीं लाया, भारत का अतीत लाया है. ह्यून त्सांग भी तो यहां बौद्ध ग्रंथ ही बांचने आया था. यह भी शिक्षार्थी है. बौद्ध मत में इसकी रुचि है."

घर लौटते हुए हम लोग रास्ता भर वाङ्‌-चू की ही चर्चा करते रहे. अजय का मत था कि अगर वह पांच साल भारत में काट गया है, तो अब वह जिंदगी भर यहीं पर रहेगा.

"अब आ गया है तो लौटकर नहीं जायेगा. भारत में एक बार परदेशी आ जाये तो लौटने का नाम नहीं लेता."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारत देश वह दलदल है कि जिसमें एक बार बाहर के आदमी का पांव पड़ जाये, तो वह धंसता ही चला जाता है, निकलना चाहे भी, तो नहीं निकल सकता!" दिलीप ने मजाक में कहा, "न जाने कौन-से कमल फूल तोड़ने के लिए इस दलदल में घुसा है."

"हमारा देश हम हिंदुस्तानियों को पसंद नहीं, बाहर के लोगों को तो बहुत पसंद है!" मैंने कहा.

"पसंद क्यों न होगा! यहां थोड़े में गुजर हो जाती है, सारा वक्त धूप खिली रहती है, फिर बाहर के आदमी को लोग परेशान नहीं करते, जहां बैठा है वहीं बैठा रहने देते हैं. इस पर उन्हें तुम जैसे झुड्डू भी मिल जाते हैं, जो उनका गुणगान करते रहते हैं और आवभगत करते रहते हैं! तुम्हारा वाङ्-चू भी यहीं पर मरेगा...!"

हमारे यहां उन दिनों मेरी छोटी मौसेरी बहन ठहरी हुई थी, वही जो वाङ्-चू की मुस्कान को डेढ़ दांत की मुस्कान कहा करती थी. चुलबुली-सी लड़की बात-बात पर ठिठोली करती रहती थी. मैंने दो-एक बार वाङ्-चू को कनखियों से उसकी ओर देखते पाया था, लेकिन कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह सभी को कनखियों से ही देखता. पर उस शाम नीलम मेरे पास आयी और बोली, "आपके दोस्त ने मुझे उपहार दिया है. प्रेमोपहार!"

मेरे कान खड़े हो गये, "क्या दिया है?"

"झूमरों का जोड़ा!"

और उसने दोनों मुट्ठियां खोल दीं, जिनमें चांदी के कश्मीरी चलन के दो सफेद झूमर चमक रहे थे. और फिर वह दोनों झूमर अपने कानों के पास ले जाकर बोली, "कैसे लगते हैं?"

मैं हतबुद्धि-सा नीलम की ओर देख रहा था.

"उसके अपने कान कैसे भूरे-भूरे हैं!" नीलम ने हंसकर कहा.

"किसके?"

"मेरे इस प्रेमी के!"

"तुम्हें उसके भूरे कान पसंद हैं?"

"बहुत ज्यादा! जब शर्माता है, तो ब्राउन हो जाते हैं, गहरे ब्राउन!" और नीलम खिलखिलाकर हंस पड़ी.

लड़कियां कैसे उस आदमी के प्रेम का मजाक उड़ा सकती हैं, जो उन्हें पसंद न हो! या कहीं नीलम मुझे बना तो नहीं रही है?

पर मैं इस सूचना से बहुत विचलित नहीं हुआ था. नीलम लाहौर में पढ़ती थी और वाङ्-चू सारनाथ में रहता था और अब वह हफ्ते भर में श्रीनगर से वापस जानेवाला था. इस प्रेम का अंकुर अपने आप ही जल-भुन जायेगा.

"नीलम, ये झूमर तो तुमने उससे ले लिये हैं, पर इस प्रकार की दोस्ती अंत में उसके लिए दुःखदायी होगी. बने-बनायेगा कुछ नहीं?"

"वाह भैया, तुम भी कैसे दकियानूसी हो! मैंने भी चमड़े का एक राइटिंग पैड उसे उपहार में दिया है. मेरे पास पहले से पड़ा था, मैंने उसे दे दिया. जब लौटेगा, तो प्रेम-पत्र लिखने में उसे आसानी होगी."

"वह क्या कहता था?"

"कहता क्या था, सारा वक्त उसके हाथ कांपते रहे और चेहरा कभी लाल होता रहा, कभी पीला. कहता था, मुझे पत्र लिखना, मेरे पत्रों का जवाब देना. और क्या कहेगा बेचारा, भूरे कानोंवाला!"

मैंने ध्यान से नीलम की ओर देखा, पर उसकी आंखों में मुझे हंसी के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं दिया. लड़कियां दिल की बात छुपाना खूब जानती हैं. मुझे लगा, नीलम उसे बढ़ावा दे रही है. उसके लिए यह खिलवाड़ था, लेकिन वाङ्-चू जरूर इसका दूसरा ही अर्थ निकालेगा.

इसके बाद मुझे लगा कि वाङ्-चू अपना संतुलन खो रहा है. उसी रात मैं अपने कमरे की खिड़की के पास खड़ा बाहर मैदान में चिनारों की पांत की ओर देख रहा था, जब चांदनी में, कुछ दूरी पर पेड़ों के नीचे मुझे वाङ्-चू टहलता दिखाई दिया. वह अक्सर रात को देर तक पेड़ों के नीचे टहलता रहता था. पर आज वह अकेला नहीं था. नीलम भी उसके साथ ठुमक-ठुमककर चलती जा रही थी. मुझे नीलम पर गुस्सा आया. लड़कियां कितनी जालिम होती हैं! यह जानते हुए भी कि इस खिलवाड़ से वाङ्-चू की बेचैनी बढ़ेगी, वह उसे बढ़ावा दिये जा रही थी.

दूसरे रोज खाने की मेज पर नीलम फिर उसके साथ ठिठोली करने लगी. किचन में से एक चौड़ा-सा एलुमीनियम का डिब्बा उठा लायी. उसका चेहरा तपे तांबे जैसा लाल हो रहा था.

"आपके लिए रोटियां और आलू बना लायी हूं. आम के अचार की फांक भी रखी है. आप जानते हैं, फांक किसे कहते हैं? एक बार कहो तो, फांक! कहो वाङ्-चू जी, फांक!"

उसने नीलम की ओर खोयी-खोयी आंखों से देखा और बोला, "बांक!" हम सभी खिलखिलाकर हंस पड़े.

"बांक नहीं फांक!"

"बांक!" फिर हंसी का फव्वारा फूट पड़ा.

नीलम ने डिब्बा खोला. उसमें से आम के अचार का टुकड़ा निकालकर उसे दिखाते हुए बोली, "यह है फांक, फांक इसे कहते हैं!" और उसे वाङ्-चू की नाक के पास ले जाकर बोली, "इसे सूंघने पर मुंह में पानी भी आता है. आया मुंह में पानी? अब कहो, फांक!"

"नीलम क्या फिजूल बातें कर रही हो! बैठो आराम से!" मैंने डांटते हुए कहा.

नीलम बैठ गयी पर उसकी हरकतें बंद नहीं हुईं. बड़े आग्रह से वाङ्-चू से कहने लगी, "बनारस जाकर हमें भूल नहीं जाइयेगा! हमें खत जरूर लिखियेगा. और अगर किसी चीज की जरूरत हो तो संकोच नहीं कीजियेगा."

वाङ्-चू शब्दों के अर्थ तो समझ लेता था, लेकिन उनके पीछे व्यंग्य की ध्वनि वह नहीं पकड़ पाता था. वह अधिकाधिक विचलित महसूस कर रहा था.

"भेड़ की खाल की जरूरत हो, या कोई नमदा, या अखरोट..."

"नीलम!"

"क्यों भैया, भेड़ की खाल पर बैठकर ग्रंथ बांचेंगे?"

वाङ्-चू के कान लाल होने लगे. शायद पहली बार उसे भास होने लगा था कि नीलम ठिठोली कर रही है. उसके कान सचमुच भूरे रंग के हो रहे थे, जिनका वह मजाक उड़ाया करती थी.

"नीलमजी, आप लोगों ने मेरा बड़ा अतिथि-सत्कार किया है. मैं बड़ा कृतज्ञ हूं."

हम सब चुप हो गये. नीलम भी झेंप-सी गयी. वाङ्-चू ने जरूर ही उसकी ठिठोली को समझ लिया होगा. उसके मन को जरूर ठेस लगी होगी. पर मेरे मन में यह विचार भी उठा कि एक तरह से यह अच्छा ही है कि नीलम के प्रति उसकी भावना बदले, उसे ही सबसे अधिक परेशानी होगी.

शायद वाङ्-चू अपनी स्थिति को जानते-समझते हुए भी एक स्वाभाविक आकर्षण की चपेट में आ गया था. भावुक व्यक्ति का अपने पर कोई काबू नहीं होता. वह पछाड़ खाकर गिरता है, तभी अपनी भूल को समझ पाता है.

सप्ताह के अंतिम दिनों में वह रोज कोई-न-कोई उपहार लेकर आने लगा. एक बार मेरे लिए भी एक चोगा ले आया और बच्चों की तरह जिद करने लगा कि मैं और वह अपना-अपना चोगा पहनकर एक साथ घूमने जायें. संग्रहालय में वह अब भी जाता था, दो-एक बार नीलम को भी अपने साथ ले गया था और लौटने पर सारी शाम नीलम बोधिसत्वों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिल्ली उड़ाती रही थी. मैं मन-ही-मन नीलम के इस व्यवहार का स्वागत ही करता रहा, क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि वाङ्‌ चू की कोई भावना हमारे घर में जड़ जमा पाये. सप्ताह बीत गया और वाङ्‌ चू सारनाथ वापस लौट गया.

वाङ्‌ चू के चले जाने के बाद उसके साथ मेरा संपर्क वैसा ही रहा, जैसा आमतौर पर एक परिचित व्यक्ति के साथ रहता है. गाहे-ब-गाहे कभी खत आ जाता, कभी किसी आते-जाते व्यक्ति से उसकी सूचना मिल जाती. यह उन लोगों में से था, जो बरसों तक औपचारिक परिचय की परिधि पर डोलते रहते हैं, न परिधि लांघकर अंदर आते हैं और न ही पीछे हटकर आंखों से ओझल होते हैं. मुझे इतनी ही जानकारी रही कि उसकी समतल और बंधी-बंधाई दिनचर्या में कोई अंतर नहीं आया. कुछ देर तक मुझे कुतूहल-सा बना रहा कि नीलम और वाङ्‌ चू के बीच की बात आगे बढ़ी या नहीं, लेकिन लगा कि वह प्रेम भी चर्चा करते समय भी वह बहुत चहका नहीं. दो-एक ग्रंथों के बारे में बताता रहा, जिनमें से वह कुछ टिप्पणियां लेता रहा था. अपने किसी लेख की भी चर्चा उसने की, जिस पर वह अभी काम कर रहा था. नीलम के साथ उसकी चिट्ठी-पत्री चलती रही, उसने बताया. हालांकि नीलम कब की ब्याही जा चुकी थी और दो बच्चों की मां बन चुकी थी. समय की गति के साथ हमारी मूल धारणाएं भले ही न बदलें पर उनके आग्रह में परिवर्तन होता रहता है. अपने अध्ययन आदि की भी उसने चर्चा की, वहां भी आग्रह और उत्सुकता में स्थिरता-सी आ गयी थी. पहले जैसी भावविह्वलता नहीं थी. बोधिसत्वों के पैरों पर अपने प्राण निछावर नहीं करता फिरता था, लेकिन अपने जीवन से संतुष्ट था. पहले की ही भांति थोड़ा खाता, थोड़ा पढ़ता, थोड़ा भ्रमण करता और थोड़ा सोता था और दूर लड़कपन के झुटपुटे में किसी भावावेश में चुने गये अपने जीवन-पथ पर कछुए की चाल मजे से चलता आ रहा था.

खाना खाने के बाद हमारे बीच बहस छिड़ गयी, "सामाजिक

बम और बलराज साहनी

एक दिन एक पुलिस अधिकारी, अपने साथ सिपाहियों की एक टुकड़ी को लिए हमारे घर पर पहुंच गया. वह अपने साथ हमारे घर की तलाशी लेने का हुक्मनामा लेकर आया था. पिताजी तो भौंचक्के रह गये और बेहद घबरा गये. पूरे तीन दिन तक हमारे घर की तलाशी ली जाती रही, पर बलराज के विरुद्ध कोई आपत्तिजनक सूत्र नहीं मिला. अंत में तलाशी खत्म हुई और बलराज के खिलाफ जारी किये गये गिरफ्तारी के वारंट वापिस ले लिये गये. यह सारा हंगामा बलराज की एक बचकाना हरकत के कारण हुआ. उन्होंने मेरठ में हमारी फुफेरी बहन उर्मिला शास्त्री को जो स्थानीय कांग्रेस की एक जानी-मानी नेता थीं—एक पत्र लिखा कि शीघ्र ही घर में दो बम पहुंच जायेंगे, क्योंकि हमने उनके लिए आर्डर भेज रखा है. चिट्ठी रास्ते में पकड़ ली गयी थी, और पुलिस उन दो बमों को खोज निकालने के लिए हमारे घर पहुंच गयी थी. पंजाबी में अंग्रेजी के शब्द 'Bomb' को 'बम' के रूप में लिखा जाता है, और उस शब्द के दो अर्थ होते हैं. एक तो विस्फोटक बम, पर दूसरा बांस के उस लंबे धड़ को भी पंजाबी में बम कहते हैं, जो तांगे में लगाया जाता है—जिन बांस की दो छड़ों के बीच घोड़े को जोता जाता है, उन्हें भी 'बम' कहते हैं. बलराज का मतलब बांस के बमों से था. घर पर उन दिनों तांगा हुआ करता था और पिताजी ने उसके लिए दो नये 'बम' खरीदने का फैसला किया था, यह मजाक घरवालों को बड़ा महंगा पड़ा, क्योंकि कुछ दिन तक उस बात का सचमुच खतरा बना हुआ था कि बलराज को गिरफ्तार करके जेल खाने में डाल देंगे. □

□ भीष्म साहनी

वाङ्‌ चू के जीवन पर हावी नहीं हो पाया.

बरस और साल बीत गये. हमारे देश में उन दिनों बहुत कुछ घट रहा था. आये दिन् सत्याग्रह होते, बंगाल में दुर्भिक्ष फूटा, 'भारत छोड़ो' का आंदोलन हुआ, सड़कों पर गोलियां चलीं, बंबई में नाविकों का विद्रोह हुआ, देश में खूंरेजी हुई, फिर देश का बंटवारा हुआ और सारा वक्त वाङ्‌ चू सारनाथ में ही बना रहा. वह अपने में संतुष्ट जान पड़ता था. कभी लिखता कि तंत्र ज्ञान का अध्ययन कर रहा है, कभी पता चलता कि कोई पुस्तक लिखने की योजना बना रहा है.

इसके बाद मेरी मुलाकात वाङ्‌ चू से दिल्ली में हुई. यह उन दिनों की बात है, जब चीन के प्रधानमंत्री चू एन लाई भारत-यात्रा पर आनेवाले थे. वाङ्‌ चू अचानक सड़क पर मुझे मिल गया और मैं उसे अपने घर ले आया. मुझे अच्छा लगा कि चीन के प्रधानमंत्री के आगमन पर वह सारनाथ से दिल्ली चला आया है. पर जब उसने मुझे बताया कि वह अपने अनुदान के सिलसिले में आया है और यहां पहुंचने पर उसे चू एन लाई के आगमन की सूचना मिली है, तो मुझे उसकी मनोवृत्ति पर अचंभा हुआ. उसका स्वभाव वैसा का वैसा ही था. पहले की तरह हौले-हौले अपनी डेढ़ दांत की मुस्कान मुस्कराता रहा. वैसा ही निश्चेष्ट, असंपृक्त. इस बीच उसने कोई पुस्तक अथवा लेखादि भी नहीं लिखे थे. मेरे पूछने पर इस काम में उसने कोई विशेष रुचि भी नहीं दिखाई. तंत्र ज्ञान की शक्तियों को समझे बिना तुम बौद्ध धर्म को भी कैसे समझ पाओगे? ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़ा है, जीवन से जुड़ा है. कोई चीज जीवन से अलग नहीं है. तुम जीवन से अलग होकर धर्म को भी कैसे समझ सकते हो?"

कभी वह मुस्कराता, कभी सिर हिलाता और सारा वक्त दार्शनिकों की तरह मेरे चेहरे की ओर देखता रहा. मुझे लग रहा था कि मेरे कहे का उस पर कोई असर नहीं हो रहा, कि चिकने घड़े पर मैं पानी उंडेले जा रहा हूं.

"हमारे देश में न सही, तुम अपने देश के जीवन में तो रुचि लो! इतना तो जानो-समझो कि वहां पर क्या हो रहा है!"

इस पर भी वह सिर हिलाता और मुस्कराता रहा. मैं जानता था कि एक भाई को छोड़कर चीन में उसका कोई नहीं है. १९२९ में वहां पर कोई राजनीतिक उथल-पुथल हुई थी, उसमें उसका गांव जला डाला गया था और सब सगे-संबंधी मर गये थे. ले-देकर उसका एक भाई बचा था और वह पेकिंग के निकट किसी गांव में रहता था. वर्षों से वाङ्‌ चू का संपर्क उसके साथ टूट चुका था. वाङ्‌ चू पहले अपने गांव के स्कूल में पढ़ता रहा था, बाद में पेकिंग के एक विद्यालय में पढ़ने लगा था. वहीं से वह प्रोफेसर ज्ञान के साथ भारत चला आया था.

"सुना, वाङ्‌ चू भारत और चीन के बीच बंद दरवाजे अब खुल रहे हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब दोनों के बीच संपर्क स्थापित हो रहे हैं और इसका बड़ा महत्व है. अध्ययन का यही काम जो तुम अभी तक अलग-थलग करते रहे हो, वही अब तुम अपने देश के मान्य प्रतिनिधि के रूप में कर सकते हो. तुम्हारी सरकार तुम्हारे अनुदान का प्रबंध करेगी. अब तुम्हें अलग-थलग पड़े नहीं रहना पड़ेगा. तुम पंद्रह साल से अधिक समय से भारत में रह रहे हो, अंग्रेजी और हिंदी भाषाएं जानते हो, बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करते रहे हो, तुम दोनों देशों के सांस्कृतिक संपर्क में एक बहुमूल्य कड़ी बन सकते हो.''

उसकी आंखों में हल्की-सी चमक आयी. सचमुच उसे कुछ सुविधाएं मिल सकती थीं. क्यों न उनसे लाभ उठाया जाये? दोनों देशों के बीच पायी जानेवाली सद्भावना से वह भी प्रभावित हुआ था. उसने बताया कि कुछ ही दिनों पहले अनुदान की रकम लेने जब वह बनारस में गया तो सड़कों पर राह चलते लोग उससे गले मिल रहे थे. मैंने उसे मशवरा दिया कि कुछ समय के लिए जरूर अपने देश लौट जाये और वहां होने वाले विराट परिवर्तनों को देखे और समझे. कि सारनाथ में अलग-थलग बैठे रहने से उसे कुछ लाभ नहीं होगा, आदि-आदि.

वह सुनता रहा, सिर हिलाता और मुस्कराता रहा लेकिन मुझे कुछ मालूम नहीं हो पाया कि उस पर कोई असर हुआ है, या नहीं.

लगभग छह महीने बाद उसका पत्र आया कि वह चीन जा रहा है. मुझे बड़ा संतोष हुआ. अपने देश में जायेगा, तो धोबी के कुत्तेवाली उसकी स्थिति खत्म होगी, कहीं का होकर तो रहेगा. उसके जीवन में नयी स्फूर्ति आयेगी. उसने लिखा कि वह अपनी एक ट्रंक सारनाथ में छोड़े जा रहा है, जिसमें उसकी कुछ किताबें और शोध के कागज आदि रखे हैं, कि बरसों तक भारत में रह चुकने के बाद वह अपने को भारत का ही निवासी मानता है, कि वह शीघ्र ही लौट आयेगा और फिर अपना अध्ययन कार्य करने लगेगा. मैं मन-ही-मन हंस दिया, एक बार अपने देश में गया तो लौटकर यहां नहीं आने का.

चीन में वह लगभग दो वर्षों तक रहा. वहां से उसने मुझे पेकिंग के प्राचीन राजमहल का चित्र-कार्ड भेजा, दो-एक पत्र भी लिखे, पर उनसे उसकी मनस्थिति के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिली.

उन दिनों चीन में भी बड़े बलबले उठ रहे थे, बड़ा जोश था और उस जोश की लपेट में लगभग सभी लोग थे. जीवन नयी करवट ले रहा था. लोग काम करने जाते, तो टोलियां बनाकर, गाते हुए लाल ध्वज हाथ में उठाये हुये. वाङ-चू सड़क के किनारे खड़ा उन्हें देखता रह जाता. अपने संकोची स्वभाव के कारण वह टोलियों के साथ गाते हुए जा तो नहीं सकता था, लेकिन उन्हें जाते देखकर हैरान-सा खड़ा रहता, मानो किसी दूसरी दुनिया में पहुंच गया हो.

उसे अपना भाई तो नहीं मिला, लेकिन एक पुराना अध्यापक, दूर-पास की उसकी मौसी और दो-एक परिचित मिल गये थे. वह अपने गांव गया. गांव में बहुत कुछ बदल गया था. स्टेशन से घर की ओर जाते हुए उसका एक सहयात्री उसे बताने लगा—वहां, उस पेड़ के नीचे, जमींदार के सभी कागज, सभी दस्तावेज जला डाले गये थे और जमींदार हाथ बांधे खड़ा रहा था.

वाङ-चू ने बचपन में जमींदार का बड़ा घर देखा था. उसकी रंगीन खिड़कियां उसे अभी भी याद थीं. दो-एक बार जमींदार की बग्घी को भी कस्बे की सड़कों पर जाते देखा था. अब वह घर ग्राम-प्रशासन केंद्र बना हुआ था, और भी बहुत कुछ बदला था, पर यहां पर भी उसके लिए वैसी ही स्थिति थी, जैसी भारत में रही थी. उसके मन में उत्साह नहीं उठता था. दूसरों का उत्साह उसके दिल पर से फिसल-फिसल जाता था. वह यहां भी दर्शक ही बना घूमता था. शुरू-शुरू के दिनों में उसकी आवभगत

कलाहीनता के शिखर

भीष्म साहनी इकहरी कहानियां लिखने के लिए विख्यात हैं. इकहरी कहानियों में वर्णन की सपाटता और विस्तृत वाग्विलास मिलता है. भीष्म की वाङ चू कथा के घटनाहीन फैलाव का एक सर्वोत्तम उदाहरण है. इसमें कथा केवल इतनी है कि कश्मीरी शहर में एक चीनी बौद्ध जिज्ञासु कथा वाचक के संपर्क में आता है और वह भारत की उथलपुथल भरी सक्रियता से विमुख केवल बौद्ध संग्रहालयों में रुचि लेता है. इससे वाचक की मित्र-मंडली सदैव वाङ चू का मखौल उड़ाया करती है. वाचक की एक संबंधी किशोरी के प्रति वाङ चू के मन में आसक्ति है किंतु किशोरी उसके प्रति एक खिलवाड़ भरी क्रूरता का प्रदर्शन करती है. वाङ चू अपने देश लौटता है और फिर भारत चीन 'सीमा युद्ध' के दिनों लौट आता है. वह भारत की पुलिस द्वारा सताया जाता है. और अंत में मर जाता है.

इन विवरणों को पढ़ते हुए सहसा लू शुन की 'खुइ ई-ची' और 'आक्यू की सच्ची कहानी' याद आती हैं. इन दोनों कहानियों का जबर्दस्त प्रभाव 'वाङ चू' कहानी पर देखा जा सकता है. बहस की जा सकती है कि क्या 'चरित्रों' के कथाफलक प्रभाव के रूप में ग्रहण किये जा सकते हैं या उसे कोई 'इतर' कर्म मानना चाहिए? बहस यह भी की जा सकती है कि इस कहानी का मौलिक कथन क्या है? क्या यह मात्र एक ऐसी त्रासदी है जो तमाम गुमनाम आदमियों के साथ घटती है या फिर यह एक धर्मांध की नियति है? मसलन लू शुन ने क्रांतिपूर्व मनुष्य की स्थिति का जो वर्णन किया था, भीष्म साहनी का भी वही प्रयोजन था कि वे स्वाधीनता पूर्व और स्वाधीनता के बाद के भारत की तस्वीर दिखाना चाहते थे.

कहने का अर्थ यह है कि भीष्म आखिर कश्मीर, दिल्ली, कलकत्ता के बहाने जिस आडंबर की रचना करते हैं क्या उसमें नये, उमंग से भरे ताजे भारत के दर्शन होते हैं या भीष्म यह कहना चाहते हैं कि प्रजातंत्र में पुलिस अधिक क्रूर, विवेकहीन और अमानवीय होती है. केवल वर्णन कर देने भर से क्रिया की उस तीव्रता को व्यक्त नहीं किया जा सकता. उसके कला का विवेक और कला की विश्व दृष्टि अपेक्षित है.

भीष्म साहनी प्रगतिशील खेमे के कथाकार हैं, 'आज जब विचारधाराओं के मस्तूल डूब रहे हैं तब क्या भीष्म या उन जैसे कथा लेखकों के लेखन का पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए? साहित्य और कलाओं की दुनिया में एक लंबे अर्से तक सृजनात्मकता की सच्ची कोशिशें विचारधारा और झूठ के ताबूतों में कैद रही हैं. 'वाङ चू' जैसी कहानियों को लेकर उन सवालों से टकराना उचित रहेगा कि लोक संपदा किस रूप में संवेदनात्मक प्रारूप को प्रखर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है. 'वाइ चू' में संभावना थी कि भीष्म शैव कश्मीर की लोक समृद्धि से एक तनाव पैदा करते और वाइ चू जैसे चरित्र अपनी बुद्धवादी विवेक दृष्टि का विस्तार करते, परंतु जैसा होता है, एक उठाया हुआ विचार या एक उठाया हुआ कथा फलक केवल वर्णनों के घटाटोप तक सीमित रह जाता है. लू शुन की 'आक्यू की सच्ची कहानी' में आक्यू का चरित्र क्रांतिपूर्व दुनिया का एक प्रतिनिधि है. वह अपनी सादगी में भी जटिल है. इसके उलट भीष्म ने एक चुप्पे, घुन्ने वाइ चू को जैसे प्रस्तुत किया है वह न दया का पात्र है न उसका अंत त्रास की प्रखरता उपजा पाता है.

भीष्म की 'वाइ चू' कलाहीनता का एक शिखर है. शिखर इसलिए कि भीष्म की कहानियां प्रगतिशील आलोचकों के लिए आदर्श हैं.—वे समूची भारतीय मनीषा को कलाहीनता के बेडौल खंडहर निर्मित करने के लिए आकर्षित करते हैं वरना क्या कोई एक समीक्षक उस सच्चाई को सामने न लाता जो वास्तविकता है. 'वाइ चू' की भाषा पर आप गौर करें तो पायेंगे कि वह रसहीन. वक्रताहीन वर्णन है. साम्यवादी लेखन का अनुकरण करने का ही यह परिणाम हो सकता है अन्यथा प्रगतिशील खेमे को कुछ ऐसे महत्वपूर्ण रचनाकारों को अपने साथ अवश्य जोड़ना चाहिए था जो सादगी में कला के अद्भुत शिखर कायम कर सकते हैं. यह बातें 'वाइ चू' के संदर्भ में इसलिए उठ खड़ी होती हैं कि किसी रचनाकार की पहचान के, एक धारा की प्रवृत्ति के संदर्भ में सपाट, साधारण रचनाओं की ही चर्चा न हो. 'वाइ चू' जैसी प्रभाववादी कहानियां यदि अपने प्रभावों के मूल का उल्लेख साथ रखें तो तुलनात्मक दृष्टि से दो संस्कृतियों, दो विश्व दृष्टियों की चर्चा हो सकती है.

मेरा विनम्र प्रस्ताव है—और 'पेरिस्त्रोयका' के दौर की आवश्यकता भी है कि एक सही प्रगतिकामी, मानवाभिमुखी रचनाधर्मिता को उसका अभिलक्ष्य प्राप्त हो. बहस यह नहीं कि रूप और वस्तु में चीजों को विभाजित किया जाये अपितु वस्तु के उन्नत रूप को स्वीकृति मिले. □

□ गंगाप्रसाद विमल

भी हुई. उसके पुराने अध्यापक की पहलकदमी पर उसे स्कूल में आमंत्रित किया गया. भारत-चीन सांस्कृतिक संबंधों की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उसे सम्मानित किया गया. वहां वाङ् चू देर तक लोगों को भारत के बारे में बताता रहा. लोगों ने तरह-तरह के सवाल पूछे, रीति-रिवाज के बारे में, तीर्थों, मेलों-पर्वों के बारे में. वाङ्चू केवल उन्हीं प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर दे पाता जिनके बारे में वह अपने अनुभव के आधार पर कुछ जानता था, लेकिन बहुत कुछ ऐसा था, जिसके बारे में भारत में रहते हुए भी वह कुछ नहीं जानता था.

कुछ दिनों बाद चीन में 'बड़ी छलांग' की मुहिम जोर पकड़ने लगी. उसके गांव में भी लोग लोहा इकट्ठा कर रहे थे. एक दिन सुबह उसे भी रद्दी लोहा बटोरने के लिए एक टोली के साथ भेज दिया गया था. एक दिन भर वह लोगों के साथ रहा था. एक नया उत्साह चारों ओर व्याप रहा था. एक-एक लोहे का टुकड़ा लोग बड़े गर्व से दिखा-दिखाकर ला रहे थे. उस लोहे को साझे ढेर पर पिघलाया जाने लगा. आग के इर्द-गिर्द बैठे लोग क्रांतिकारी गीत गा रहे थे. सभी लोग एक स्वर में सहगान में भाग ले रहे थे, अकेला वाइ चू मुंह बाए बैठा था.

चीन में रहते, धीरे-धीरे वातावरण में तनाव-सा आने लगा और एक झुटपुटा-सा घिरने लगा. एक रोज एक आदमी नीले रंग का कोट और नीले ही रंग की पतलून पहने उसके पास आया और उसे अपने साथ ग्राम-प्रशासन केंद्र में लिवा ले गया. रास्ते भर वह आदमी चुप बना रहा. केंद्र में पहुंचने पर उसने पाया कि एक बड़े-से कमरे में पांच व्यक्तियों का एक दल मेज के पीछे बैठा उसकी राह देख रहा है.

जब वाङ् चू उनके सामने बैठ गया, तो वे बारी-बारी से उसके भारत निवास के बारे में सवाल पूछने लगे—''तुम भारत में कितने वर्षों तक रहे?''...''वहां क्या करते थे?''...''कहां-कहां घूमे?'' आदि-आदि. फिर बौद्ध धर्म के प्रति वाङ् चू की जिज्ञासा के बारे में जानकर उनमें से एक व्यक्ति बोला, ''तुम क्या सोचते हो, बौद्ध धर्म का भौतिक आधार क्या है?''

सवाल वाइ चू की समझ में नहीं आया. उसने आंखें मिचमिचाईं.

''द्वंद्वात्मक भौतिकवादी की दृष्टि से तुम बौद्ध-धर्म को कैसे आंकते हो?''

सवाल फिर वाइ चू की समझ में नहीं आया, लेकिन उसने बुदाबुदाते हुए उत्तर दिया, ''मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में उसके सुख और शांति के लिए बौद्ध-धर्म का पथ-प्रदर्शन बहुत महत्वपूर्ण है. महाप्राण के उपदेश...''

और वाङ् चू बौद्ध-धर्म के आठ उपदेशों की व्याख्या करने लगा. वह अपना कथन अभी समाप्त नहीं कर पाया था जब प्रधान की कुर्सी पर बैठे पैनी तिरछी आंखोंवाले एक व्यक्ति ने बात काटकर कहा, ''भारत की विदेश नीति के बारे में तुम क्या सोचते हो?''

वाङ् चू मुस्कराया, अपनी डेढ़ दांत की मुस्कान, फिर बोला, ''आप भद्रजन इस संबंध में ज्यादा जानते हैं. मैं तो साधारण बौद्ध जिज्ञासु हूं. पर भारत बड़ा प्राचीन देश है, उसकी संस्कृति शांति और मानवीय सद्भावना की संस्कृति है...''

''नेहरू के बारे में तुम क्या सोचते हो?''

''नेहरू को मैंने तीन बार देखा है. एक बार तो उनसे बातें भी की हैं. उन पर कुछ-कुछ पश्चिमी विज्ञान का प्रभाव अधिक है, परंतु प्राचीन संस्कृति के वह भी बड़े प्रशंसक हैं.''

उसके उत्तर सुनते हुए कुछ सदस्य तो सिर हिलाने लगे, कुछ का चेहरा तमतमाने लगा. फिर तरह-तरह के पैने सवाल पूछे जाने लगे. उन्होंने पाया कि जहां तक तथ्यों का और भारत के वर्तमान जीवन का सवाल है, वाङ् चू की जानकारी अधूरी और हास्यास्पद है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राजनीतिक दृष्टि से तो तुम शून्य हो! बौद्ध-धर्म की अवधारणाओं को भी समाज शास्त्री की दृष्टि से तुम आंक नहीं सकते. न जाने वहां बैठे क्या करते रहे हो! पर हम तुम्हारी मदद करेंगे."

पूछताछ घंटों तक चलती रही. पार्टी अधिकारियों ने उसे हिंदी पढ़ाने का काम दे दिया, साथ ही पेकिंग के संग्रहालय में सप्ताह में दो दिन काम करने की भी इजाजत दे दी.

जब वाङ्-चू पार्टी दफ्तर से लौटा, तो थका हुआ था. उसका सिर भन्ना रहा था. अपने देश में उसका दिल जम नहीं पाया था. आज वह और भी ज्यादा उखड़ा-उखड़ा महसूस कर रहा था. छप्पर के नीचे लेटा, तो उसे सहसा ही भारत की याद सताने लगी. उसे सारनाथ की अपनी कोठरी याद आयी जिसमें दिन-भर बैठा पोथी बांचा करता था. नीम का घना पेड़ याद आया, जिसके नीचे कभी-कभी सुस्ताया करता था. स्मृतियों की शृंखला लंबी होती गयी. सारनाथ की कैंटीन का रसोइया याद आया, जो सदा प्यार से मिलता था, सदा हाथ जोड़कर 'कहो भगवन' कहकर अभिवादन करता था.

एक बार वाङ्-चू बीमार पड़ गया था, तो रोज कैंटीन का रसोइया अपने-आप उसकी कोठरी में चला आता था, "मैं भी कहूं चीनी बाबू चाय पीने नहीं आये, दो दिन हो गये! पहले आते थे, तो दर्शन हो जाते थे, हमें खबर की होती भगवान तो हम डॉक्टर बाबू को बुला लाते...मैं भी कहूं, बात क्या है."

फिर उसकी आंखों के सामने गंगा का तट आया, जिस पर वह घंटों घूमा करता था. फिर सहसा दृश्य बदल गया और कश्मीर की झील आंखों के सामने आ गयी, पीछे हिमाच्छादित पर्वत, फिर नीलम सामने आयी, उसकी खुली-खुली आंखें, मोतियों-सी झिलमिलाती दंतपंक्ति...उसका दिल बेचैन हो उठा.

रेखांकन : हेमज्योतिका

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, भारत की याद उसे ज्यादा परेशान करने लगी. वह जल में से बाहर फेंकी हुई मछली की तरह तड़पने लगा. सारनाथ के विहार में सवाल-जवाब नहीं होते थे. जहां पड़े रहो, पड़े रहो. रहने के लिए कोठरी और भोजन का प्रबंध विहार की ओर से था, यहां पर नयी दृष्टि से धर्मग्रंथों को पढ़ने और समझने के लिए उसमें धैर्य नहीं था, जिज्ञासा भी नहीं थी. बरसों तक एक ही ढर्रे पर चलते रहने के कारण वह परिवर्तन से कतराता था. इस बैठक के बाद वह फिर से सकुचाने-सिमटने लगा था. कहीं-कहीं पर उसे भारत सरकार-विरोधी वाक्य भी सुनने को मिलते. सहसा वाङ्-चू बेहद अकेला महसूस करने लगा और उसे लगा कि जिंदा रह पाने के लिए उसे अपने लड़कपन के उस दिवास्वप्न में फिर से लौट जाना होगा, जब वह बौद्ध भिक्षु बनकर भारत में विचरने की कल्पना किया करता था.

उसने सहसा भारत लौटने की ठान ली. लौटना आसान नहीं था. भारतीय दूतावास से तो वीसा मिलने में कठिनाई नहीं हुई, लेकिन चीन की सरकार ने बहुत-से एतराज उठाये. वाङ् चू की नागरिकता का सवाल था, और अनेक सवाल थे. पर भारत और चीन के संबंध अभी तक बहुत बिगड़े नहीं थे, इसलिए अंत में वाङ्-चू को भारत लौटने की इजाजत मिल गयी. उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह भारत में ही अब जिंदगी के दिन काटेगा. बौद्ध भिक्षु बने रहना उसकी नियति थी.

जिस रोज वह कलकत्ता पहुंचा, उसी रोज सीमा पर चीनी और भारतीय सैनिकों के बीच मुठभेड़ हुई थी और दस भारतीय सैनिक मारे गये थे. उसने पाया कि लोग घूर-घूरकर उसकी ओर देख रहे हैं. वह स्टेशन के बाहर अभी निकला ही था, जब दो सिपाही आकर उसे पुलिस के दफ्तर में ले गये और वहां घंटे भर एक अधिकारी उसके पासपोर्ट और कागजों की छानबीन करता रहा.

"दो बरस पहले आप चीन गये थे. वहां जाने का क्या प्रयोजन था."

"मैं बहुत बरस तक यहां अध्ययन करता रहा था, कुछ समय के लिए अपने देश जाना चाहता था."

पुलिस-अधिकारी ने उसे सिर से पैर तक देखा. वाङ्-चू आश्वस्त था और मुस्करा रहा था—वही टेढ़ी-सी मुस्कान.

"आप वहां पर क्या करते रहे?"

"वहां एक कम्यून में मैं खेती-बारी की टोली में काम करता था."

"मगर आप तो कहते हैं कि आप बौद्ध ग्रंथ पढ़ते हैं?"

"हां, पेकिंग में मैं एक संस्था में हिंदी पढ़ाने लगा था और पेकिंग म्यूजियम में मुझे काम करने की इजाजत मिल गयी थी."

"अगर इजाजत मिल गयी थी तो आप अपने देश से भाग क्यों आये?" पुलिस अधिकारी ने गुस्से में कहा.

वाङ्-चू क्या जवाब दे? क्या कहे?

"मैं कुछ समय के लिए ही वहां गया था, अब लौट आया हूं..."

पुलिस अधिकारी ने फिर से सिर से पांव तक उसे घूरकर देखा. उस की आंखों में संशय उभर आया था. वाङ् चू अटपटा-सा महसूस करने लगा. भारत में पुलिस अधिकारियों के सामने खड़े होने का उसका पहला अनुभव था. उससे जमानती के लिए पूछा गया, तो उसने प्रोफेसर तान शान का नाम लिया, फिर गुरुदेव का, पर दोनों मर चुके थे. उसने सारनाथ की संस्था के मंत्री का नाम लिया, शांतिनिकेतन के पुराने दो-एक सहयोगियों के नाम लिए, जो उसे याद थे. सुपरिटेंडेंट ने सभी नाम और पते नोट कर लिए. उसके कपड़ों की तीन बार तलाशी ली गयी, उसकी डायरी को रख लिया गया, जिसमें उसने अनेक उद्धरण और टिप्पणियां लिख रखे थे और सुपरिटेंडेंट ने उसके नाम के आगे टिप्पणी लिख दी कि इस आदमी पर नजर रखने की जरूरत है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेल के डिब्बे में बैठा, तो मुसाफिर गोली-कांड की चर्चा कर रहे थे. उसे बैठते देख सब चुप हो गये और उसकी ओर घूरने लगे.

कुछ देर बाद जब मुसाफिरों ने देखा कि वह थोड़ी-बहुत बंगाली और हिंदी बोल लेता है, तो एक बंगाली बाबू उचककर खड़े हुए और हाथ झटक-झटककर कहने लगे, "या तो कहो कि तुम्हारे देशवालों ने विश्वासघात किया है, नहीं तो हमारे देश से निकल जाओ...निकल जाओ...निकल जाओ...!"

डेढ़ दांत की मुस्कान जाने कहां ओझल हो चुकी थी. उसकी जगह चेहरे पर त्रास उतर आया था. भयाकुल और मौन, वाङ् चू चुपचाप बैठा रहा. कहे भी तो क्या कहे? गोली कांड के बारे में जानकर उसे भी गहरा धक्का लगा था. उस झगड़े के कारण के बारे में कुछ भी स्पष्टत: मालूम नहीं था. और वह जानना चाहता भी नहीं था.

वहां सारनाथ में पहुंचकर वह सचमुच भावविह्वल हो उठा. अपना थैला रिक्शा में रखे जब वह आश्रम के निकट पहुंचा, तो कैंटीन का रसोइया सचमुच लपककर बाहर निकल आ. "आ गये भगवन? आ गये मेरे चीनी बाबू! बहुत दिनों बाद दर्शन दिये! हम भी कहें, इतना अरसा हो गया, चीनी बाबू नहीं लौटे! और कहिए, सब कुशल-मंगल है? आप यहां नहीं थे, हम कहें, जाने कब लौटेंगे! यहां पर थे तो दिन में दो बातें हो जाती थीं, भले आदमी के दर्शन हो जाते थे. इसमें बड़ा पुण्य होता है," और उसने हाथ बढ़ाकर थैला उठा लिया, "हम दें पैसे, चीनी बाबू?"

वाङ् चू को लगा, जैसे वह अपने घर पहुंच गया है.

"आपकी ट्रंक चीनी बाबू, हमारे पास रखी है. मंत्रीजी से हमने ले ली. आपकी कोठरी में एक दूसरे सज्जन रहने आये, तो हमने कहा, कोई चिंता नहीं, यह ट्रंक हमारे पास रख जाइए और चीनी बाबू, आप अपना लोटा बाहर ही भूल गये थे? हमने मंत्रीजी से कहा, यह लोटा चीनी बाबू का है, हम जानते हैं, हमारे पास छोड़ जाइए."

वाङ् चू का दिल भर आया. उसे लगा जैसे उसकी डांवाडोल जिंदगी में संतुलन आ गया है. डगमगाती जीवन-नौका फिर से स्थिर गति से चलने लगी है.

मंत्रीजी भी स्नेह से मिले, पुरानी जान-पहचान के आदमी थे. उन्होंने एक कोठरी भी खोलकर दे दी, परंतु अनुदान के बारे में कहा कि उसके लिए फिर से कोशिश करनी होगी. वाङ् चू ने फिर से कोठरी के बीचोंबीच चटाई बिछा ली, खिड़की के बाहर वही दृश्य फिर से उभर आया. खोया हुआ जीव अपने स्थान पर लौट आया.

तभी मुझे उसका पत्र मिला कि वह भारत लौट आया है और फिर से जमकर बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करने लगा है. उसने यह भी लिखा कि उसे मासिक अनुदान के बारे में थोड़ी चिंता है और इस सिलसिले में मैं बनारस में यदि अमुक सज्जन को पत्र लिख दूं तो अनुदान मिलने में सहायता होगी.

पत्र पाकर मुझे खटका हुआ. कौन-सी मृगतृष्णा इसे फिर से वापस खींच लाये है? यह लौट क्यों आया है? अगर कुछ दिन और वहां बना रहता, तो अपने लोगों के बीच इसका मन लगने लगता. पर किसी की सनक का कोई इलाज नहीं. अब जो लौट आया है तो क्या चारा है. मैंने 'अमुक' जी को पत्र लिख दिया और वाङ् चू के अनुदान का छोटा-मोटा प्रबंध हो गया.

पर वाङ् चू के लौटने के दसेक दिन बाद वह एक दिन प्रात: चटाई पर बैठा एक ग्रंथ पढ़ रहा था और बार-बार पुलक रहा था, जब उसकी किताब पर किसी का साया पड़ा. उसने नजर उठाकर देखा, तो पुलिस का थानेदार खड़ा था, हाथ में एक पर्चा उठाए हुए था. वाङ् चू का दिल बैठ गया. अब यह कौन-सी नयी परेशानी उठनेवाली है? वाङ् चू को बनारस के बड़े पुलिस स्टेशन में बुलाया गया था. वाङ् चू का मन आशंका से भर उठा था.

तीन दिनों बाद वाङ् चू बनारस के पुलिस स्टेशन के बरामदे में बैठा था. उसी के साथ बेंच पर बड़ी उम्र का एक और चीनी व्यक्ति भी बैठा था, जो जूते बनाने का काम करता था. आखिर बुलावा आया और वाङ् चू चिक उठाकर बड़े अधिकारी की मेज के सामने जा खड़ा हुआ.

"तुम चीन से कब लौटे?"

वाङ् चू ने बता दिया.

"कलकत्ता में तुमने अपने बयान में कहा कि तुम शांतिनिकेतन जा रहे हो, फिर तुम यहां क्यों चले आये? पुलिस को पता लगाने में बड़ी परेशानी उठानी पड़ी है."

"मैंने दोनों स्थानों के बारे में कहा था. शांतिनिकेतन तो मैं केवल दो दिन के लिए जाना चाहता था."

"तुम चीन से क्यों लौट आये?"

"मैं भारत में रहना चाहता हूं...!" उसने पहले का जवाब दोहरा दिया.

"जो लौट आना था तो गये क्यों थे?"

यह सवाल वह बहुत बार पहले भी सुन चुका था. जवाब में बौद्ध ग्रंथों का हवाला देने के अतिरिक्त उसे कोई और उत्तर नहीं सूझ पाता था

बहुत लंबी इंटरव्यू नहीं हुई. वाङ् चू को हिदायत दी गयी कि हर महीने के पहले सोमवार को बनारस के बड़े पुलिस स्टेशन में उसे आना होगा और अपनी हाजिरी लिखानी होगी.

वाङ् चू बाहर आ गया, पर खिन्न-सा महसूस करने लगा. महीने में एक बार आना कोई बड़ी बात नहीं थी, लेकिन वह उसके समतल जीवन में बाधा थी, व्यवधान था.

वाङ् चू मन-ही-मन इतना खिन्न महसूस कर रहा था कि बनारस से लौटने के बाद कोठरी में जाने की बजाय वह सबसे पहले उस नीरव पुण्य-स्थान पर जाकर बैठ गया, जहां शताब्दियों पहले महाप्राण ने अपना पहला प्रवचन किया था, और देर तक बैठा मनन करता रहा. बहुत देर बाद उसका मन फिर से ठिकाने पर आने लगा और दिल में फिर से भावना की तरंगें उठने लगीं.

पर वाङ् चू को चैन नसीब नहीं हुआ. कुछ ही दिन बाद सहसा चीन और भारत के बीच जंग छिड़ गयी. देश भर में जैसे तूफान उठ खड़ा हुआ. उसी रोज शाम को कुछ पुलिस अधिकारी एक जीप में आये और वाङ् चू को हिरासत में लेकर बनारस चले गये. सरकार यह न करती तो और क्या करती? शासन करनेवालों को इतनी फुरसत कहां कि संकट के समय संवेदना और सद्भावना के साथ दुश्मन के एक-एक नागरिक की स्थिति की जांच करते फिरें.

दो दिनों तक चीनियों को पुलिस स्टेशन की एक कोठरी में रखा गया. दोनों के बीच किसी बात में भी समानता नहीं थी. जूते बनानेवाला चीनी सारा वक्त सिगरेट फूंकता रहता और घुटनों पर कोहनियां टिकाए बड़बड़ाता रहता, जबकि वाङ् चू उद्भ्रांत और निढाल-सा दीवार के साथ पीठ लगाए बैठा शून्य में देखता रहता.

जिस समय वाङ् चू अपनी स्थिति को समझने की कोशिश कर रहा था, उसी समय दो-तीन कमरे छोड़कर पुलिस सुपरिंटेंडेंट की मेज पर उसकी छोटी-सी पोटली की तलाशी ली जा रही थी. उसकी गैर मौजूदगी में पुलिस के सिपाही कोठरी में से उसकी ट्रंक उठा लाये थे. सुपरिंटेंडेंट के सामने कागजों का पुलिंदा रखा था, जिस पर कहीं पाली में तो कहीं संस्कृत भाषा में उद्धरण लिखे थे, लेकिन बहुत-सा हिस्सा चीनी भाषा में था. साहब कुछ देर तक तो कागजों को उलटते-पलटते रहे, रोशनी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने रखकर उनमें लिखी किसी गुप्त भाषा को ढूंढते भी रहे, अंत में उन्होंने हुक्म दिया कि कागजों के पुलिंदे को बांधकर दिल्ली के अधिकारियों के पास भेज दिया जाए, क्योंकि बनारस में कोई आदमी चीनी भाषा नहीं जानता था.

पांचवें दिन लड़ाई बंद हो गयी. लेकिन वाङ्-चू को सारनाथ लौटने की इजाजत एक महीने के बाद मिली. चलते समय जब उसे उसकी ट्रंक दी गयी और उसने उसे खोलकर देखा, तो सकते में आ गया. उसके कागज उसमें नहीं थे, जिस पर वह बरसों से अपनी टिप्पणियां और लेखादि लिखता रहा था और जो एक तरह से उसके सर्वस्व थे. पुलिस अधिकारी के कहने पर कि उन्हें दिल्ली भेज दिया गया है, वह सिर से पैर तक कांप उठा था.

"वे मेरे कागज आप मुझे दे दीजिए. उन पर मैंने बहुत कुछ लिखा है, वे बहुत जरूरी हैं."

इस पर अधिकारी रुखाई से बोला, "मुझे उन कागजों का क्या करना है, आपके हैं, आपको मिल जायेंगे," और उसने वाङ्-चू को चलता किया. वाङ्-चू अपनी कोठरी में लौट आया, अपने कागजों के बिना वह अधमरा-सा हो रहा था. न पढ़ने में मन लगता, न कागजों पर नये उद्धरण उतारने में और फिर उस पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी थी. खिडकी से थोड़ा हटकर नीम के पेड़ के नीचे एक आदमी रोज बैठा नजर आने लगा. डंडा हाथ में लिए वह कभी एक करवट बैठता, कभी दूसरी करवट. कभी उठकर डोलने लगता, कभी एक कुंए के जगत पर जा बैठता, कभी कैंटीन की बेंच पर आ बैठता, कभी गेट पर जा खड़ा होता. इसके अतिरिक्त अब वाङ्-चू को महीने में एक बार के स्थान पर सप्ताह में एक बार बनारस में हाजिरी लगवाने जाना पड़ता था.

तभी मुझे वाङ्-चू की चिट्ठी मिली. सारा ब्यौरा देने के बाद उसने लिखा कि बौद्ध विहार का मंत्री बदल गया है और नये मंत्री को चीन से नफरत है और वाङ्-चू को डर है कि अनुदान बंद हो जाएगा. दूसरे, कि मैं जैसे भी हो, उसके कागजों को बचा लूं. जैसे भी बन पड़े, उन्हें पुलिस के हाथों से निकलवाकर सारनाथ में उसके पास भिजवा दूं. और अगर बनारस के पुलिस स्टेशन में प्रति सप्ताह पेश होने की बजाय उसे महीने में एक बार जाना पड़े, तो उसके लिए सुविधाजनक होगा, क्योंकि इस तरह महीने में लगभग दस रुपये आने-जाने में लग जाते हैं और फिर काम में मन ही नहीं लगता, सिर पर तलवार टंगी रहती है.

वाङ्-चू ने पत्र तो लिख दिया, लेकिन उसने यह नहीं सोचा कि मुझ जैसे आदमी से यह काम नहीं हो पायेगा. हमारे यहां कोई काम बिना जान-पहचान और सिफारिश के नहीं हो सकता. और मेरे परिचय का बड़े-से-बड़ा आदमी मेरे कालेज का प्रिंसीपल था. फिर भी मैं कुछेक संसद-सदस्यों के पास गया, एक ने दूसरे की ओर भेजा, दूसरे ने तीसरे की ओर. मैं भटक-भटककर लौट आया. आश्वासन तो बहुत मिले, पर सब यही पूछते, "वह चीन जो गया था, वहां से लौट क्यों आया?" या फिर पूछते, "पिछले दस साल से अध्ययन ही कर रहा है?"

पर जब मैं उसकी पांडुलिपियों का जिक्र करता, तो सभी यही कहते, "हां, यह तो कठिन नहीं होना चहिए." और सामने रखे कागज पर कुछ नोट कर लेते. इस तरह के आश्वासन मुझे बहुत मिले, सभी सामने रखे कागज पर मेरा आग्रह नोट कर लेते. पर सरकारी काम के रास्ते चक्रव्यूह के रास्तों के समान होते हैं और हर मोड़ पर कोई न कोई आदमी तुम्हें तुम्हारी हैसियत का बोध कराता रहता है. मैंने जवाब में उसे अपनी कोशिशों का पूरा ब्यौरा दिया. यह भी आश्वासन दिया कि मैं फिर से लोगों से मिलूंगा, पर साथ ही मैंने यह भी सुझाव दिया कि उसके लिए यही बेहतर है.

खत से उसके दिल की क्या प्रतिक्रिया हुई, मैं नहीं जानता. उसने क्या सोचा होगा? पर उन तनाव के दिनों में जब मुझे स्वयं चीन के व्यवहार पर गुस्सा आ रहा था, मैं वाङ्-चू की स्थिति को बहुत सहानुभूति के साथ नहीं देख सकता था.

उसका फिर एक खत आया. उसमें चीन लौट जाने का कोई जिक्र नहीं था. उसमें केवल अनुदान की चर्चा की गयी थी. अनुदान की रकम अभी भी चालीस रुपये ही थी, लेकिन उसे पूर्व सूचना दे दी गयी थी कि साल खत्म होने पर उस पर फिर से विचार किया जाएगा कि वह मिलती रहेगी या बंद कर दी जाएगी.

लगभग साल-भर बाद वाङ्-चू को एक पुर्जा मिला कि तुम्हारे कागज वापस किए जा सकते हैं, कि तुम पुलिस स्टेशन आकर उन्हें ले जा सकते हो. उन दिनों वह बीमार पड़ा था, लेकिन बीमारी की हालत में भी वह गिरता-पड़ता बनारस पहुंचा. लेकिन उसके हाथ एक तिहाई कागज लगे. पोटली अभी भी अधखुली थी. वाङ्-चू को पहले तो यकीन नहीं आया, फिर उसका चेहरा जर्द पड़ गया और हाथ-पैर कांपने लगे. इस पर थानेदार रुखाई के साथ बोला, "हम कुछ नहीं जानते. इन्हें उठाओ और यहां से ले जाओ, वरना इधर लिख दो कि हम लेने से इंकार करते हैं."

कांपती टांगों से वाङ्-चू पुलिंदा बगल में दवाये लौट आया. कागजों में केवल एक पूरा निबंध और कुछ टिप्पणियां बची थीं.

उसी दिन से वाङ्-चू की आंखों के सामने धूल उड़ने लगी थी.

वाङ्-चू की मौत की खबर मुझे महीने भर बाद मिली, वह भी बौद्ध विहार के मंत्री की ओर से कि मरने से पहले वाङ्-चू ने आग्रह किया था कि उसकी छोटी-सी ट्रंक और गिनी-चुनी किताबें मुझे पहुंचा दी जायें.

उम्र के इस हिस्से में पहुंचकर इंसान बुरी खबरें सुनने का आदी हो जाता है और वे दिल पर गहरा आघात नहीं करतीं.

मैं फौरन तो सारनाथ नहीं जा पाया, जाने में कोई तुक भी नहीं थी, क्योंकि वहां वाङ्-चू का कौन बैठा था. पर कुछ दिनों बाद मौका मिलने पर मैं गया. मंत्रीजी ने वाङ्-चू के प्रति सद्भावना के शब्द कहे—बड़ा नेकदिल आदमी था, सच्चे अर्थों में बौद्ध भिक्षु था, आदि-आदि. मेरे दस्तखत लेकर उन्होंने ट्रंक मेरे हवाले की. ट्रंक में वाङ्-चू के कपड़े थे, वह फटा-पुराना चोगा था, जो किसी जमाने में उसने श्रीनगर में खरीदा था. छोटा-सा कामदार चमड़े का पैड था, जो नीलम ने उसे उपहार स्वरूप दिया था. तीन-चार किताबें थीं, पाली की और संस्कृत की. चिट्ठियां थीं, जिनमें कुछ चिट्ठियां मेरी, और कुछ नीलम की रही होंगी, कुछ और लोगों की.

ट्रंक उठाए मैं बाहर की ओर जा रहा था, जब मुझे अपने पीछे कदमों की आहट मिली. मैंने मुड़कर देखा, कैंटीन का रसोइया भागता चला आ रहा था. अपने पत्रों में अक्सर वाङ्-चू उसका जिक्र किया करता था.

"बाबू आपकी बहुत याद करते थे. मेरे साथ आपकी चर्चा बहुत करते थे. बहुत भले आदमी थे..."

और उसकी आंखें डबडबा आयीं. सारे संसार में शायद यही अकेला जीव था, जिसने वाङ्-चू की मौत पर दो आंसू बहाये थे.

"बडी भोली तबियत थी. बेचारे को पुलिसवालों ने बहुत परेशान किया शुरू-शुरू मैं तो चौबीस घंटे की निगरानी रहती थी. मैं उस हवलदार से कहूं, भैया, तू क्यों इस बेचारे को परेशान करता है! वह कहे, मैं तो ड्यूटी कर रहा हूं...!"

मैं ट्रंक और कागजों का पुलिंदा ले आया हूं. इस पुलिंदे का क्या करूं? कभी सोचता हूं, इसे छपवा डालूं. पर अधूरी पांडुलिपि को कौन छापेगा? पत्नी रोज बिगड़ती है कि मैं घर में कचरा भरता हूं. दो-तीन बार वह फेंकने की धमकी भी दे चुकी है, पर मैं इसे छिपाता रहता हूं. कभी किसी तख्ते पर रख देता हूं, कभी पलंग के नीचे छिपा देता हूं. पर मैं जानता हूं, किसी दिन ये भी गली में फेंक दिये जाएंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्म साहनी : मेरी नजर के आईने में

कमलेश्वरजी ने १९६५ में 'नई कहानियां' से एकाएक त्यागपत्र दे दिया [भीतर की स्थिति का मुझे पता नहीं चल पाया]. लेखकों के हल्के में इससे खासी अफरा-तफरी मच गयी. इतनी प्रतिष्ठित और 'कहानी' विधा को जबरदस्त मंच प्रदान करनेवाली पत्रिका सहसा यों अकाल मौत मर जाए, यह कोई नहीं चाहता था. इस पत्रिका में जहां विभिन्न भाषाओं के स्थापित लेखक सहयोग कर रहे थे वहीं नये लेखकों के लिए यह प्रवक्ता का काम कर रही थी. कहानी को उस दौर में केंद्रीय विधा का दर्जा 'नई कहानियां' ने ही दिलाया था.

मैं उन दिनों इलाहाबाद में था. अश्कजी के बंगले पर दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर के अलावा कई नये कहानीकार मौजूद थे. इन सभी ने अपनी पहचान 'नई कहानियां' से ही बनायी थी और दिल से चाहते थे कि पत्रिका का प्रकाशन बंद न हो.

कमलेश्वर के अलावा राजेंद्र यादव और राकेश ही इस पत्रिका के संपादक हो सकते थे. वे दोनों दिल्ली में ही थे पर 'नई कहानियां' की यह 'त्रयी' अपनी ख्याति के शिखर पर थी और कमलेश्वर के त्यागपत्र देने के बाद यह किसी तरह संभव नहीं था कि राकेश या यादव इस पत्रिका का संपादक होना स्वीकार कर लें.

जब तरह-तरह के अनुमान लगाये जा रहे थे तो एक दिन सुनने में आया कि तभी रूस से लौटे भीष्म साहनी 'नई कहानियां' के संपादक हो गये हैं.

शोर-शराब और चर्चा से दूर रहनेवाले भीष्मजी तब तक बहुत अच्छी कहानियां लिख चुके थे और काफी पहले 'कहानी' के विशेषांक में छपी उनकी कहानी 'चीफ की दावत' ने उन्हें ख्यात लेखक का स्तर प्रदान कर दिया था.

यह वह समय था जब 'नई कहानी' की त्रयी के अलावा, रेणु, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, अमरकांत और मार्कंडेय कहानी लेखकों के रूप में स्वीकार हो चुके थे. पर यह आश्चर्य की बात है कि 'चीफ की दावत' के लेखक की 'नई कहानी' के शोर-शराबे में कोई खास चर्चा नहीं होती थी. उसी दौरान मेरी अश्कजी से भीष्मजी के बारे में बातें हुई थीं तो उन्होंने भीष्मजी की एक कहानी का उल्लेख करते हुए कहा था—''भीष्म अच्छा लिखने लगा है.'' उनकी इस टिप्पणी से मुझे यही लगा था कि भीष्म साहनी थोड़ी उम्र के ही लेखक होंगे. उनके फोटो

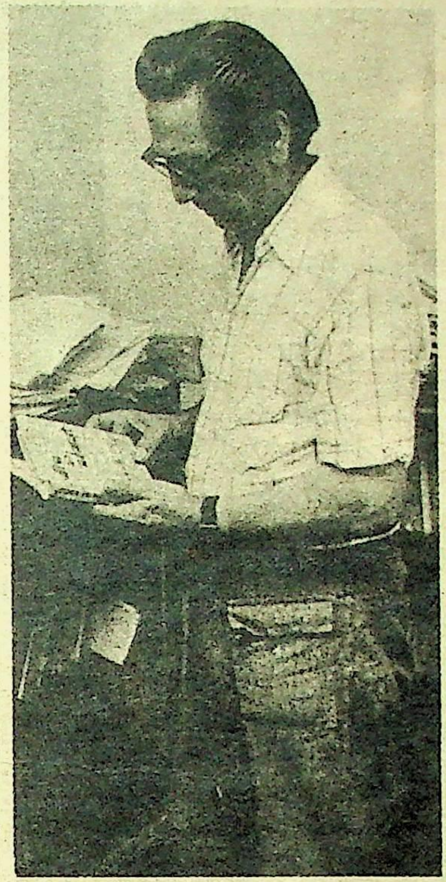

देखकर भी यही लगता था, भोला-सा हल्का मुस्कराता चेहरा. बच्चों जैसी कौतुक से दीप्त आंखें.

तब तक भीष्मजी का कोई उपन्यास नहीं छपा था. संभवत: कहानी संग्रह भी किसी प्रतिष्ठित संस्थान से प्रकाशित नहीं हुआ था. जहां तक मुझे याद है उनका पहला कहानी संग्रह 'भटकती राख' नेहरूजी की मृत्यु के बाद ही छपा था, 'तमस' तो और भी देर बाद प्रकाशित हुआ था.

मेरा ख्याल था भीष्मजी अधिक से अधिक पैंतीस वर्ष के होंगे क्योंकि उनके बारे में जब भी कहीं बातें होती थीं उन्हें अधिक उम्र का नहीं समझा जाता था. 'नई कहानी' वाले सभी पैंतीस या इससे नीचे की ही उम्र वाले लोग थे.

तभी एक दिन 'राजकमल प्रकाशन' में मेरी उनसे भेंट हो गयी. वह 'नई कहानियां' के संपादन के सिलसिले में 'राजकमल प्रकाशन' के एक केबिन में बैठते थे. पूरा समय वह संपादन को नहीं देते थे. दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी कालिज में अंग्रेजी के प्रोफेसर भी थे. मैंने उन्हें अत्यंत कोमल, शालीन और मितभाषी पाया. चेहरे पर एक खास तरह की सौम्यता और आंखों में व्यंग्यमिश्रित कारुण्य का भाव उभरता लगता था. उम्र का एकाएक अनुमान नहीं हो पाता था पर वह पकेपन की सीमा में दाखिल हो चुके थे. मेरे लिए यह अकल्पनीय था कि उस दौर के सभी महत्वपूर्ण कहानी लेखकों की टक्कर की कहानियां लिखनेवाला और उन सबसे आयु में भी काफी सीनियर लेखक चर्चा के केंद्र में नहीं था. नामवर सिंह जो 'नई कहानी' के प्रवक्ता बने हुए थे, उन्होंने भी भीष्मजी का जिक्र उल्लेखनीय रूप में कहीं नहीं किया था. हैरानी की बात यह थी कि उनकी एक से एक अच्छी कहानी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थीं. तब भीष्मजी पचास वर्ष के थे. भला हो राजकमल प्रकाशन का जिसने उनकी पुस्तकों के फ्लैप पर उनकी उम्र का कहीं उल्लेख कर दिया था.

भीष्मजी ने 'नई कहानियां' का संपादन बहुत देर तक नहीं किया क्योंकि बाद में वह इलाहाबाद से प्रकाशित होने लगी थी—पर थोड़े ही समय में कई चर्चित और खासा वाद-विवाद खड़ा करनेवाली कहानियां उन्होंने छाप दी थीं. मुझे याद है कृष्णा सोबती की कहानी 'यारों के यार' पर तो खूब ही चख-चख हुई थी.

मैं 'नई कहानियां' के संपादन के दौरान उनसे कई बार मिला और उन्हें हमेशा प्रस्तुत ही पाया. नये लेखकों से मिलने-जुलने और बातें करने में वह परम उत्साही लगते थे, बाद में उनके ईस्ट पटेल नगर के पते पर मैं उन्हें कभी-कभी पत्र भी लिखने लगा. वह कार्ड पर उत्तर देते थे और अविलंब लिखते थे.

बरस-दो बरस के पत्राचार के बाद मैं उन्हें सूचित किये बिना ही उनसे मिलने पहुंचने लगा. उनके पास जब भी गया वह हमेशा घर पर मिले और कभी यह आभास नहीं मिला कि मैं वहां पहुंचनेवाला एक अचर्चित व्यक्ति हूं या उन्हें मेरे कारण अपना कोई काम बंद करना पड़ रहा है. कई बार शीलाजी भी होती थीं. उनका बेटा तब तक रूस नहीं गया था. वह भी घर पर मिल जाता था, पर वह बहुत चुप्पा और अपनी पढ़ाई में मस्त रहनेवाला जीव था. हम दोनों के साथ कभी नहीं बैठता था.

उनके घर जाकर मुझे हमेशा यही अनुभव हुआ जैसे वह मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे. दरवाजा खोलते समय उनके चेहरे पर आया उल्लास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

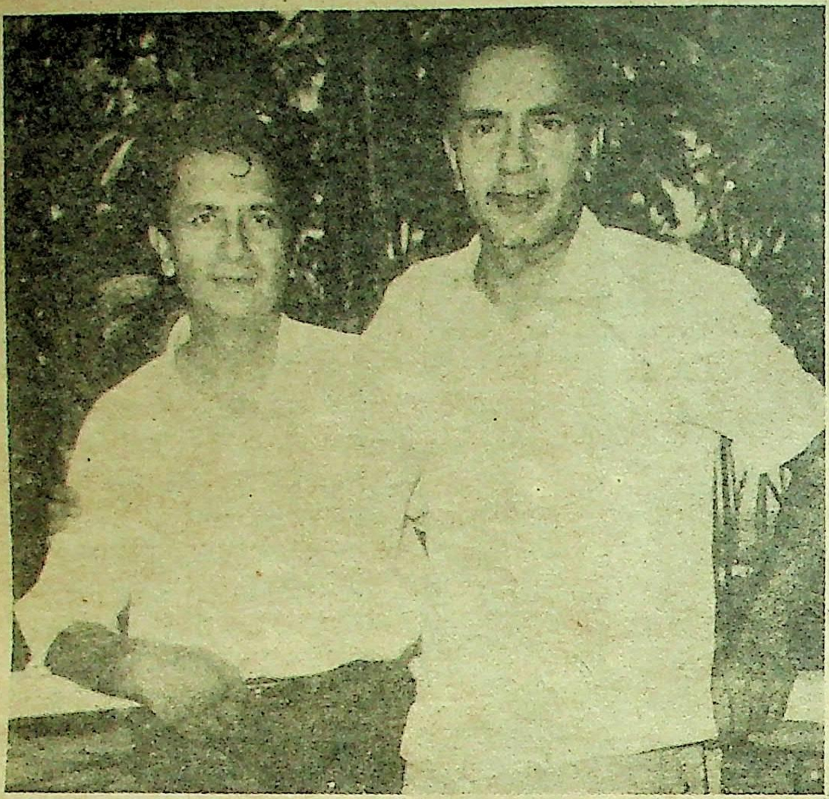

बलराज साहनी का पत्र भीष्म साहनी को

बंबई   २७.७.७१

मेरे प्यारे निकड़े वीर,

अब तक तुम ने मेरा 'रूसी सफरनामा' जरूर पढ़ लिया होगा, अगर नहीं तो, मैं वारी जाऊं, देर नहीं करना, क्योंकि जितनी जल्दी किताब छप जाये उतना ही अच्छा. इसके अनुवाद का सारा खर्च मेरे जिम्मे है. तुम्हें कैसी लगी? छोटी-मोटी गलतियां तो वहीं पर ठीक कर सकते हो, और बड़ी भूलों के बारे में पुस्तक की भूमिका में लिख सकते हो, अधिक पाद—टिप्पणियां देने से पाठक के प्रवाह में रुकावट आती है, ऐसा मैं समझता हूं, तुम्हारी चुप्पी नाना प्रकार के मानसिक तनावों का हिस्सा न बन जाए. जैसे मेरी बंबई की जिंदगी बन चुकी है. जो खाली वक्त मिलता है उसे नाटक की उधेड़बुन में लगा देता हूं जिसकी मंझदार में डूबे हुए मुझे कोई कूल-किनारा नजर नहीं आ रहा है. मेरे लिये दुआ करना. शबनम अपने नये घर और परिवार में लीन होती जा रही है. उसकी सास और देवर भी उसके साथ हैं. कुछ दिन पहले देवर का एपेंडिक्स का आपरेशन हुआ था, अब ठीक है. आज रोज शबनम ने टेलिफोन पर बताया कि एक छोटा-सा आपरेशन अविनाश को भी करवाना है, तोष आज ही पता करने जायेगी. बेटियां पराया धन होती हैं, इस उक्ति की सच्चाई तुम्हें कल्पना का ब्याह करने के बाद महसूस होगी.

बाकी सब ठीक-ठाक है. कारोबार चल रहा है जिसमें मेरा तनिक भी मन नहीं लगता. इसी आस और इंतजार में बैठा हूं कि परीक्षित और सनोबर अपने पैरों पर खड़े हो जाएं तो मैं अपनी 'खड़ताल' हाथ में लूं, तंबूरा तुम्हें पकड़ा दूंगा. पर तुम अपने संबंध में तो कभी कुछ लिखते ही नहीं, खैर, पोस्टकार्ड ही डाल देना, पर, जरूर. तुम्हें पता चल गया होगा कि मेरा नेरोबी जाने का प्रोग्राम रद्द हो गया था और सोफिया भी मैं नहीं जा रहा. वरुण को बहुत-बहुत प्यार, शीला को 'गलवकड़ी'.

(मूल गुरुमुखी से अनुवाद : भीष्म साहनी)

किसी भी मिलने आनेवाले को गहरी स्वस्ति प्रदान करनेवाला होता था. उनके ड्राइंग रूम में बैठकर सारी दोपहर बातें करता रहता था. कभी-कभी हम दोनों निकट ही तंदूर पर रोटियां बनवाने चले जाते थे. खाना खा चुकने के बाद जो बातों का सिलसिला शुरू होता था वह शाम तक अविराम और निर्विघ्न चलता रहता था. यह एक आश्चर्यजनक बात है कि अपने बीसों बार वहां होने की अवधि में मैंने एक बार भी टेलीफोन की घंटी बजते नहीं सुनी. क्या महानगर में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जो उन्हें टेलीफोन पर कुछ कहना-सुनना चाहता हो. यहां तक कि मृत्यु से पूर्व एक बार बलराज साहनी भी वहां आये थे और हम तीनों नवंबर की दोपहर भर बातें करते रहे—शाम होने लगी पर टेलीफोन की घंटी एक बार भी नहीं बजी. क्या यह संभव हो सकता है कि बलराजजी के दिल्ली में होने का किसी को पता न हो और उतने ख्यात कलाकार से एक भी व्यक्ति न मिलना चाहे!

शीलाजी तब तक अपने कार्यालय से नहीं लौटी थीं. सो भीष्मजी स्वयं चाय अथवा काफी बनाकर ट्रे उठाये ड्राइंग रूम में आये. उनके इस कार्य के पीछे कोई हीनता या मनोग्रंथि नहीं थी. वह मजे में किसी नौकर से यह काम करवा सकते थे पर उन्होंने अपने छोटे-बड़े सभी काम हर परिस्थिति में स्वयं ही निपटाना पसंद किया है.

वह स्वयं से मिलने आनेवाले व्यक्ति को कभी बोझ की तरह नहीं लेते. एक जाड़े की दोपहर ज्यों ही खाना खत्म हुआ वह अपनी पत्नी से बोले चलो यात्री जी को 'बुद्धा पार्क' घुमा लाते हैं. उन्होंने गाड़ी निकाली और पति-पत्नी मुझे साथ लेकर घर से निकल गये. हम लोग कई घंटे तक वहां पार्क में बैठकर आत्मीयता से बतियाते रहे.

मैं कस्बे में रहनेवाला आदमी था और खुले मन से लोगों से मिलता-जुलता था, इसलिए सभी को, मुक्त और खाली समझता था. आज सोचता हूं तो एक संकोच मुझे घेर लेता है और मैं उन दिनों की तरह उन पर धावा बोलने की बात सोच नहीं पाता. लगता है दिल्ली के लेखक अथवा परिचित, उनसे मिलना-जुलना या फोन करना इसी वजह से टालते होंगे...कि वे सरल मन भीष्म को तंग करना पसंद नहीं करते होंगे. उनके लिखने-पढ़ने में बाधक नहीं बनना चाहते होंगे.

भीष्म साहनी की रचनात्मकता का अंत:प्रवाह किसी प्रकार का व्यवधान सहन नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पाता. वह इस संबंध में किसी को कुछ नहीं बतलाते पर वह भीतर से भी बहुत छुई-मुई हैं यह कम लोग ही जानते होंगे. लिखने में उन्हें जबरदस्त एकांतिकता चाहिए. इस मामले में वह अपने अग्रज स्व. बलराज साहनी से एकदम अलग हैं. बलराजजी को शूटिंग के दौरान जब भी थोड़ा-सा वक्त मिल जाता था वह अपने टाइप राइटर पर कुछ न कुछ टाइप कर ले जाते थे, पर भीष्म जी इस तरह की भीड़भाड़ के बीच कुछ नहीं लिख सकते. मैंने एक बार उनकी पत्नी से उनके लिखने की स्थिति के बारे में पूछा था तो उन्होंने कहा था, ''भीष्म जी जब लिखते हैं तो फिर उन्हें कुछ नहीं सुहाता. उनके लिखते में कोई आ जाये तो वह भीतर से बहुत उद्विग्न हो उठते हैं. कहते कुछ नहीं हैं, पर इतने उखड़ जाते हैं कि फिर बात भी नहीं कर पाते—चुप हो जाते हैं.''

भीष्म जी की मानसिक संरचना सूक्ष्म तंतुओं से बनी है और वहां किसी तरह के हल्केपन की गुजर नहीं है. यही कारण है कि उनमें गहरी संलग्नता का भाव है और वह आज की आपाधापी से बहुत दूर हैं. कितनी भी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने चलताऊ लेखन नहीं किया बल्कि सच पूछा जाय तो वह एक मात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने बहुत कम उम्र में अच्छा लिखना शुरू किया और देर से चर्चित हुए. उनकी रचनाएं उनके विकास क्रम के सोपान हैं और वह आज भी रचनारत हैं. प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री रहे हों या आज 'एफ्रो एशियन राइटर्स एसोशिएशन' के जनरल सेक्रेटरी हों—पर उनका लेखन बंद नहीं हो पाया है.

भीष्म साहनी के सामने उनके बड़े भाई एक बड़ी लकीर की तरह थे. पर उन्होंने कभी संबंधों का इस्तेमाल नहीं किया. वह चाहते तो कई दशक पहले फिल्मी दुनिया में जा सकते थे पर उन्होंने तो अपने घर में बलराजजी के वे फोटो भी नहीं टांगे जिन पर आने-जानेवालों की दृष्टि जाए और वह भीष्मजी को बलराजजी की वजह से खास समझकर महत्व दें. अनेक वर्षों में शायद ही कभी बलराज साहनी के बारे में उनसे बातें हुई हों. वह उन व्यक्तियों में नहीं है जो दूसरों के प्रभामंडल में जीते हों. वह फिल्म में भी गये. 'मोहन जोशी हाजिर हो' में उन्हें खूब सफलता मिली. 'तमस' की भी बेतहाशा चर्चा हुई. उन्होंने 'तमस' में एक भूमिका भी निभाई. पर यह सब करने के लिए उन्होंने आत्मनिर्भरता का उदाहरण ही सामने रखा. यह सब बलराजजी की मृत्यु के पंद्रह साल बाद हुआ.

कई बार मेरे मन में यह सवाल पैदा हुआ है कि क्या भीष्मजी एक संत हैं जो लाभालाभ की तरफ से निरपेक्ष हैं. उन्हें इतनी दुनियावी सफलता और लेखकीय प्रतिष्ठा क्यों किसी तरह के समझौतों के बिना ही मिल गयी है. वह एक अंतर्राष्ट्रीय लेखकीय संगठन में महत्वपूर्ण पद पर हैं. एक बड़े प्रकाशन संस्थान से ही उनकी लगभग सारी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं. उन्हें इधर पुरस्कार भी खूब मिले हैं. चुप और रचनारत आदमी की यह नियति कहां होती है? उसे तो अक्सर गुमनामी में जीकर निःशेष होना पड़ता है. यह बात अलग है कि बाद में उसकी जय-जयकार होती है, खूब दुंदुभियां बजती हैं.

मेरे कौतूहल का बहुत साफ जवाब मेरे पास नहीं है पर पिछले पच्चीस वर्षों में मैंने भीष्मजी को जब-जब और जहां-जहां देखा है—हमेशा संयत, गंभीर और विवादों से अलग ही पाया है. लोग उन्हें चालाक और अवसरवादी भी मानते होंगे पर मुझे लगता है वह अकुंठित और प्रायः अजातशत्रु हैं. उनकी सबल रचनात्मकता, संस्कार और पारिवारिक परिवेश ने उन्हें अवसर का लाभ सहज में उठाना दीक्षा के रूप में दिया है. वह किसी तरह की उछल-कूद किये बिना ही अपना प्राप्य पाते रहे हैं. उनमें धीरज की कमी नहीं है. शायद यही कारण है कि पचास साल की उम्र तक जो आदमी चर्चा के केंद्र में नहीं रहा जबकि उसकी रचनात्मकता तब भी श्रेष्ठ की पंक्ति में थी, वह आज पूरी तरह रेखांकित है और अकुंठित भी. उन्होंने एक कहानी लेखक के रूप में साहित्यिक यात्रा आरंभ की थी, आज वह एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार और नाटककार भी हैं.

मैं बरसों से जानता चला आ रहा हूं कि उनकी सही उम्र क्या है, पर उनकी जीवंतता, तारुण्य ऊर्जा और नयों के बीच सहज खप जाने की प्रवृत्ति से यही लग रहा है कि वह अचानक और एकाएक पचहत्तर के हो उठे हैं. क्षरणशीलता और फालतूपन से बचने का संयम निश्चय ही कभी उनके शतक पूरा कर लेने पर फिर हमें आश्चर्य में डालेगा और लगेगा—'अरे भीष्मजी अचानक शतायु हो उठे!' □

ऐसी स्थिति में प्रेम कहानी...!

कालिज में वानप्रस्थीजी और घर पर पिताजी, मेरी हर हरकत पर नजर रखते थे. पहले ही स्कूल के दिनों में मेरी बहुत-सी शिकायतें लग चुकी थीं. एक बार फुफेरे भाई के उस्तरे से अपनी मूंछें मुंड चुका था और हेडमास्टर साहिब के बैंत खा चुका था. मूंछे मूंडना, उन दिनों, प्रेम करने से कम चरित्रहीन कर्म नहीं माना जाता था. मूछें तो अभी नमूदार भी नहीं हुई थीं, पर हेडमास्टर साहिब ने ये सोचकर कि मूंछें आने से पहले इसका यह हाल है तो सचमुच मूंछें आ जाने पर क्या होगा, अधोगति के किस गर्त में गिरेगा, मुझे अच्छी तरह से धुन दिया था. फिर एक बार 'पिया' शब्द पर भी चांटे पड़ चुके थे. किसी दोहे में 'पिया' शब्द का प्रयोग किया गया था और मैं उसे गुनगुनाते पकड़ा गया था. दो चांटे तो छूटते ही पड़ गये थे. पर जब मैंने इसरार किया कि यहां 'पिया' शब्द का अर्थ परमेश्वर है तब पांच चांटे और पड़े, और साथ में हेडमास्टर साहिब ने यह टिप्पणी भी कर दी कि इस लड़के के भाई में और इसमें उतना ही फर्क है जितना नार्थ पोल और साउथ पोल में है.

इसलिए घर पर भी मेरी निगरानी रखी जाने लगी थी. मेरे बारे में पिताजी के विचार, हेड मास्टर साहिब के विचारों से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे. इसी कारण, कालिज के दिनों में, वह मेरी एक अंग्रेजी नावल खिड़की के बाहर फेंक चुके थे. जब मैंने बार-बार कहा कि वह तो मेरे कोर्स की किताब थी, तब वह और भी ज्यादा बिगड़े, ''अगर कालिज में तुम्हें ऐसी लच्चर किताबें पढ़ाते हैं तो तेरा कालिज जाना ही बंद करा दूंगा.''

उन दिनों मैं कसरत भी किया करता था. कद का छोटा होने के कारण यह भी ख्याल था कि शायद कसरत के द्वारा ही कद ऊंचा हो जाए. इसीलिए व्यायाम संबंधी अंग्रेजी रसाले भी खरीदता रहता था. एक बार एक रसाले में दो तस्वीरें मुझे अच्छी लगीं जो मैंने फाड़कर रख लीं. ये दो आदर्श कसरतियों की थीं, एक व्यायाम करते पुरुष की, दूसरी व्यायाम करती महिला की. वह पुरुषवाली तस्वीर तो कहीं इधर-उधर हो गयी, पर व्यायाम करती स्त्री की तस्वीर मेरी पाठ्य पुस्तक में कहीं जा पहुंची. पिताजी गाहे-बगाहे इंस्पेक्शन पर आते थे. तस्वीर देखी तो बरस पड़े. किस्मत अच्छी थी, सफाई देते समय मुझे पुरुष कसरती मिल गया. जान बची लाखों पाये. ऐसी स्थिति में प्रेम कहानी कौन लिखता... □

संदर्भ : 'जब मैंने प्रेम कहानी लिखी' : भीष्म साहनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनादी

भीष्म साहनी के नये उपन्यास
मय्यादास की माड़ी का एक अंश

रेखांकन : हेमज्योतिका

उस दिन ढलती दोपहर का समय था और पीली-पीली अलसायी-सी धूप चारों ओर फैली थी, जब गंज मंडी के बाहर मैदान की ओर से ढोल बजने की आवाज सुनायी दी थी. राह जाते लोग ठिठक गये थे. मनादी का ढोल था, और कुछ दिन से तरह-तरह की खबरें सुनने में आ रही थीं. लोग कदम बढ़ाते हुए गंज मंडी के बड़े फाटक की ओर जाने लगे.

मनादी करनेवाला और कोई नहीं, कस्बे के मीरासी का भाई जलाल था—धारीदार कुर्ता, सिर पर लाल रंग की तुर्रेदार पगड़ी पहने हुए था. जब कभी कोई जरूरी मनादी करने वह निकलता तो सिर पर तुर्रेदार पगड़ी जरूर रखता था. उसे देखते ही लोग समझ गये थे कि कोई खास खबर देने निकला है.

''खलक खुदा दी, हुक्म बादशाह दा, हर खास-ओ-आम को मतला किया जाता है कि फिरंगी के लश्कर सल्तनत-ए-खालसा की तरफ बढ़े आ रहे हैं. कल से शीशमहल में भरती शुरू हो जायेगी.''

और ढोल पर जोर से थाप देकर वह मैदान की ओर आगे बढ़ गया.

देखते-ही-देखते कस्बे का माहौल बदल गया था. वातावरण में उत्तेजना भर गयी थी. लोग भागते हुए घरों के बाहर निकल आये. गंज मंडी के बाहर का मैदान लोगों से भरने लगा. उत्कंठा और जिज्ञासा उन्हें बाहर खींचे ला रही थी. मैदान में जगह-जगह लोगों की टोलियां खड़ी नजर आने लगीं. क्या हुआ है? क्या होने जा रहा है? कस्बे का माहौल उद्वेलित हो उठा था.

मनादी कर चुकने के बाद मीरासी का भाई गंज मंडी की ऊंची दीवार के साथ-साथ चलता हुआ काबुली दरवाजे की ओर जाने लगा था. पांच-सात बच्चे भी उसके पीछे-पीछे हो लिये थे. फिरंगी फौजों ने खालसा राज पर हमला बोल दिया था. लाहौर-दरबार ने कुमक मांगी थी और शीशमहल में दूसरे दिन से भरती शुरू होनेवाली थी. वातावरण में अजीब-सी धड़कन पैदा हो गयी थी. आगे क्या होगा, इसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता था. एक तरह की धुंध-सी आंखों के सामने फैली थी.

फाटक के पास खड़ा कोई आदमी कह रहा था, ''सतलज की ओर फौजें बढ़ रही हैं. यही सुनने में आया है.''

दो-तीन मलियारनें सिरों पर साग-सब्जी की टोकरियां रखे गांव को लौट रही थीं. मनादी का ढोल सुनकर ठिठक गयी थीं. उनमें से एक बोली, ''धाड़ा-लोटी पड़ेगी, देख लेना!'' और उन्होंने गांव की ओर अपने कदम तेज कर दिये थे.

काबुली दरवाजे के बाहर भी खड़े होकर जलाल ने मनादी की, उसी तरह फिर से ढोल पर थाप सुनायी दी और वह काबुली दरवाजे की मेहराब लांघकर कस्बे के अंदर बिछे गलियों के जाल में दाखिल हो गया. धीरे-धीरे उसके ढोल की आवाज दूर पड़ने लगी.

लोगों की उत्कंठा बराबर बढ़ती जा रही थी. जहां कहीं वे किसी को कुछ कहते सुनते उसी के पास जा खड़े होते. बार-बार उनकी आंखें उस रास्ते की ओर उठ जाती थीं जो लाहौर को जाता था, कि अभी कोई हरकारा आयेगा, या भागते धूल उड़ाते हुए घुड़सवार आयेंगे और नयी-नयी सूचनाएं देंगे. ढलती दोपहर के समय एक घुड़सवार सरपट घोड़ा दौड़ाता आया भी था, धूल-मिट्टी से अटा हुआ, जो हाथ ऊंचा उठाये चिल्ला रहा था—'जंग छिड़ गयी है! जंग छिड़ गयी है.' और सीधा शीशमहल की ओर घूम गया था.

तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी थीं. कोई कहता कि शीशमहल के फाटक खोल दिये गये हैं और राजा साहिब से मिलने, कस्बे के रईस-साहूकार, रायजादे, दीवान सभी पहुंच रहे हैं. जंग की खबर केवल आशंका और भय को ही जन्म नहीं देती, वह वर्तमान के अंकुश भी ढीले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देती है. दैनिक जीवन को नियमित करनेवाले बंधन भी शिथिल पड़ने लगते हैं. एक प्रकार की उन्मुक्तता का-सा भास होने लगता है. इसी कारण लोग दिन-भर बाहर मैदान में डोलते रहे थे. लाम जो छिड़ गयी थी. पर साथ-ही साथ, अंदर-ही अंदर गहरी उत्तेजनापूर्ण भावनाएं भी कसमसाने लगी थीं. किसी के दिल में मरदानगी और जौहर के वलवले उठ रहे थे, खालसा दरबार के लिए झूल जाने के, कुछ थे जिनके दिल में भविष्य के प्रति आशंका, अनिश्चय के भाव उठ रहे थे. एक झटके से जीवन का तारतम्य टूट गया था. अब कुछ होनेवाला है, अब कुछ होकर रहेगा...एक अमूर्त, निःशब्द-सी अकुलाहट और व्यग्रता कस्बे के माहौल में आ गयी थी.

कुछ ही देर बाद इस धड़कते माहौल में, मैदान में खड़े लोगों की आंखें काबुली दरवाजे की ओर घूम गयी थीं, जहां से दीवान मय्यादास धीर-गंभीर चाल से, हाथ में छड़ी उठाये काबुली दरवाजे में से निकलकर बाहर आ गया था, और दीवार के साथ-साथ चलता हुआ गंज मंडी की ओर जाने लगा था. लोग समझ गये थे कि दीवान, बाहर के रास्ते शीशमहल की ओर जा रहा है. उसे देखकर ही इस बात का भास होने लगा था कि स्थिति बदल गयी है, और गंभीर हो उठी है. दीवानजी, किसी गंभीर मश्विरे के लिए राजा साहिब के पास जा रहे हैं. दीवार के साथ-साथ मैदान के किनारे-किनारे चलता हुआ दीवान मय्यादास पूरे कस्बे की गरिमा का प्रतीक लग रहा था. सीधा सतर शरीर, स्थिर गंभीर चाल, चेहरे पर बड़प्पन और दृढ़ता का भाव. कस्बे के जीवन में, लगता था, जैसे एक निर्णायक घड़ी आ गयी है और उसमें दीवान मय्यादास अपनी भूमिका निभाने जा रहा है.

लगभग उसी समय जब दीवान मय्यादास बाहर के रास्ते से शीशमहल की ओर जा रहा था, कस्बे के अनेक जाने-माने व्यक्ति—दीवान, मलिक, रायजादे अपने-अपने घर में से निकलकर अथवा साहूकारे व अढ़त की पैड़ी पर से उठ-उठकर शीशमहल की ओर जाने लगे थे. किसी ने भावावेश में दरबारी पोशाक पहन ली थी और कमरबंद में से झूलती तलवार लिये हुए था, कोई सीधे-सादे लिबास में ही चल दिया था. सभी के कदम शीशमहल की ओर बढ़ रहे थे, कोई किसी गली को लांघता हुआ, कोई किसी को. कस्बे का राजा अमीरचंद था तो मामूली-सा राजा, पर कस्बे में खालसा राज्य की सत्ता का प्रतीक था. उसी पर लोगों की भावनाएं केंद्रित होने लगी थीं. सभी महसूस कर रहे थे कि मुसीबत लाहौर-दरबार पर नहीं, समूचे राज्य पर आयी है, इसलिए बरबस, उनका ध्यान राजा अमीरचंद की ओर जाने लगता था.

तभी सहसा बड़े मैदान में हंसी का फौव्वारा छूटा. रंगीला दीवान धनपत अपने टट्टू को एड़ लगाता, उसकी पीठ पर उचकता मैदान पार करने लगा था. उसका मुंह शेखों के बाग की ओर था, जहां से काफिलोंवाला रास्ता शुरू होता था.

अपनी-अपनी टोली में खड़े बहुत-से लोग हंस दिये थे.

"सुलह करवाने जा रहा है!" किसी ने ऊंची आवाज में कहा, जिस पर जगह-जगह खड़े लोग हंसने लगे थे.

मैदान में अनेक मनचले खड़े थे. बांशी, हरनारायण और रामजवाया की टोली भी वहीं पर थी. दीवान धनपत मैदान पार करता हुआ उन्हीं की ओर बढ़ता जा रहा था. मनादी के कारण वातावरण में जो तनाव पैदा हो गया था, दीवान धनपत के सामने आ जाने पर वह तनाव ढीला पड़ने लगा था, लोग हंसने-बतियाने लगे थे.

"सुलह करवाने नहीं, जंग में अपने जौहर दिखाने जा रहा है!" कोई और बोला.

"इस टट्टू पर बैठकर भाला चलायेगा!" नौजवानों की टोली में से आवाज आयी.

"जंग के मैदान में भी अंगरखा पहनकर लड़ेगा!"

इस पर ठहाका हुआ.

अब तक मैदान में खड़े लगभग सभी लोगों की नजरें, रंगीले दीवान की ओर घूम गयी थीं और सभी को मानो मन-बहलाव का साधन मिल गया था.

धनपत अपनी तथाकथित दरबारी पोशाक में ही था. फीके रंग की मियानवाली तलवार टट्टू की पीठ से लग-लगकर उछल रही थी. लोगों को तफरीह का मौका मिल गया था.

मनचलों की टोली के पास से गुजरा तो बांशी टोली में से निकल आया और उसके साथ-साथ भागने लगा और फिर उचककर, धनपत के पीछे टट्टू की पीठ पर चढ़ बैठा. कद-बुत से टट्टू सामान्य गधे से कुछ ही ऊंचा रहा होगा. इस पर मैदान में ठहाका उठा, लोग हंसी से लोट-पोट होने लगे.

बांशी ने अपनी दोनों बांहें धनपत की कमर में डाल दी थीं. लोग और भी ज्यादा हंसने लगे थे. उन्हें लगा जैसे उनकी आंखों के सामने कोई भड़ैत खेला जाने लगा है.

"उतर आ बांशी, दीवानजी को जल्दी पहुंचना है, बुलावा आया है." पीछे से आवाज आयी.

धनपत की कमर में हाथ डाले बांशी को बैठा देखकर मैदान में खड़े लोग ठठाकर हंस रहे थे.

"उतर आ, उतर आ, बांशी, दीवानजी को देर हो रही है. जंग रुकी हुई है!"

मैदान के दूसरे सिरे पर पहुंचकर बांशी कूदकर टट्टू से उतर गया और हंसता, खी-खी करता अपनी मंडली की ओर आने लगा.

"पर यार, यह तो बताओ, यह दीवान जा कहां रहा है. कस्बे के बाहर क्यों चला गया है?"

धनपत धूल उड़ाता मैदान पार कर गया था और आंखों से ओझल हो गया था.

इस भांति उस दिन कस्बे से दीवान धनपत का प्रस्थान हुआ था. कुछ घड़ियां मन पर अपनी अलग-सी छाप छोड़ जाती हैं. यह भी एक ऐसी घड़ी थी जो कस्बे को याद रही और वक्त बीतते न बीतते ऐतिहासिक महत्व ग्रहण कर गयी थी.

जंग के मैदान की दुनिया दूसरी थी. यहां भी दिल में वलवले उठते थे. दुश्मन के साथ लोहा लेने को दिल मचलता था, मर-मिटने का-सा जनून सिर पर तारी हो जाता था.

पहली बार जब लेखराज ने हजारों-हजार सैनिकों का लश्कर देखा तो उसका दिल झूम-झूम उठा था. इतना बड़ा लश्कर भी हो सकता है! दूर क्षितिज तक उठे हुए नेजे-भाले, हवा में लहराते रंग-बिरंगे ध्वज और झंडे, रंगारंग वस्त्रों मे घुड़सवार, कहीं हरे तो कहीं लाल रंग के कमरबंद और उनमें लटकती तलवारें, हवा में बजते नगाड़ों की गूंज, पैदल फौज के दस्ते—दूर-दूर तक फैले हुए, मानो कोई सैलाब उठा हो जो आगे बढ़ता जा रहा हो. लेखराज भी उस विराट अभियान का एक अंग है, इस विचार से ही उसका दिल हिलोरें लेने लगता था.

एक के बाद एक, वह तीन लड़ाइयों में लड़ा था. कुछेक महीने की ही बात रही होगी; और फिर सब खत्म हो गया था. पर कुछेक महीनों का वह संसार, दादी मां की कहानियों के उस संसार से कितना भिन्न साबित हुआ था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार लालसिंह की कमान में उनकी सेना सतलज नदी पार करके आयी थी और दिनों-दिन चलते रहने के बाद वे लोग एक लंबे-चौड़े, सपाट मैदान में उतरे थे. फौज के बड़े सालार को उसने केवल एक बार देखा था. सफेद घोड़े पर सवार उसके चेहरे से नूर टपकता था, छाती तनी हुई. उसके चेहरे की छवि को देखते ही मन प्रेरणा और उत्साह से भर उठता था. यह आदमी इतनी बड़ी सेना का संचालन कर रहा है, युद्ध का संचालन कर रहा है, कितना बड़ा काम है, कितनी दानिशमंदी का काम है. इसीलिए स्वयं, अपने दस्ते में कहीं दूर तैनात रहते हुए भी लेखराज की आंखें बार-बार उस जगह की ओर उठ जाया करती थीं, जहां उनकी फौज का सालार, अपने सजे हुए सफेद घोड़े पर बैठा नजर आता था. उसे आंख-भर देख लेने से ही लेखराज में साहस, विश्वास और दृढ़ता का संचार होता था.

मध्यान्ह के समय वे उस लंबे-चौड़े मैदान में पहुंचे थे. बड़ा बीहड़ मैदान था, लगभग सपाट मैदान. यहां कोई मोर्चा कैसे लेगा? कहीं-कहीं पर छितरी झाड़ियां थीं, गिने-चुने पेड़ थे, या फिर बालू के टूह थे. फौजी किस ओट में बैठकर मोर्चा बांधेंगे? पर यह सब सैनिक के सोचने के लिए नहीं है, इसका निर्णय तो सेनापति ही करता है.

इसी लंबे-चौड़े मैदान के पार, लगभग मील-भर की दूरी पर फिरंगी फौज छावनी डाले हुए थी. अब तक लेखराज ऐसी अनेक छावनियां देख चुका था. लंबे-चौड़े मैदान में, सीधी लंबी पांतों में, खेमे-ही खेमे, गुलाबी रंग के तंबू, बीच में चौड़ा रास्ता. और छावनी के सामने फिरंगी का झंडा—आड़ी-तिरछी, नीली-लाल-सफेद धारियोंवाला झंडा और झंडे के नीचे चमचमाती तोप की बगल में तैनात हथियारबंद सैनिक.

पर यहां से कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था. मैदान के पार, कोई हरकत नहीं थी, सब अबूझ और रहस्यमय हो रहा था. चारों ओर सकता छाया था. सैनिक जगह-जगह मोर्चे बांध रहे थे, बालू के टूह और उनके पीछे तोपें गाड़ी जा रही थीं. लेखराज की टुकड़ी को स्वयं कुछेक झाड़ियों के पीछे मोर्चा बांधने के लिए भेज दिया गया था, और स्वयं लेखराज अपनी बंदूक संभाले एक झाड़ी के पीछे जमकर बैठ गया था. कुछ फौजी पेड़ों पर चढ़कर टहनियों और पत्तों की आड़ में बैठ गये थे. जहां जिसे जो आड़ मिली, वहीं तैनात हो गया था. कुछेक झड़पें देख चुकने पर भी लेखराज के लिए यह सब नया था.

सुनने में आया था कि पूरी-की-पूरी फौज यहां नहीं आयी थी. फौज का कुछ हिस्सा, सालार के हुक्म से, पीछे छोड़ दिया गया था—इस आशय से कि दूसरी फौज के बड़े सालार को कुमक की जरूरत पड़ सकती है, जो वहां से कुछ ही दूर फिरंगी के विरुद्ध एक और मोर्चा खड़ा कर रहा था.

लेखराज झाड़ी के पीछे से फिरंगी की छावनी की ओर आंख लगाये था, पर कहीं कोई हरकत नहीं थी. चा ोर जैसे चुप्पी छायी थी. पर फिर सहसा, खालसा फौज की ओर से गोलीबारी की जाने लगी थी. बड़े सालार ने हुक्म दे दिया था और तोपें गोले बरसाने लगी थीं. सनसनाते गोले हवा को चीरकर जाते और दूर क्षितिज के पास जाकर फटते. दुश्मन आगे बढ़ रहा होगा, तभी सालार ने गोलाबारी का हुक्म दिया है. कुछ देर तक ऐसा ही चलता रहा था. फिर गोले बरसना बंद हो गये थे और चुप्पी छा गयी थी.

फिर कुछ ही दिन बाद लेखराज के लिए जंग की अंतिम मुठभेड़ एक कुएं की जगत के पास हुई थी. नजदीक ही कहीं फिरंगी छावनी रही होगी, क्योंकि एक छोटे-से घर के ऊपर फिरंगी झंडा लहरा रहा था. कुएं के निकट ही बड़े-बड़े पत्थरों से अटा एक मैदान था, और वहीं पत्थरों के पीछे सिक्ख फौज के सैनिक छितरे हुए थे और मोर्चा बांधे हुए थे. यहां भी फिरंगी फौज की लहरों पर लहरें उठती हुई उनकी ओर बढ़ने लगीं थी. अब तो उन्हें देखकर ही दिल दहल जाता था. किसी जंगल में से उठकर आ रही थीं. शायद वहीं पर उनकी छावनी थी. पहले यहां पर भी तोपें दागी जाती रही थीं, फिर सैनिक सैलाब की तरह उमड़ते हुए हमला बोलने लगे थे. उसका मित्र मनोहर कुएं की जगत के पीछे तैनात था. जिस चट्टान के पीछे लेखराज मोर्चा बांधे हुए था, वहां से कुएं का गोल चबूतरा साफ-साफ नजर आ रहा था. अकेला मनोहर ही नहीं तीन-चार और सैनिक भी वहीं पर मोर्चा बांधे हुए थे. फिर चिल्लाते-दहाड़ते, फिरंगी फौज के सैनिक संगीनें आगे बढ़ाये कुएं की जगत की ओर बढ़ते जा रहे थे. लड़ाई अब बंदूकों-तोपों की न रहकर किर्चों-बर्छों और तलवारों के साथ लड़ी जाने लगी थी. मुठभेड़ें शुरू हो गयी थीं. अंतिम बार जब लेखराज ने कुएं की जगत की ओर देखा तो मनोहर खड़ा तलवार झुला रहा था. उसकी छाती लहू-लुहान हो रही थी. लेखराज ने देखा, उसकी छाती में संगीन घोंपी गयी थी, इसके बावजूद उसका हाथ तलवार घुमाये जा रहा था.

बस इतना ही लेखराज देख पाया था. फिर कहीं बिगुल बजने लगे थे, खालसा फौज के सैनिक हथियार डालने लगे थे. फिर अपनी पीठ-पीछे लेखराज ने किसी की बंदूक के कुंदे का प्रहार महसूस किया था. सिक्ख सेना के जगह-जगह छितरे सैनिक पकड़े जा रहे थे. उसे भी हांककर ले जाने लगा था. उसकी नजर पीठ-पीछे खड़े गोरे फौजी पर पड़ी थी—पतली-पतली मूंछें नीली, चपल आंखें, वही उसकी पीठ में बंदूक का कुंदा मार रहा था.

अर्द्धचेतन-सी स्थिति में ही वह अपने आस-पास के परिवेश को भी ग्रहण कर रहा था—वह पीछे सूखा नाला है, और उसके पार, सामने, टूटी-फूटी इमारत है, जिस पर फिरंगी झंडा लहरा रहा है. उसने अधमुंदी आंखों से यह देख लिया था कि झिलमिलाती फिरंगियों की तोप पीछे जंगल में से निकल आयी है और उस टूटी-फूटी इमारत की ओर बढ़ती आ रही है. उसे लाल वर्दीवाले कुछ सिपाही धकेल रहे हैं, जैसे किसी भैंस को धकेलते हैं.

तभी उसे दीवान धनपत नजर आया था. यहां पर भी वह पीले रंग का अंगरखा पहने था और सिर पर केसरी पगड़ी रखे टूटी-फूटी इमारत के पीछे से चला आ रहा था, और फिर देखते-ही-देखते इमारत के अंदर चला गया था. सचमुच दीवान ही था. पर यहां क्या कर रहा है! बोझिल मस्तिष्क और घुटी-घुटी आंखों के बावजूद लेखराज ने उसे पहचान लिया था. यहां धनपत ही है. तब उसका ध्यान केवल पीले रंग के, हवा में फरफराते अंगरखे की ओर गया था, और वह उसे बड़ा अटपटा लगा था. उसके पीछे-पीछे, एक-एक करके पांच-छः कहार पीठ पर बोरे लादे चले आ रहे थे. धनपत वास्तव में उनके आगे-आगे चलता आ रहा था.

अनायास ही लेखराज की आंखें उस पहाड़ी की ओर उठ गयी थीं जहां पर अब मौन छाया था, पर जहां से वह और उसके साथी चिंघाड़ते-ललकारते हुए, नीचे मैदान में उतरे थे. तभी उसे याद आया था कि मनोहर मारा गया है, और उसके दिल में असह्य-टीस-सी उठी थी और उसे लगा था जैसे उसके दायें घुटने से मनोहर की बांह टकरायी है और उसके दिल में से जैसे कुछ रिसने लगा है.

और उस रात, तारों से भरे आकाश के असीम प्रसार के नीचे लेखराज बिलख-बिलखकर रोया था.

तीन बड़ी लड़ाइयों के बाद खालसा राज्य की कमर टूट गयी थी. सालारों ने हथियार डाल दिये थे. फिरंगी की फतह हुई थी. पंजाब अंग्रेजों के कब्जे में आ गया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उम्र की हीरक जयंती और लेखन की स्वर्ण जयंती करने जा रहे वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, गद्यकार और संपादक, अनुवादक, अभिनेता भीष्म साहनी से महेश दर्पण की अंतरंग बातचीत—

''लेखक की विडंबना यह है कि लिखी हुई चीज को वह फाड़कर फेंक नहीं सकता!''

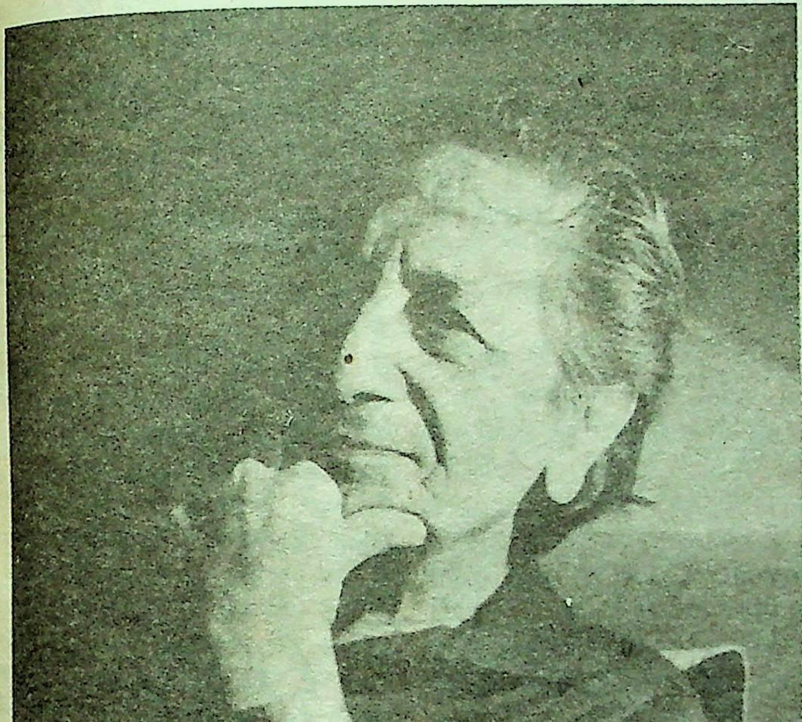

● आज से लगभग पांच दशक पूर्व, जब आपने लिखना शुरू किया था...वह एक तरह से साहित्य में परिवर्तन का समय था. तब आपके पसंदीदा रचनाकार कौन-कौन से थे? कैसा था आपका यह समय?

□ बचपन के दिनों में सुदर्शन और प्रेमचंद की कहानियां पढ़ने को मिलती थीं. मेरे पिता आर्य समाज से जुड़े थे. उसके वार्षिकोत्सव में कुछ पुस्तक विक्रेता अपने स्टॉल लगाते थे. पिताजी कुछ पुस्तकें लेते थे. वहीं मैंने पहली बार 'प्रेम पच्चीसी' आदि प्रेमचंद की पुस्तकें, 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' [एक प्रहसन : सुदर्शन] को पढ़ा. पहलेपहल इन्हीं दो के लेखन के संपर्क में आया. कॉलेज छोड़ने के बाद अज्ञेय, यशपाल, जैनेंद्र की रचनाएं पढ़ने को मिलीं. 'शेखर : एक जीवनी', 'त्यागपत्र' और यशपाल का कहानी संग्रह...फिर कुछ अर्सा बाद 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पढ़ी. बंटवारे के बाद जब दिल्ली आये, हिंदी के लेखकों के अतिरिक्त शरतचंद्र के उपन्यास, उर्दू के हास्यरसप्रधान लेखक अजीमबेग चुगताई को पढ़ा. भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा' निकला...जिसकी बड़ी चर्चा रही. फिर तो अपने साथियों की रचनाएं...निर्मल, राकेश, कमलेश्वर, अमृतराय, शेखर जोशी, अमरकांत आदि को पढ़ा. अमृतराय के बड़े भाई श्रीपतजी ने एक विशेषांक निकाला था. इसमें पुराने और नये लेखकों—विष्णु प्रभाकर, चंद्रगुप्त विद्यालंकार और नये लेखकों में हम लोगों की कहानियां छपी थीं.

● पहली रचना आपने कैसे लिखी? यह अनायास हो गयी शुरुआत थी या सोच-विचारकर आपने लिखना प्रारंभ किया था?

□ ऐसा हुआ कि मैं उन दिनों रावलपिंडी में था. अपने पिता के साथ व्यापार में काम करता था. एक दिन लौटते वक्त एक घटना घटी. भीड़ एकत्र थी. भीड़ के बीच एक लड़की घिरी खड़ी थी. पास ही एक अस्पताल था जिसके बरामदे पर एक बीमार युवक बैठा था. दोनों मेहनत-मजदूरी करनेवाले थे. गांव से भागकर आये थे. लड़की के लिए सिर छुपाने लायक जगह नहीं थी. भीड़ में से कुछ छेड़-छाड़ कर रहे थे. मैं भी खड़ा हो गया. इस घटना को लेकर 'नीली आंखें' कहानी लिखी. अमृतराय ने 'हंस' में उसे छापा.

सायास का क्या अर्थ है? मनगढ़ंत कहानी हो तो सायास लिखी जाती है. जहां किसी अनुभव का आधार मिले वहां भावना के स्तर पर कितने गहरे आप जुड़ते हैं, वह महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. भाषा और गठन की दृष्टि से आपकी कोशिश रहती है...कि अच्छी चीज बन पाये. पर शायद छोटी उम्र में आदमी ज्यादा परवाह भी नहीं करता.

● ये 'नीली आंखें' आपको गहरे में प्रभावित करती रही हैं, लगता है. 'ओ हरामजादे' कहानी में भी तो...लाल की पत्नी की आंखें खाड़ी के नीले जल-जैसी नजर आयी हैं आपको!

□ इसका एहसास तो मुझे मास्को जाने पर हुआ.

● अंग्रेजी साहित्य की विधिवत पढ़ाई की है आपने...जन्म से आप पंजाबी परिवार से हैं और लेखन आप हिंदी में करते हैं. यह इरादा आपने कैसे बनाया?

□ बड़ा अच्छा सवाल है आपका. जैसे संस्कार या पृष्ठभूमि थी वह एक भाषी तो नहीं थी. गुरुकुल में केवल हिंदी-संस्कृत पढ़ी. स्कूल में माध्यम उर्दू था, घर में पंजाबी. हिंदी-संस्कृत का जोर था. हाई स्कूल तक पहुंचते-पहुंचते अंग्रेजी विषय लिया. बी.ए. ऑनर्स और अंग्रेजी में एम.ए. किया. उर्दू और अंग्रेजी का प्रभाव साहित्य की दृष्टि से अधिक था. जब मैं बी.ए., एम.ए. की पढ़ाई कर रहा था तब हफीज जालंधरी आदि लिख रहे थे. मुशायरे होते थे...और फिर अंग्रेजी साहित्य भी. एकभाषी माहौल में लड़कपन नहीं बीता. पर घर में देर तक हिंदी-संस्कृत पढ़ाई गयी. मेरे परिवार में कुछ लोग थे जो हिंदी में लिखते थे. इसका प्रभाव जरूर पड़ा. मेरी बुआ की बेटी सत्यवती मलिक हिंदी में लिखती थीं. चंद्रगुप्त विद्यालंकर (जीजाजी) और बलराजजी की कहानियां 'विशाल भारत' आदि में छपी थीं. बुआ की बेटी कविताएं लिखती थीं. इस तरह से हिंदी से जुड़ा. अंग्रेजी तो बस पठन-पाठन तक ही सीमित रही. दिल्ली जब आता था तो बनारसीदास चतुर्वेदी, विष्णु प्रभाकर से मिलना हुआ...

● पिता के व्यापार में हाथ तो आप बंटाने लगे थे, मजबूरन ही सही...पर इससे कथा-अनुभव तो जुटे ही होंगे! उन पर भी कुछ काम आपने किया होगा!

□ मेरे पिता भी सच्चे मानों में व्यवसायी नहीं थे. उनकी रुचि सामाजिक कार्यों में जुड़े रहने की थी. वे महत्वाकांक्षी व्यापारी नहीं थे. जब मैं कालेज छोड़कर आया, तब वे व्यापार से भी करीब-करीब मुक्त हो चुके थे. यह काम ऐसा नहीं था कि चौबीसों घंटे डूबकर काम करें. पर मेरा मन लगा नहीं. मुझे मजबूरी में करना पड़ता तो अपना भी लेता. और लोग मदद करनेवाले थे, इसलिए इसे पेशे के रूप में नहीं अपनाया. नाटक करने लगा. कांग्रेस में भी गया...फिर भी, तरह-तरह के तजुर्बे हुए. मेरी जिंदगी किताबी ही नहीं रही. अगर मैं केवल अध्यापन कार्य ही करता तो शायद किताबी माहौल में ही रह जाता. इससे मुझे लाभ ही हुआ. राष्ट्रीय आंदोलन, बाजार का अनुभव मुझे मिला. रावलपिंडी एक तरह से पिछड़ा हुआ इलाका था, पर आंदोलन का प्रभाव तो वहां पर भी था ही. अंग्रेजी सरकार वहां बड़ी दमन की नीति अपनाती थी. गांव में कोई प्रचार करनेवाला जाये तो उसे मार डालते थे. दरअसल, वहां से तो फौज में भरती की जाती थी. इसके बावजूद लोग उठते थे आंदोलन में शामिल होने के लिए. एक छोटे शहर का एक करेक्टर होता है...एक कॉम्पेक्टनेस होती है...वहां का माहौल आपकी पकड़ में आ जाता है.

● शुरुआत में आपने कविताएं लिखी हैं. यह सिलसिला जारी क्यों नहीं रह पाया?

□ नहीं चला. मैं बता नहीं सकता. शायद दूसरी तरफ मन चला गया.

● व्यापक सार्थकता की कहानियां आपकी पसंद पर खरी उतरती हैं. अपनी पसंद की, समकालीन कथाकारों की कुछ कहानियों का खुलासा कर सकेंगे?

□ बहुत-सी कहानियां गुजरी थीं उन दिनों नजर से. 'आर्द्रा', 'मलबे का मालिक', 'गुलकी बन्नो'...शीर्षक तो बहुत याद नहीं हैं, पर ये जो आमतौर पर कहा जाता है कि 'प्रगतिशील आंदोलन जो चला, कहानी को प्रचारात्मक बनाने के लिए चला,' यह कहना गलत है. उन्नीसवीं शताब्दी से ही हमारे यहां साहित्य चेतना समाजोन्मुख होती चली जा रही थी. बंकिम का उदाहरण सामने है. एक रुझान-सा आया था कि साहित्य की रचना किसी सामाजिक यथार्थ से जुड़े. एक प्रवृत्ति पनपने लगी थी. हमारी विरासत मानवतवाद की थी. व्यक्ति को एक बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि थी. आर्थिक, सामाजिक परिवेश में देखने की प्रवृत्ति जुड़ी. प्रेमचंद आये तो एक नयी सार्थकता जुड़ी. यह कहना कि जानबूझकर साहित्य को नारेबाजी का माध्यम बनाया गया, गलत है. यह जरूर है कि कहीं-कहीं सामाजिक उद्देश्य को प्राथमिकता दी जाने लगी. अपने तईं मैं ऐसा नहीं मानता. मैं मानता हूं कि लेखक रचना करता है, साहित्य के प्रतिमानों पर उसे उतरना चाहिए. जिस युग में हम गुजर रहे थे, वह उद्वेलन का युग था. विचारधाराओं का बड़ा प्रबल प्रभाव रहा था. मार्क्सवाद, गांधीवाद, साम्यवाद...इनका भी प्रभाव लेखक पर पड़ता है. पर वह अपने को कटघरे में बांधता भी तो नहीं है. जिस सामाजिक सार्थकता की आप बात करते हैं, वह वामपंथी लेखकों तक ही सीमित हो, ऐसा नहीं है.

● आपको ऐसा प्रतीत नहीं होता कि स्वयं को मुक्त समझनेवाला प्राणी—लेखक भी आज अंततः एक 'कमोडिटी' में तब्दील होता जा रहा है. तब उसकी स्वतंत्रता का अर्थ बेमानी नहीं हो जाता!

□ देखिये, मैं सोचने में, वाणी देने में स्वतंत्र हूं, यह तो जरूरी है. मेरे मानसिक गठन पर, संस्कारों, काल और पठन-पाठन, अनुभवों का प्रभाव रहा. उससे मुझे एक दृष्टि मिली. एक व्यक्तित्व मिला. मैं ऐसा नहीं मानता कि लेखक किसी वेक्यूम में जीता है. जिस काल में वह रहता है, उसकी गतिविधियों का उस पर बड़ा प्रभाव रहता है. लिखता वह अपने संवेद और दृष्टि के बल पर है. बड़े-बड़े लेखकों का भी प्रभाव पड़ता है...पर कलम तो लेखक अपनी ही चलाता है. मैं कहानी लिखता हूं और छपने के लिए भेज देता हूं...हां, ज्यादा प्रलोभन की बात कहें तो दूरदर्शन और फिल्म, प्रसारण के नये माध्यम...अच्छा है, इससे रचना अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचती है. 'तमस' के अनुभव से मैंने देखा है. रेखा तो लेखक स्वयं ही खींचेगा.

● 'पतनशील समाज की जो बुराइयां आज हमारे समाज में साफ-साफ नजर आने लगी हैं...उनसे निजात पाने का रास्ता आप किस रूप में देखते हैं?

□ हमारा समाज कितना पतनशील है और कितना विकासशील है, इसका निर्णय कर पाने के लिए हम अलग-अलग मानदंडों का प्रयोग करते हैं. यदि बाहर के देशों पर हमारी आर्थिक निर्भरता कम होती जाये तो उसे हम विकास मानते हैं, देश का औद्योगीकरण हो, देश आत्मनिर्भर होता चला जाये, राजनीतिक स्तर पर जनतंत्रात्मक शक्तियां सुदृढ़ होती जाएं तो इसे भी हम विकास का चिह्न ही मानेंगे. स्त्रियां अधिक आत्मविश्वास के साथ सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में अग्रसर हों तो इसे भी हम सकारात्मक प्रवृत्ति ही मानेंगे.

दूसरी ओर उपभोक्ता संस्कृति, एक बाढ़ की तरह हमारे सामाजिक जीवन पर छाने लगे और हमारे सभी परंपरागत मूल्य और मान्यताएं उसमें डूबते लगें—हिंसा बढ़े, अपराध बढ़े, गैंडे राजनीति के क्षेत्र में पहुंच जाएं, उधर सांप्रदायिक जहर सामाजिक जीवन के अंग-अंग में फैलता चला जाए, तस्करी और ड्रग एडिक्शन बढ़ता जाए तो हमें लगेगा कि हमारा

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज धरातल की ओर जा रहा है.

एक प्रकार का संघर्ष तो सारा वक्त चलता रहता है, लेकिन कभी-कभी लगता है कि हम बेबस होते जा रहे हैं. पर रास्ता संघर्ष का ही है और साहित्यकार निश्चय ही इस संघर्ष में अपनी दृष्टि-अनुसार अपनी भूमिका निभा सकता है.

● आजादी के बाद के भारतीय साहित्य ने अपनी सामाजिक सार्थकता किन अर्थों में बचाये रखी है? क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि आधुनिक साहित्य से जन-सामान्य का कोई नाता ही नहीं रह गया है?

□ आजादी के बाद रहा हो, या इससे पहले, भारतीय लेखक उन दबावों को जरूर महसूस करता रहा है जो हमारे समाज पर तथा व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते रहे हैं. हिंदी साहित्य में शहरी जीवन, और उसमें भी मध्यवर्गीय जीवन पर पड़नेवाले दबावों के प्रति लेखक अधिक सचेत रहा है. यथार्थ की पकड़ भी ज्यादा मजबूत हुई है. पर जहां-जहां लेखक, जिंदगी से दूर हुआ है, या मात्र अपने में खो गया है, वहां वह जन-सामान्य से भी दूर होता गया है.

● आज हम विश्व स्तर पर चल रहे बड़े-बड़े आंदोलनों की चर्चा तो खूब करते हैं, पर असहाय और निरीह छूट गये अपने ही देश के आम नागरिक की स्थिति पर गौर करने की जरूरत तक नहीं समझते, जहां वह अपने राजनैतिक अधिकार से भी हाथ धो बैठा है!

□ इसमें संदेह नहीं कि लेखक का अनुभव क्षेत्र सीमित रहा है. उसने इसे तोड़ने का प्रयास भी नहीं किया. एक प्रकार की भलमनसाहत, भीरुता, मध्यवर्गीय दृष्टि हमें अपने देश के विशाल जन-समुदाय के साथ जुड़ने, उसके जीवन की धड़कनों को महसूस कर पाने, उसकी जिंदगी को आंकने की दिशा में बाधक रही है. इसकी सफाई में हम दलीलें तो दे सकते हैं लेकिन इसे हम न्याय संगत नहीं कह सकते.

● क्या राजनैतिक आंदोलनों की असफलता इससे नहीं जुड़ती? क्या इसी कारण हमारे यहां राजनैतिक उपन्यास भी अधिक नहीं लिखे जा सके?

□ हमारे यहां राजनैतिक उपन्यास नहीं लिखे गये, यह सही है, लेकिन इसका कारण राजनैतिक आंदोलनों की असफलता रहा हो, मैं ऐसा नहीं मानता.

● समय-समय पर आते, चले जाते रहे कथा-आंदोलनों को आपने नज़दीक से देखा है...इसमें सर्वप्रमुख आंदोलन आप किसे मानते हैं?

□ 'नई कहानी आंदोलन'.

● लंबे समय से आप प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहे हैं. मौजूदा हालात में एक रचनाकार को ऐसे संगठन क्या-कुछ दे सकने की स्थिति में रह गये हैं...?

□ साहित्य सृजन के स्तर पर भले ही किसी संगठन का योगदान बहुत सीमित रहा हो—हालांकि संगठन की गतिविधि से, साहित्य और समाज के प्रति उसकी दृष्टि से, तथा उस संगठन से जुड़े प्रतिभासंपन्न सहकर्मियों से, लेखक को अपने काम में भी बड़ी प्रेरणा और उत्साह मिल सकता है. पर इससे अलग संगठन की अपनी अलग सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका होती है. यदि आज सांप्रदायिक, विसर्जनवादी तत्वों के विरुद्ध खड़ा होने की जरूरत है तो एक संगठन उसमें प्रभावी भूमिका निभा सकता है. इसी भांति लेखन-प्रकाशन से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिए एक साझा मंच जुटा सकता है. समाज में एक जीवंत सांस्कृतिक माहौल पैदा करने की दिशा में भी अपना योगदान दे सकता है.

● विभाजन की त्रासदी पर तो आपने खूब लिखा है...पर उसके बाद की ऐसी कौन-सी बड़ी घटना है जिसे आप एक 'सबक' के तौर पर रेखांकित करना चाहते हैं?

□ विभाजन की त्रासदी पर भी लिखा था तो एक 'सबक' के तौर पर नहीं लिखा था. एक विकट मानवीय स्थिति को दिखा पाने की दृष्टि से लिखा था.

आज के जीवन की अनेक ऐसी घटनाएं हैं जो उतनी ही मार्मिक, उतनी ही भयावह और विकट हैं. आज का हमारा सामाजिक जीवन बड़ा विचलित और उद्वेलित करनेवाला है. सवाल ऐसे मुद्दे पर लिखने की इच्छा का नहीं है, सवाल इन मुद्दों पर अपनी पकड़ का है. अनुभव जनित रचनाओं में और सायास लिखी जाने वाली रचनाओं में ज़रूर अंतर होता है, हालांकि सायास लिखी जानेवाली रचनाओं की सार्थकता और महत्व से इंकार नहीं है.

● प्राय: आपकी कहानियों के चरित्र हमारे भीतर जगह बना लेते हैं, कहीं-कहीं तो कहानी ही रेखाचित्र के करीब खिंचती चली गयी प्रतीत होती है. तो यह जो प्रक्रिया है, चरित्रों के प्रति एक अतिरिक्त मोह है, यह अनायास हो जाता है या आप सचेत रूप से करते हैं? आपकी बेहतरीन कहानियां तो वे हैं जहां स्थितियां अपने आप में कथा-चरित्र बन जाती हैं. जैसे 'अमृतसर आ गया है' या 'चीफ की दावत'...ऐसे में 'कुछ और साल' का मधुसूदन पीछे छूट जाता है.

□ कहानी लिखते समय हम स्थितियों-घटनाओं को तो वास्तविक जीवन में से अक्सर उठाते हैं, साथ ही साथ पात्रों को भी उठाते हैं. जहां कोई स्थिति कहानी में पनपने, अपना स्वरूप और आकार ग्रहण करने लगती है, कल्पना द्वारा की जानेवाली जोड़-तोड़ के साथ, वहां पात्र भी अपना स्वरूप, चरित्र और व्यक्तित्व ग्रहण करने लगता है. यों तो यह कहना सरलीकरण होगा कि हम किसी स्थिति अथवा घटना को जीवन में से उठाते हैं, घटना, उस सक्रिय पात्र के साथ जुड़कर ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती है. पात्र काल्पनिक अथवा अमूर्त नहीं होता. जो विसंगति किसी स्थितिविशेष में पायी जाती है वैसी ही कोई विसंगति उस पात्र में भी पाई जा सकती है जो उसमें सक्रिय है. इस तरह पात्र की ओर ध्यान अधिक जाता है.

● घटना जब कथा-रूप में बयान कर दी जाये तब वह मार्मिक होते हुए भी कहानी का-सा प्रभाव नहीं छोड़ती...पर 'माता-विमाता' आपकी प्रतिनिधि कहानियों में मानी गयी है!

□ आपका सवाल मैं समझ नहीं पाया. घटना अपने में कलात्मक महत्व नहीं रखती. वह मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना होती है. पर उसके भीतर पायी जानेवाली विडंबना या विरोधाभास या विसंगति की पहचान उस घटना को कलात्मक संभावनाओं की दृष्टि से मूल्यवान बना देती है. लेखक उसी को उभारने का प्रयास करता है.

● कबीर के व्यक्ति और विचार को लेकर जो प्रभाव आपके मन पर था...उसने 'कबिरा खड़ा बजार में' की रचना करवाई या नाटक लिखने के लिए आपने कबीर का अध्ययन किया!

□ मोटे तौर पर तो कबीर के व्यक्तित्व और दृष्टि के बारे में मेरी अल्प-सी जानकारी ने ही मुझे कबीर पर लिखने के लिए उत्प्रेरित किया. पर धीरे-धीरे जब मैं इस ओर चल पड़ा तो मुझे बहुत पढ़ने-जानने की जरूरत महसूस हुई. हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रभावशाली रचना 'कबीर' से मुझे कबीर के दर्शन को समझने में बड़ी मदद मिली. फिर तो जो मेरे हाथ लगा, उसे मैंने पढ़ा. इनमें शोध ग्रंथ भी थे और छिटपुट पुस्तकें भी.

● नाटकों के प्रति आपका रुझान किस तरह हुआ? 'हानूश' से पहले का दौर कैसा रहा था?

□ 'हानूश' से पहले मैंने अनेक नाटकों का अनुवाद, रूपांतर तथा मंचन किया था. स्कूल और कालिज के दिनों में नाटक खेलता था. कॉलेज छोड़ने के बाद मंचन करने लगा. इनमें प्रसिद्ध चेक नाटक 'आर.यू.आर.', 'घोस्ट ट्रेन' 'जुबैदा' आदि शामिल हैं. एक नाटक का रूपातरण ख्वाजा अहमद अब्बास के साथ मिलकर इप्टा के लिए भी किया, और नाटक में अभिनय भी किया, निर्देशन भी किया. कुछेक एकांकी भी खेले. इस तरह रंगमंच के साथ काफी दिन तक जुड़ा रहा. पर 'हानूश' से पहले नाटक-लेखक की ओर मुड़ने का कोई इरादा नहीं था. 'हानूश' नाटक लिखने का इरादा तो मास्को में बना जहां मैं अनुवाद कार्य के लिए गया हुआ था. पहला ड्राफ्ट इतना अधकचरा था कि जब मेरे भाई ने उसे पढ़कर सिर हिला दिया तो मैंने निराश होकर उसे ताक पर रख दिया. लगभग दो वर्ष बाद उसे फिर से उठाया. लेखक की स्थिति की विडंबना इस बात में भी है कि लिखी हुई चीज़ को वह फाड़कर फेंक नहीं सकता. अगर ऐसा कर भी दे तो उसके दिल को धुकधुकी-सी लगी रहती है...कि फेंक न दी होती तो उसमें से कुछ बन जाता. हानूश के साथ भी ऐसा ही हुआ.

● सांप्रदायिकता का सवाल आज जिस कदर बड़ा होता जा रहा है...आप उससे मुक्ति पाने का रास्ता किस रूप में देखते हैं? सुधार का कोई रास्ता या निर्णायक हल...

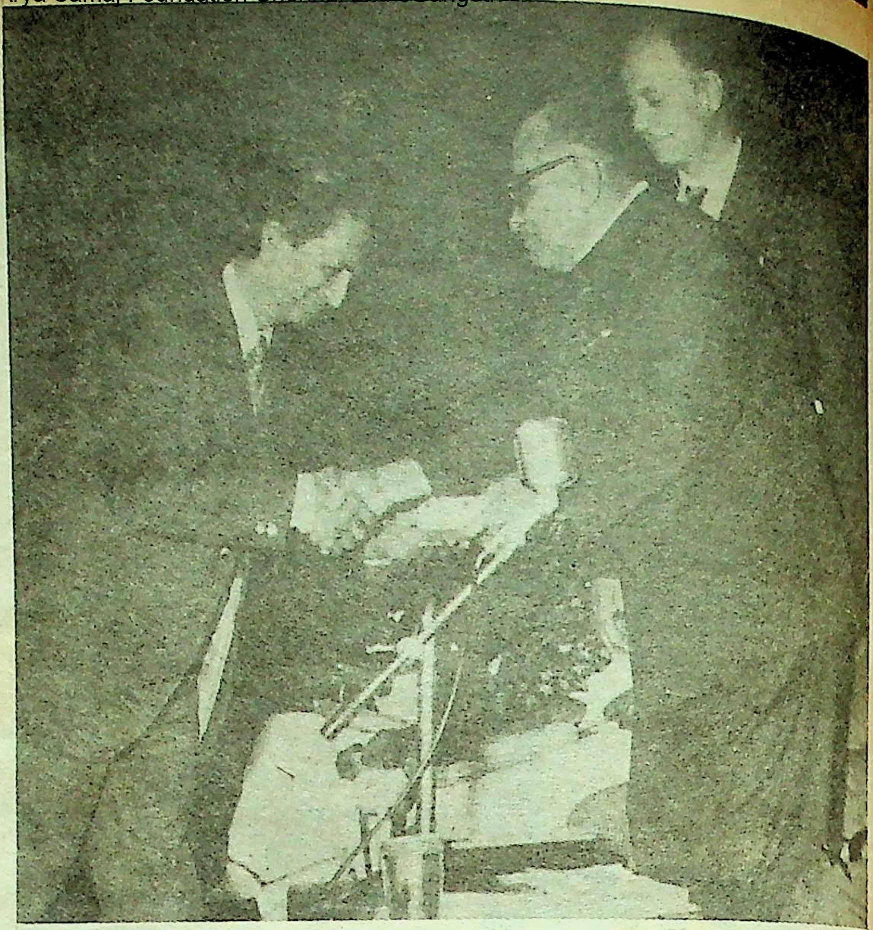

□ एक लेखक के नाते मैं मुख्यतः सांस्कृतिक स्तर पर ही सांप्रदायिकता विरोधी अभियान में अपना योगदान दे रहा हूं. भारत जैसे बहुजातीय, बहुभाषी, बहुधर्मी किसी भी देश में किसी भी जातीय सवाल का हल हिंसात्मक दबाव द्वारा नहीं खोजा जा सकता. दंगों द्वारा, कभी कोई जाति तो कभी कोई, अपना शक्ति-प्रदर्शन करे, और यह समझे कि इस आधार पर समाज में संतुलन आ जायेगा, इस प्रकार का तर्क बड़ा गलत और खतरनाक है. शक्ति प्रदर्शन द्वारा हम इस समस्या का समाधान नहीं कर सकते. न ही राजनैतिक स्तर पर किये जाने वाले समझौतों द्वारा. निश्चय ही धर्म को राजनीति से अलग करके ही इसका कोई समाधान संभव होगा. सभी नागरिकों को बराबरी का अधिकार देते हुए, निजी धार्मिक मान्यताओं को उसके नागरिक कर्तव्यों से अलग करते हुए, और इस नियम का कड़ाई से पालन करते हुए ही हम कोई समाधान ढूंढ सकते हैं. यह बराबरी का अधिकार सांस्कृतिक स्तर पर तो और भी ज्यादा महत्वपूर्ण है. सभी भाषाओं को बराबरी का दर्जा देना, सांझी सांस्कृतिक विरासत को मान्यता देना, सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना, संस्कृति के क्षेत्र में उदारता और आदर भाव...इस तरह से हम बहुत हद तक सांप्रदायिकता के ज़हर को फैलने से रोक सकते हैं.

● आपने कहानियां, उपन्यास, नाटक...तीनों विधाओं में समान अधिकार से काम किया है. पर सबसे ज्यादा रचनात्मक सुख आप किस विधा में अनुभव करते हैं?

□ नाटक की विधा मुझे बहुत प्रिय है. पर वर्षों तक कहानियां-उपन्यास लिखते रहने के बाद 'नाटक' विधा में कुशलता ग्रहण करना आसान नहीं है. कहीं-कहीं कहानी-उपन्यास की शैली हावी होने लगती है. कहानी-उपन्यास के पीछे सोचने और कहने का ढंग अलग होता है, नाटक के पीछे अलग.

रचनात्मक सुख तो सभी विधाओं में मिलता है.

● इधर आप रचना-कर्म के नाम पर क्या कर रहे हैं?

□ एक उपन्यास 'मय्यादास की माड़ी' १९८८ में प्रकाशित हुआ था, तदनंतर 'पाली' नाम से एक कहानी संग्रह, 'अपनी बात' नाम से एक निबंध संग्रह भी. हाल ही में 'मुआवज़े' शीर्षक से एक नाटक भी लिखा है, इन दिनों एक उपन्यास पर काम कर रहा हूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बबली

बस, वही कुछ तो देख पाती है जो दिन के उजाले में नजर आता है, उसके आगे धुंध है, जिसमें किसी आकृति अथवा रेखा अथवा रास्ते का क्षीण-सा संकेत भी नहीं मिलता. उस गहराती धुंध में उसे कुछ नजर आये, उसकी न तो अब कभी उसे इच्छा हुई है और न ही उसका इंतजार रहा है.

रेखांकन : हेमज्योतिका

"वह तो नौकरीवाली है ना, जी, साढ़े आठ बजे घर से निकल जाती है, उसका भी तो ख्याल रखना पड़ता है ना, जी," बबली बोली.

"तुम्हें सबका ख्याल है, बबली, सिर्फ मेरा ख्याल नहीं है," घर-मालकिन कहने लगी, "मेरे साथ तो तू मनमर्जी करती है, कभी बारह बजे आ जायेगी, कभी एक बजे."

"क्या करूं जी, और घरों में भी तो काम होता है."

बबली बातें भी करती जाती और बासन भी मलती जाती थी, दायें कंधे से बार-बार, कभी अपना पल्ला पीछे हटाती हुई, कभी माथे पर झूलती बालों की लट को हाथ की पीठ से पीछे फेंकती हुई. मिनटों में उसने बर्तन साफ कर डाले थे, और उसके तुरंत बाद वह झाड़-पोंछ में लग गयी थी.

"तू एक काम कर, बबली, मेरे घर में दो बार आना शुरू कर दे. सुबह आयी तो आंगन धो दिया, मेरे लिए सब्जी काट दी. दूसरी बार बेशक देर से आ, तब कपड़े धोना, चपातियां सेंकना, झाड़-पोंछ, यह सब कर."

बबली चुप रही.

"क्यों यह ठीक नहीं?"

"ठीक तो है बीबीजी, पर मैं पहुंच नहीं पाऊंगी."

"क्यों?"

"नौ बटा बीसवाली की बेटी स्कूल से आती है ना, बीबीजी, उसे चौराहे पर से लेकर घर पहुंचाना होता है. बस डेढ़ बजे पहुंचती है, मैं क्या करूं?"

"पर उसे घर पहुंचना तेरा काम तो नहीं है. इसके लिए कोई और बंदोबस्त कर ले."

"और कौन है जी, उनके घर में, साहिब दफ्तर में होते हैं."

"अच्छा सुन," घर-मालकिन कुछ सोचकर बोली, "बेशक सफाई का काम तू रोज नहीं किया कर. एक दिन सफाई कर दे, एक दिन बाकी सारा काम. इस तरह तो वक्त पर आ पायेगी ना?"

बबली को कोई भी गृहणी छोड़ती नहीं. घरों की बीवियां नियमित काम के अलावा दस काम और उससे करवा लेती हैं.

"बबली, जब जाओगी तो ये चिट्ठियां डाक में डालती जाना."

"बबली, उसी तरफ से जा रही हो, बिजलीवाले से कहना घर पर आये."

"जाने से पहले मेरे पौधों को पानी देती जाना, बबली!"

वह काम में चुस्त है, और हाथ की साफ है, इस पर हंसमुख है, कभी उसके माथे पर बल नहीं आया, हंस-हंसकर काम करती है.

बबली कालीन पर ब्रुश लगा रही थी तब घर-मालकिन बोली, "तू चली जायेगी तो मैं क्या करूंगी, बबली?"

"और कोई मिल जायेगी, जी."

इस पर घर-मालकिन उलाहने की-सी आवाज में बोली, "पागल, यह नहीं कहती कि मैं कहीं नहीं जाऊंगी, उल्टे कहती है कोई और मिल जायेगी."

"और क्या जी," बबली बोली और खिलखिलाकर हंस दी.

"सुन बबली," मौका देखकर गृहणी ने कहा, "तू पांच घरों में काम करती है ना, तू उनमें से दो घर छोड़ दे, सिर्फ मेरे घर में काम कर. मैं तुम्हें अढ़ाई सौ दे दूंगी."

"वे मुझे छोड़ें भी तो, जी," बबली ने हंसकर कहा, "बीवियां कहां छोड़ती हैं जी, कोई एक भी नहीं छोड़ेगी."

"वे अपना फायदा देखती हैं, तुम्हें चाहिए अपना लाभ देखो. अपनी जान तोड़ने से तुम्हें क्या मिलेगा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर घर-मालकिन, सोफे पर से पांव लटकाये उसे समझाने लगी, "पांच घरों में काम करती हो तो कम-से-कम बीस जनों का काम करती हो, एक-एक घर में चार-चार जीव तो होंगे. बीस जनों के बर्तन मांजती हो, बीस जनों के कपड़े धोती हो, पांच घरों में झाड़ू लगाती हो, बोल कितना काम हुआ? यहां सारे घर में कुल मिलाकर तीन कमरे हैं और रहनेवाले कुल दो जने हैं, और मैं तुम्हें उतनी पगार देने के लिए तैयार हूं, जितनी तू तीन घरों से कमाती है. बोल, इसमें तेरा लाभ है या नहीं?"

बबली सुन रही थी और मुस्कराती जा रही थी, और साथ ही साथ कालीन पर ब्रुश भी लगा रही थी. बीवी ठीक कह रही थी, पर फिर भी वह बीवी की बात मानने के लिए तैयार नहीं थी.

आज सुबह बबली काम पर देर से पहुंची थी. पहली बस छूट गयी थी, दूसरी बस आधे घंटे बाद मिली और उसका रास्ता भी लंबा था. चालीस मिनट तो यों ही बस में निकल जाते थे और आज तो, बस जाने किन-किन रास्तों से घूमती हुई पूरे एक घंटे में पहुंची थी.

बस में से निकलते ही वह भागती हुई बैंकवाली के घर पहुंची थी. बैंकवाली सुबह साढ़े सात बजे घर से निकल जाती है. बैंक तक पहुंचने में उसे भी पैंतालीस मिनट लगते हैं, और कुछ रास्ता पैदल भी चलना पड़ता है.

"मैं आ गयी जी," बबली ने चहककर कहा. तेज-तेज चलने के कारण वह हांफ रही थी.

बैंकवाली मालकिन, सजी-धजी, कंधे से बैग लटकाये फ्लैट के बाहर ताला लगा रही थी तब बबली हांफती हुई सीढ़ियां चढ़ आयी. बैंकवाली ने मुड़कर देखा तो आश्वस्त हो गयी.

"अब आयी है, मरजाणी!"

"क्या करती जी, बस छूटी गयी."

बैंकवाली ने मुड़कर ताला खोल दिया और चाभी बबली के हाथ में देती हुई बोली, "ले पकड़ चाभी. झाड़ू-पोंछा करके कपड़े-लत्ते संभाल देना. कुर्सी पर धुलाई के कपड़े रखे हैं, उन्हें इस्त्रीवाले को दे आना. इधर सब्जीवाले से एक पाव मटर, आधा किलो प्याज और पाव-भर भिंडी लेकर रख जाना." और बैंकवाली बबली के हाथ में दस का नोट देती हुई सीढ़ियां उतर गयी.

बैंकवाली जल्दी में थी, फिर भी कुतूहलवश चलते-चलते पूछ लिया, "तेरी सगाई का क्या हुआ?"

"टूट गयी जी."

"क्यों?...अच्छा कल पूछूंगी, देर हो रही है. कल वक्त पर आना..." और बीवी सीढ़ियां उतर गयी थी.

बबली भी अपनी जगह खुश थी. हवा से अठखेलियां करती हुई-सी, एक घर से दूसरे घर में काम करने जा रही थी.

बैंकवाली के घर काम कर चुकने के बाद जब बबली सात बटा तीनवाली के घर पहुंची तो नौ बजनेवाले थे. बीवी मुचड़ी हुई, ढीली-ढाली नाईटी पहने आंगन में अपने गिने-चुने पौधों को पानी दे रही थी.

"आ गयी तू?" मालकिन ने तुनककर कहा, "कहां मर गयी थी इतनी देर? बबली तू तो हड्डियों का साड़ा बनती जा रही है."

बबली खड़ी हंसती रही थी.

"बस, आ गयी, देख लो."

"देर से क्यों आयी?"

"पहली बस छूट गयी थी, जी."

"ले पकड़," मालकिन ने बबली के हाथ में खाली लोटा थमाते हुए कहा, "इस तरफ मैंने पानी दे दिया है, तू उधर, मोटर के पीछे देना. पानी की बाल्टी भरकर अंदर से ले आना. कूलर को भी ऊपर से साफ कर देना...मैं अंदर जा रही हूं.." और वह अपनी नाईटी संभालती अंदर चली गयी थी.

जहां बैंकवाली साढ़े सात बजे घर से निकल जाती थी, वहां सात बटा तीनवाली आठ बजे उठती थी. आज वह आठ बजे भी नहीं उठती, अगर पानी के नल सवा आठ बजे बंद नहीं हो जाते. बबली, बैंकवाली के घर जाने से पहले यहां आती थी, गेट की चाभी उसी के पास रहती थी, वही गेट का ताला खोलती, वही आंगन का नल खोलकर रब्बर की नली से पौधों में पानी डालती, आंगन धोती और चाभी को बंद दरवाजे के नीचे से अंदर खिसकाकर बैंकवाली के घर भाग जाती थी. सात बटा तीनवाली जब आंखें मलती हुई आठ बजे उठती तो सुबह की हवा में आंगन के पौधे नहा-धोकर, उजले-उजले, दायें-बायें हौले-हौले हिल रहे होते, झूम से रहे होते तो घर-मालकिन का मन भी खिल उठता और अनायास उसके मुंहे से निकल जाया करता था, "इस मरजाणी बबली का बड़ा सहारा है. कैसा अच्छा आंगन धो जाती है."

वहां भी आंगन धोने के बाद जब बबली अंदर गयी थी तो बीवी ने वही सवाल पूछा था, "तेरी सगाई का क्या हुआ?"

"टूट गयी जी," बबली चटककर बोली थी.

"क्यों?"

"लड़केवालों ने कहीं और बात कर ली है."

"पर अब तेरा क्या भरोसा, बबली, कहीं फिर से तेरी सगाई की बात चली तो तू नौकरी छोड़ देगी."

सात बटा तीनवाली ने कुतूहलवश पूछा था, पर मन ही मन सगाई टूट जाने पर वह संतुष्ट भी हुई थी. बबली की सगाई हो जाती तो निश्चय ही उसे कोई इंतजाम करना पड़ता. इन लोगों में चट सगाई और पट ब्याह जो चलता है. बड़ा झंझट उठ खड़ा होता. आजकल बबली जैसी लड़कियां मिलती कहां हैं?

"क्यों टूटी तेरी सगाई? तू तो मुझे नोटिस दे रही थी कि अपना इंतजाम जल्दी कर लो."

बबली हंसती हुई सिर झटककर बोली, "वह भी कहता था जी, बबली बर्तन मलने का काम छोड़ दे तब हम सगाई करेंगे.पर मेरा बाप नहीं माना."

"बर्तन मलना क्यों छोड़ दे? क्या उनकी जात तुझसे ऊंची है?"

"होगी, एक जात ऊंची है."

"फिर तेरा बाप क्यों नहीं माना?"

"वह क्यों मानेंगे जी, मैं बर्तन मलना छोड़ दूं तो हम खायेंगे कहां से?"

"तेरी मां कितने घरों में काम करती है?" बीवी ने पूछा.

"दो घरों में."

"बस? वह और घर क्यों नहीं पकड़ लेती?"

"वह दो घरों में काम करेगी जी, थक जाती है."

"और तेरी बहिन?"

"वह पढ़ रही है बीबी जी, स्कूल जाती है, वह चौका-बर्तन के काम को हाथ नहीं लगायेगी."

"और तेरा भाई?"

"वह लड़का है जी, वह क्यों यह काम करेगा?"

"तो फिर सारा काम तू ही करती है, तू ही करेगी?"

"सही है, मैं ही करूंगी. मैं ही तो करती हूं." अपनी टुनटुनाती हंसी के साथ बबली बोली.

"इसीलिए कहती हूं, क्यों अपनी जान तोड़ रही है. अकेले मेरे घर में काम कर...और तेरा बाप?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह ढुलाई का काम करते हैं बीबी जी, वजन उठाते हैं. अपने ठेले पर लोहे की छड़ें, सरिये, ऐसा माल गोदाम से लादकर जगह-जगह पहुंचाते हैं...उन्हें पगार मिलती है जी," बबली ने गर्व से कहा.

तभी सहसा बबली उठ खड़ी हुई थी.

"मैं जाऊंगी जी, देर हो रही है." और पल्ले से ही हाथ पोंछकर भागने को हुई.

"दूध तो पी जा, दासे पर रखा है."

"कल पिऊंगी जी, अब देर हो रही है." और बबली सीढ़ियां उतर गयी.

बबली की सगाई का पिछला अड़ंगा सबसे ज्यादा परेशान करनेवाला था. तब भी बर्तन-बासन छोड़ने की मांग आयी थी, कि मांडे मांजनेवाली लड़की को हम घर की बहू नहीं बनायेंगे और बबली के मां-बाप ने बबली के सभी घर छुड़वा दिए थे और बबली दर्जी का काम सीखने लगी थी. उन्हीं के घर के पास नानकू नाम का एक बूढ़ा दर्जी बैठता था, उसकी तंग-सी कोठरी में बबली, पहले कुछ दिन तो काज काढ़ती और कमीजों पर बटन लगाती रही थी. सिलाई का काम सीखते हुए बबली फिर से अपने दांपत्य जीवन के सपने देखने लगी थी. लड़का मोटर-ड्राइवर था. बबली की आंखों के सामने नये-नये नजारे घूमने लगे थे. उसका ड्राइवर पति, घर के सामने मोटर लेकर आया है, और उसे घुमाने ले जा रहा है. मोटर हवा से बातें करती हुई उड़ती जा रही है. ठंडी-ठंडी हवा बबली के मुंह पर थपेड़े मार रही है और उसके बाल उड़ने लगे हैं. बबली का दिल उल्लास से भर-भर जाता था.

फिर जब वह कटाई-सिलाई का काम कुछ-कुछ सीख गयी थी और अपने हाथ से कपड़ा काटने लगी थी, उसे इस बात का विश्वास हो चला था कि वह काम सीख जायेगी और दो पैसे कमाने लायक हो जाएगी कि सहसा सगाई की बात टूट गयी थी, लड़केवालों ने किसी दूसरी जगह जुबान दे दी थी. इस बार जब बबली मुहल्ले में काम करने के लिए लौटी थी तब बीवियों के तेवर जरूर चढ़े थे. पूरे बीस दिन तक सगाई का मामला लटका रहा था. एक बीवी ने तो दूसरा इंतजाम कर भी लिया था. नौ बटा बीसवाली ने तो यहां तक कह दिया था कि अब कभी नहीं आयी तो पैसे काटूंगी. पर फिर, बबली आखिर बबली थी, उस जैसी लड़की और कहां से मिलेगी, और बबली फिर से अपने काम में जुट गयी थी, और फिर से एक गली से दूसरी गली में भागती हुई, कभी एक घर की सीढ़ियां चढ़ती, कभी दूसरे घर की सीढ़ियां उतरती नजर आने लगी थी.

डेढ़ बजते-बजते बबली बस स्टाप पर खड़ी थी. नौ बटा बीसवाली की बेटी की राह देख रही थी. बस ठीक पौने दो बजे पहुंच गयी. बस में से उतरते ही बेटी ने स्कूल का थैला बबली के कंधे पर डाल दिया और उसका हाथ पकड़कर झूमती-बतियाती हुई घर की ओर जाने लगी.

तीन बजे के आसपास वह अधेड़ उम्र की सरदारनी के घर बैठी उसके बाल काढ़ रही थी. वहां भी उसकी सगाई की चर्चा चल रही थी.

"चौका-बर्तन का काम नहीं छोड़ना बबली. जो भी कुछ कहता है, कहने दो. यह काम नहीं छोड़ना. इस काम में बरकत है..." सरदारनी सीख दे रही थी.

फिर वह भागती हुई दो घरों के लिए दूध लेने गयी. बूथ चार बजे खुलता था पर आज लाईन लंबी थी. पूरा आधा घंटा दूध ले जाने में ही निकल गया.

दिन ढल रहा था, जब बबली डॉक्टरनी के घर कालीन पर बैठी, कपड़े इस्त्री कर रही थी, डॉक्टरनी अपने क्लीनिक जाने को तैयार हो रही थी. तैयार भी हो रही थी और बबली को समझा भी रही थी, "कहने को तो ससुरालवाले कुछ भी कहते रहेंगे, पर घर में लड़की की कमाई के पैसे आते रहें तो उन्हें अच्छा ही लगता है. अब जहां भी तेरी सगाई हो, काम करना नहीं छोड़ना, यह बात गांठ बांध ले. यही काम करती जा..."

शाम छः बजते ही बबली मुहल्ले में से भाग खड़ी हुई. तीन नंबर की बस छह बजकर पांच मिनट पर मिलती थी और सीधी उसकी बस्ती तक ले जाती है. बबली जब बस में बैठती है तो अस्तप्राय सूर्य की लाली, घरों की छतों, दीवारों पर अभी खेल रही होती है और जब वह बस में से उतरती है तो अंधेरा घिर चुका होता है और वातावरण में धुआं गहरा रहा होता है.

ऐसी ही स्थिति कुछ-कुछ सुबह के वक्त भी होती है जब बबली काम पर निकलती है. वह बस में बैठती है, चारों ओर अंधेरा छाया होता है, पर जब बस बीवियों के मुहल्ले में पहुंचती है तो सुबह की निखरी-निखरी धूप चारों तरफ छितरी होती है.

जब बबली घर पर पहुंची तो मां ने कोठरी में दिया जला रखा था और बापू, कोठरी के बाहर चुपचाप बैठा था.

"बापू, आज तुम काम पर से जल्दी लौट आये?"

उसका बाप चुप रहा. सिर पर उड़ते रूखे, खिचड़ी बाल, धूप में संवलाया फूला हुआ चेहरा, गंदली आंखें.

"नहीं, उन्होंने मेरी छुट्टी कर दी है."

बबली की नजर बापू के दांये पैर की ओर गयी. पैर पर मैली-सी थिगलियां बंधी थीं और पैर सूजा-सूजा लग रहा था.

"यह क्या हुआ बापू?"

उसी दिन सुबह जब उसका बाप लोहे के सरिये उठा-उठाकर ठेले पर लाद रहा था तो एक सरिया दांये पैर पर जा गिरा और जख्म हो गया. बबली के बाप ने जमीन पर से एक चीथड़ा उठाकर जख्म पर रखा और फिर से सरिया लादने लगा. उसने चीथड़े से खून को पोंछा, फिर एक और चीथड़ा उठाकर जख्म को बांध दिया और ठेला खींचने लगा. पर थोड़ी ही देर बाद टीस उठने लगी और जब बोझा उतारकर गोदाम की ओर

दास्तान-ए-समर्पण

रचनाकार जब अपनी कृति किसी व्यक्ति के नाम समर्पित करता है तो निश्चय ही यह एक भावुक-सा क्षण होता है...और इससे होती है एक खास रिश्ते की पहचान. भीष्म साहनी ने अपनी कृतियों के समर्पण जिन व्यक्तियों के नाम किये हैं...उनका विवरण इस प्रकार है.

'भाग्य रेखा'	शीला के नाम.
'भटकती राख'	मां को.
'वाङ्चू'	वरुण के लिए.
'शोभा यात्रा'	प्रिय मित्र सोम सुंदरम् के लिए.
'निशाचर'	प्रिय मित्र राधेश्याम दुबे को सप्रेम.
'पाली'	कल्पना-वरुण को सप्रेम.
'हानूश'	निर्मल वर्मा के लिए.
'कबिरा खड़ा बजार में'	प्रिय मित्र रामजी मिश्र के लिए.
'माधवी'	आदरणीय बंधु त्रिलोचन शास्त्री को.
'झरोखे'	कल्पना को.
'कड़ियां'	परीक्षित को.
'तमस'	बलराज जी को.
'मय्यादास की माड़ी'	दिवंगत माता-पिता के चरणों में.

सभी पुस्तकें राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२ से प्रकाशित हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट रहा था तो पांव सूज रहा था और शरीर तपने लगा था.

गोदाम से घर की ओर वह चलने ही वाला था जब ठेकेदार ने उसकी छुट्टी कर दी.

"अब यह काम तेरे का बस नहीं है. घर पर बैठ."

इस संक्षिप्त से ब्यौरे से बबली के मन को आघात पहुंचा हो, ऐसा कुछ नहीं था. ऐसी घटनाएं तो आये-दिन घटती रहती थीं. हां, पर यह गनीमत थी कि सगाई टूट गयी थी और बबली बीवियों के मुहल्ले में जा पहुंची थी और उन्होंने उसे रख लिया था. बबली की सगाई टूट जाने से उसके मां-बाप को केवल सदमा ही पहुंचा हो, ऐसा भी नहीं था, कुछ-कुछ संतोष भी हुआ था, कुछ-कुछ वैसा ही संतोष जैसा पांच घरों की बीवियों को हर बार बबली की सगाई टूट जाने पर हुआ करता था.

दो दिन तक बबली फिर काम से गायब रही. बाप को जख्म के कारण ताप चढ़ आया था और उसकी दवा-दारू करना था.

"मैं आ गयी जी," बबली ने नौ बटा बीसवाले घर में कदम रखते ही पुकारा.

"तू कहां से टपक पड़ी बबली. मैंने तो सोचा अब तू नहीं आयेगी. कहीं और सगाई की बात चल पड़ी होगी."

"अब कहीं नहीं जाऊंगी. लौट आयी हूं," बबली ने हंसकर कहा.

"कल फिर तेरी सगाई की बात चली तो तू फिर छोड़ जायेगी."

"अब सगाई की बात नहीं चलेगी बीबी जी! अब बापू की नौकरी भी छूट गयी है."

बैंकवाली के घर गयी तो उसने भी बबली को सिर से पांव तक देखा. वह समझ नहीं पायी कि क्या बात हुई है, बबली बार-बार गायब रहने लगी है, असमंजस में थी कि उसे रखे या नहीं रखे, जब उसकी बेटी लपककर बबली की बांहों में जा पहुंची.

बबली आश्वस्त थी कि उसका काम फिर से शुरू हो गया. फिर से वही जानी-पहचानी आवाजें. पर जब बीवियों ने फिर से उसे रख लिया तो उनके मुतालबे भी बढ़ने लगे.

बबली ने दो घर और पकड़ लिए हैं. क्या करती? बहिन सातवीं में पढ़ रही है, भाई गलियों में घूमने लगा है और बाप दिन-भर खाट पर बैठने लगा है. उससे कहो कि माल ढोने का काम न सही कोई दूसरा काम कर लो, कहीं चौकीदारी का काम कर लो, कहीं चपरासी लग जाओ, तो वह खीझकर इंकार कर देता है. कुछ काम हैं जो वर्षों तक करते रहो तो उनकी आदत हड्डियों में घुस जाती है. बबली का बाप सारी उम्र बोझा ढोता रहा है, अब कोई काम उसे रास नहीं आता, कुछ कहो तो चिल्लाने लगता है.

दो घर और पकड़ लेने से बबली की भागमभाग और ज्यादा तेज हो गयी है. धीरे-धीरे समय बीतने लगा है, उसकी सगाई की चर्चा पीछे छूटने लगी है, धीरे-धीरे दूर होती जा रही है. उसके पिता के पांव की चोट नासूर बन गयी है, अब वह कोई भी काम करने लायक नहीं रह गया है. वक्त बीतते न बीतते बबली सगाई की उम्र भी लांघ जाएगी. दर्जिन या कुछ और बन पाने की उम्र भी. अब उसके पांवों में स्फूर्ति की जगह स्थिरता आ गयी है, उत्सुकता के स्थान पर एक प्रकार की मूक उदासीनता. जब मोटर-ड्राइवर के साथ सगाई की बात चली थी तो दिल कैसे धक-धक करता था. एक बार वह मुआ सड़क पर सामने पड़ गया था तो ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी थी. वैसा अनुभव फिर कभी नहीं हुआ. अब तो बबली को अपने भविष्य का कभी ध्यान नहीं आया. कभी-कभी उसकी आंखें यह देखकर चौंक-सी जाती हैं कि बाप बूढ़ा हो चला है, और मां बड़बड़ाने लगी है, पर आगे क्या होगा, उसकी कोई धूमिल-सी रूपरेखा भी आंखों के सामने कभी नहीं उभरी. बस, वही कुछ तो देख पाती है जो दिन के उजाले में नजर आता है, उसके आगे धुंध है, जिसमें किसी आकृति अथवा रेखा अथवा रास्ते का क्षीण-सा संकेत भी नहीं मिलता. उस गहराती धुंध में उसे कुछ नजर आये, उसकी न तो अब कभी उसे इच्छा हुई है और न ही उसका इंतजार रहा है.

आज सुबह बबली नौ बटा बीसवाली के घर पहुंची तो घर-मालकिन भभककर बोली, "यह कोई वक्त है आने का, बबली? देख तो क्या वक्त हो रहा है? अब देर से आयी तो मैं पैसे काटूंगी."

जवाब में बबली क्षीण-सी मुस्कान के साथ बोली, "क्या करती बीबी जी, पांच बटा तीनवाली के सिर में दर्द हो रहा था, उसे छोड़कर कैसे चली आती?"

इस पर बीबी बरस पड़ी, "तुम लोगों पर तरस खाने का कोई फायदा नहीं. देख तो मैंने तुम्हें कितनी चीजें दी हैं," और बीबी एक-एक चीज गिनने लगी और फिर तर्जनी हिलाती हुई बोली, "अब दोनों कान खोलकर सुन लें. ठीक वक्त पर आएगी तो अगले महीने से दूसरा इंतजाम करूंगी."

पहली बार जब एक गृहस्थी ने पैसे काटनेवाली बात कही थी तो दिल छलनी हो गया था, पर अब कोई गृहस्थी दहलीज पर से लौटा दे तो क्या, और जो चाय की प्याली पिला दे तो क्या, बबली को अब कोई फर्क नहीं पड़ता.

नौ बटा बीसवाली के घर से निकलकर जब वह सरदारनी के घर पहुंची तो और ज्यादा देर हो चुकी थी. सात घरों का काम निभाना हो तो देर-सवेर तो हो ही जाती है. सरदारनी के तेवर भी चढ़े हुए थे. "अंदर कदम मत रखना बबली, मैंने कह दिया."

"क्यों बीवी जी?" बबली ने सहजभाव से कहा. जालीवाले दरवाजे के पीछे खड़ी बीवी का तमतमाया चेहरा उसे नजर आ रहा था.

"तूने तो हद्द कर दी. यह कोई वक्त है आने का? दो बज रहे हैं. बारह बजे कहा था और दो बजे चली आ रही है. मेरे घर का काम तुमने मजाक समझ रखा है."

इस पर बबली ने फिर सहजभाव से कहा, "क्या करती बीवीजी, मैं तो आ रही थी पर सात नंबरवाली ने रोक दिया. कहने लगी मैं दो मिनट में सहेली के घर से अपनी साड़ी ले आऊं, तू घर पर बैठ. बस मैं अभी लौटी कि लौटी, पर लौटी एक घंटे के बाद..."

"अब तू उसी के घर में बैठ."

"उसी का काम कर." और बीबी ने फटाक से दरवाजा बंद कर दिया.

बबली चुपचाप खड़ी रही, और फिर दूसरे घर की ओर चल दी. □

जहां तक मेरा सवाल है, मैं तमस सीरियल से पूरी तरह संतुष्ट हूं. उपन्यास की मूल भावना को बहुत अच्छी तरह से गोविंद निहलानी ने इस धारावाहिक में पेश किया है. मुझे तो यह बेहद पसंद आया... हर तरह से, चाहे वह फिल्मांकन हो या निर्देशन, घटनाओं का चित्रण हो या पात्रों का चयन. सब कुछ मुझे बहुत उत्कृष्ट नजर आता है. उपन्यास जिस दृष्टि से लिखा गया है, धारावाहिक में उसी दृष्टि को बनाये रखा गया है और सचमुच राष्ट्रहित में यह प्रयास हुआ है. इस धारावाहिक को बनाने में देश का हित सबसे पहले ध्यान में रखा गया है.

—भीष्म साहनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीनों की नजर में भीष्म साहनी का साहित्य

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य को, जिन रचनाकारों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से, एक व्यापक फलक प्रदान किया, उनमें भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है. 'झरोखे', 'तमस', 'बसंती', 'मय्यादास की माड़ी', जैसे उपन्यास, 'चीफ की दावत', 'अमृतसर आ गया है', 'ओ हरामजादे', 'वाड़ चू', 'त्रास' जैसी कहानियां और 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में', 'माध्वी' जैसे नाटकों के माध्यम से, हिंदी साहित्य में एक सार्थक हस्तक्षेप करते हुए भीष्म साहनी ने विभाजन की त्रासदी के साथ ही टूटते मानवीय मूल्यों, कला और संस्कृति के क्षेत्र में बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप, निम्न और मध्यवर्गीय चरित्र को पूरी जीवंतता के साथ उकेरा है. इनकी कहानियों में भारतीय जन-जीवन पूरे परिवेश के साथ उभरकर सामने आया है. विचारधारा के स्तर पर वे मार्क्सवादी हैं तथा इसी में वे समस्याओं के हल की तलाश करते हैं. प्रगतिशील लेखक संघ के वे महासचिव भी रह चुके हैं इसीलिए उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता लगभग स्पष्ट ही है.

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमने उनके कथा साहित्य को टटोलने की कोशिश की, समकालीनों की राय जानी. यहां प्रस्तुत हैं उनके समकालीनों के विचार :

उन्होंने बाबू की मानसिकता को जिया है.

विष्णु प्रभाकर

भीष्म साहनी को मैंने एक पाठक की दृष्टि से पढ़ा है. उनकी कहानियां केवल भावनात्मक स्तर पर ही प्रभावित नहीं करतीं, बल्कि हमारे संस्कारों पर गहरे चोट करती हैं. खासकर उनकी कहानी 'चीफ की दावत'. यह बहुत ही सहज रूप से लिखी गयी कहानी है. इसमें मां के प्रति एक पुत्र का जो दृष्टिकोण है, वही चीज प्रभावित करती है. एक प्रकार से यह कहानी उस दोगली संस्कृति को प्रस्तुत करती है, जिसमें हम आज जी रहे हैं. 'अमृतसर आ गया है' कहानी भी, एक चरित्र के माध्यम से मानव स्वभाव को प्रस्तुत करती है. यह चरित्र बहुत ही सहज है तथा ऐसा लगता है कि भीष्म साहनी कहीं भी इस चरित्र के विकास के लिए प्रयत्न नहीं करते. वस्तुतः महान चरित्र वही होता है, जो अपने आप आगे बढ़ जाता है. 'अमृतसर आ गया है' के बाबू के साथ भी ऐसा ही हुआ है. बाबू की मानसिकता को लगता है, भीष्म साहनी ने खुद जिया है. इस मामले में मैं भीष्म को यशपाल से ऊपर मानता हूं. खासकर विभाजन की त्रासदी को लेकर उन्होंने जिन चरित्रों का निर्माण किया है उसमें बड़ी खूबी के साथ सारी स्थितियां सहज भाव से आती हैं.

प्रेमचंद यह मानते थे कि जिस साहित्य का समाज से सरोकार नहीं है, वह साहित्य नहीं है. भीष्म साहनी भी इसी रूप में प्रेमचंद से जुड़ते हैं. वैसे भी जब आदमी अपने को व्यक्त करता है, तो वह समाज से जुड़ता ही है. बिना जुड़े वह कुछ कह ही नहीं सकता. प्रसाद भी प्राचीन काल में झांकते हैं तो उसी संदर्भ में कि वे वर्तमान से उसकी तुलना कर सकें.

भीष्म साहनी बहुत ही संवेदनशील व्यक्ति हैं. इसका असर भी उनके साहित्य में देखने को मिलता है. उनके इस सरल और सौम्य व्यक्तित्व के कारण ही उन पर मार्क्सवाद उस रूप में हावी नहीं है, जैसा अन्य वामपंथी लेखकों में देखने को मिलता है. इसीलिए बहुत सारे वामपंथी लेखक कच्चेपन के शिकार हैं. बहुत सारी खूबियों के बाद भी भीष्म साहनी पर मार्क्सवाद का प्रभाव है. इसी कारण उनकी कई कहानियों की संवेदना बाधित होती है. उर्दू में मंटो की एक कहानी है 'टोबा टेकसिंह', उसमें कहीं भी आग्रह नहीं है. फिर भी इस कहानी में विभाजन की कटुता और मार्मिकता जिस भयावह स्थिति के साथ उभरकर आयी है वह भीष्म में, यहां तक कि यशपाल में भी नहीं है.

वे सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष और प्रतिबद्ध हैं

डा. नामवर सिंह

भीष्म साहनी की कहानियों पर अभी तक मैंने अलग से कुछ नहीं लिखा और इसका मुझे अफसोस भी है. किंतु यह सच है कि मैं शुरू से ही उनकी कहानियों का प्रशंसक रहा हूं. उनकी कहानी 'चीफ की दावत' के आधार पर अच्छी कहानी की विशेषताओं का निरूपण मैंने तभी किया था, जब न तो उस कहानी की कहीं चर्चा हुई थी और न नये कहानीकारों में भीष्म साहनी का कहीं जिक्र आता था.

सादगी और सहजता भीष्म जी की कहानी कला की ऐसी खूबियां हैं, जो प्रेमचंद के अलावा और कहीं नहीं दिखाई देती हैं. जीवन की विडंबनापूर्ण स्थितियों की पहचान भी भीष्म साहनी में अप्रतिम है. यह विडंबना उनकी अनेक अच्छी कहानियों की जान है. 'चीफ की दावत' में जिस मां को चीफ की नजर से छुपाने की कोशिश की जाती है, वही अंततः दावत की सबसे बड़ी उपलब्धि साबित होती है. 'वाड़ चू' कहानी में उस बौद्ध भिक्षु के जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वह अपने देश में भारत प्रेमी होने के कारण यातना सहता है और भारत में सताया जाता है चीनी जासूस समझकर. ऐसी ही एक और मार्मिक कहानी है 'त्रास', जिसमें एक मोटरकारवाला साइकिलवाले को टक्कर मारकर घायल कर देता है. गरीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइकिलवाला उसे अपना परम हितैषी और दयालु समझता है, जबकि मोटरवाला इतना कमीना है कि मुआवजे के रूप में पांच रुपया देने में भी सोच-विचार करता है. यही वह कहानी है जिसमें भीष्म जी ने आधुनिक महानगरों में पलनेवाली अमानुषिक घृणा की ओर संकेत किया है और यह भी बताया है कि आधुनिक अमूर्त्त घृणा पुराने जमाने की सरल घृणा से कितनी अलग है. देश के विभाजन पर वैसे तो कई कहानियां लिखी गयी हैं, लेकिन 'अमृतसर आ गया है' का स्थान उनमें विशिष्ट है— खासकर के उस दब्बू बाबू के मनोविज्ञान के सूक्ष्म चित्रण के कारण जो अमृतसर आते ही शेर हो जाता है और उसके अंदर दबी हुई सांप्रदायिक हिंसा उग्र रूप धारण कर लेती है.

हिंदी में भीष्म साहनी को प्रतिष्ठा उनके उपन्यास 'तमस' के कारण मिली और वह भी लगभग सातवें दशक के अंत में. कारण स्पष्ट ही इस उपन्यास की विषयवस्तु है अर्थात देश के विभाजन की त्रासदी. इसके पहले यशपाल का 'झूठा-सच' जैसा विशाल उपन्यास छप चुका था. इसके बावजूद भीष्म जी ने 'तमस' लिखना आवश्यक समझा और उसके द्वारा उनको ख्याति भी मिली. खासतौर से गोविंद निहलानी की फिल्म के बाद. 'तमस' निश्चय ही देश के विभाजन पर लिखा हुआ एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, किंतु मेरी नजर में वह न तो उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और न ही देश के विभाजन पर लिखे हुए उर्दू-हिंदी के अन्य उपन्यासों में ही कोई विशिष्ट कृति. उदाहरण के लिए कुर्रतुल ऐन हैदर का 'आग का दरिया' और अब्दुला हुसैन का 'उदास नस्लें' यहां तक कि यशपाल का 'झूठा-सच' उससे भी बेहतर उपन्यास है. मुझे तो भीष्मजी के उपन्यासों में 'मय्यादास की माड़ी' नामक उपन्यास, जो अभी ही में छपा है, कई दृष्टियों से ज्यादा अच्छा लगा.

मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि अपने उपन्यासों की अपेक्षा भीष्म जी अपनी कहानियों के लिए ज्यादा याद किये जाएंगे. प्रेमचंद की तरह उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा कहानी विधा के अंदर अधिक कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है. वैसे प्रेमचंद के समान ही भीष्म जी के बारे में यह प्रश्न बराबर विवादास्पद रहा है.

भीष्मजी की साहित्यिक यात्रा की एक महत्वपूर्ण मंजिल है नाटक की दिशा में उनका प्रयास. लोग भूल ही गये हैं कि भीष्म साहनी कहानी की दुनिया में कदम रखने से पहले 'इप्टा' से जुड़े हुए थे. उस आरंभिक रुचि की अभिव्यक्ति लगभग बीस-पच्चीस साल बाद हुई. यह सुखद आश्चर्य है, किंतु अपने पहले नाटक 'हानूश' के द्वारा ही नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली और हिंदी नाट्य संसार में एक शून्य को, सार्थक ढंग से भरने का प्रयास भी किया. इसी तरह 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की लोकप्रियता ने 'तमस' के साथ भीष्म साहनी की प्रतिष्ठा में अप्रत्याशित वृद्धि की. किंतु मुझे तो उनका सबसे अच्छा नाटक 'माधवी' लगा. खासकर महाभारत के पुराने आख्यानों में नयी सूझ और नया अर्थ भरने के प्रयास के कारण. हिंदी में नारी मुक्ति के प्रश्न पर लिखा हुआ ऐसा मार्मिक नाटक मेरे देखने में नहीं आया. यदि भीष्म साहनी के नाटकों के लिए उपयुक्त रंगमंच मिले तो यह प्रमाणित हो जाएगा कि उनमें मोहन राकेश से कहीं बड़ी नाट्य प्रतिभा है.

भीष्म साहनी वर्तमान हिंदी जगत के उन थोड़े से लेखकों में से हैं, जो सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष और प्रतिबद्ध हैं. खास बात यह है कि वे अपनी रचनाओं में इस आस्था का ढोल नहीं पीटते. यह विशेषता उनके व्यक्तित्व का इतना अभिन्न अंग है कि इसे उन्हें दिखावे की जरूरत नहीं पड़ती. उनके सौम्य, शालीन, सहज और विनम्र व्यक्तित्व के साथ विचारों की दृढ़ प्रतिबद्धता इतना घुलमिल गयी है कि कभी-कभी उसके बारे में भ्रम भी होता है. बिना आक्रामक हुए भी कोई लेखक प्रतिबद्ध हो सकता है इसकी सर्वोत्तम मिसाल भीष्म साहनी हैं.

इस पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी वे श्रम और साधना में किसी भी युवा लेखक से युवतर दिखाई पड़ते हैं. उनकी शक्ति का मूल स्रोत क्या है, यह मेरे लिए हमेशा कौतुहल और आश्चर्य का विषय रहा है.

सहज मानवीय ऊष्मा के संवेदनशील कथाकार हैं

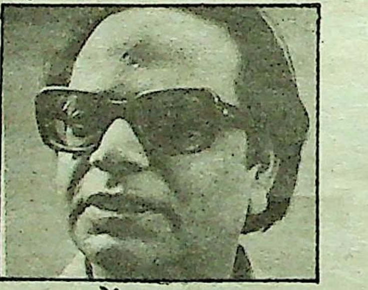

राजेंद्र यादव

मेरी दृष्टि में भीष्म साहनी सहज मानवीय ऊष्मा के संवेदनशील कथाकार हैं. मोटे रूप में उनके साहित्य को पढ़कर मेरे मन में यही भावना उठती है. और मेरी यह बात इस तथ्य से पुष्ट होती है कि उनके यहां बाकायदा 'विलेन' जैसा कोई नहीं है.

प्रेमचंद भी इसी प्रकार सहज मानवीय भावनाओं के रचनाकार हैं और इसलिए मुझे लगता है कि वे प्रेमचंद के ज्यादा निकट हैं. हालांकि प्रेमचंद की अपेक्षा उनका कलात्मक पक्ष ज्यादा मजबूत है. वे अपनी कहानियों को, उपन्यासों को ज्यादा सावधानी से तराशते हैं, इसीलिए भीष्म के पास अच्छी कहानियां प्रेमचंद के मुकाबले शायद ज्यादा हैं. यह हो सकता है कि उस तरह की एक खास धमाका मचानेवाली, शोर मचानेवाली, आलोचकों को ललकारनेवाली कहानियां भीष्म के पास नहीं हैं जैसे कि प्रेमचंद के पास 'कफन', 'पूस की रात' या 'शतरंज के खिलाड़ी' हैं. इस तरह की कहानियां जो एक तरह से हमारी चेतना पर एक धक्का देती हैं— ऐसी कहानियां शायद भीष्म के पास कम हैं. इस तरह के धक्कों में वे विश्वास नहीं करते.

'तमस' सघन स्थिति को प्रस्तुत करनेवाली रचना है और विभाजन की त्रासदी पर केंद्रित है. लेकिन इस विषय पर मंटो जितनी तीखी प्रतिक्रिया और कटु टिप्पणियोंवाले लेखक हैं, भीष्म साहनी उतने नहीं हैं. विपरीत स्थितियों को देखकर, अस्वीकार की जानेवाली बातों को लेकर, आदमी में जो गुस्सा होता है, वह गुस्सा भीष्म साहनी में नहीं दिखाई देता है. इसलिए उनकी प्रतिक्रिया या उनका प्रतिरोध उतना तीव्र नहीं है, जितना हमें यशपाल, मंटो या पंजाब की विभाजन की त्रासदी से गुजरे हुए अन्य रचनाकारों में दिखाई देता है...उनमें एक खास तरह का ठंठापन है. जिसे कुछ लोग आलोचना करते वक्त एक 'यांत्रिक एप्रोच' कहते हैं. इस बात पर मुझे शिकायत है भीष्म से कि वे बहुत तीव्र आवेगों के कथाकार नहीं हैं, चाहे वह प्रेम, भावना या मानवीयता हो. यही कारण है कि इस स्तर पर 'तमस' की मां भी एक सामान्य, निरीह और असहाय बूढ़ी औरत है. इसलिए उसमें अलग से कुछ नहीं है, वो 'टाइप्ड' ज्यादा है, व्यक्ति कम.

भीष्म साहनी हमारे वरिष्ठ और महत्वपूर्ण रचनाकार हैं. हाल ही में प्रकाशित 'मय्यादास की माड़ी' संयोग से मुझे उनके पिछले सारे लेखन से अलग लगती है.

भीष्म साहनी का समग्रता में अभी मूल्यांकन नहीं हुआ है. अब तक उनके पूरे कथा साहित्य को, पूरी मानसिक बनावट को एक गहरी अंतर्दृष्टि के साथ समझने की कोशिश नहीं हुई है. शायद हर लेखक को अपने मूल्यांकन से शिकायत होती है. मुझे तो बहुत ज्यादा है. भीष्म साहनी को पता नहीं है या नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्मजी ने लगातार अपने शिल्प को तोड़ा है

कमलेश्वर

भीष्म साहनी ने अपने कथा साहित्य में जीवन की सच्चाई को बहुत ही गहराई और सघनता से पेश किया है. हिंदी कथा में जो व्याप्ति थी, और जो अभी तक छोटे-छोटे क्षेत्रों में या अंचलों में या मानवीय संबंधों की गुत्थियों में उलझी हुई थी, उसको उन्होंने संवेदना के स्तर पर उठाया और बड़े संवेदनात्मक और संवेदना से भरे चरित्र और स्थितियों और उन स्थितियों में छिपा हुआ इतिहास और समाज का दंश—उसको उद्घाटित किया.

परंपरा की भी अपनी एक जड़ता होती है और इस जड़ता में लेखक को बांधो क्यों? मैं समझता हूं भीष्म ने अपनी तरह से अपनी परंपरा का भी निर्वाह किया है. दूसरी बात, कोई भी लेखक परंपरा में होता भी है और परंपरा के बाहर भी होता है. तभी वह कुछ नया दे पाता है. भीष्म जी ने ऐसा किया.

कोई भी लेखक किसी के अनुभव को दुहराता नहीं है. सांप्रदायिक वैमनस्य को लेकर जो कुछ अनुभव भीष्म के हैं, वो प्रेमचंद से ज्यादा गहरे हैं. इसलिए कि भीष्म ने उस भयनाक नरसंहार को खुद देखा है, सहा है, जिया है, जबकि प्रेमचंद के सामने वे अनुभव नहीं थे. इसी प्रकार विभाजन की त्रासदी, यातना, दुख को लेकर जो कुछ मंटो ने लिखा, यशपाल जी ने उसको एक बड़े भारी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पेश किया और भीष्म ने उसी इतिहास का परिप्रेक्ष्य लेते हुए उस दिशा को छुआ, जो यशपाल नहीं छूना चाहते थे. भीष्म ने उसमें से मानवीय पक्ष को ज्यादा उजागर किया है, वनस्वित त्रास, संत्रास के. उन्होंने उस नरसंहार के बीच से आधे जीवित, आधी सांस लेते हुए लोगों को फिर कहीं-न-कहीं ऐसे उठाकर खड़ा किया कि वे हमें लगता है चाहे घाव उनके शरीर पर हों, मन पर हों, लेकिन अपनी इंसानियत पर घाव लगने नहीं पाये.

विचारधारा के स्तर पर भीष्म साहनी मार्क्सवादी हैं और मुझे लगता है कि वे मार्क्सवाद में ही समस्याओं का निदान देखते हैं. यह ठीक ही है क्योंकि हर लेखक को यह अधिकार होता है कि वह किस विचारधारा से जुड़े या किस पार्टी का पक्ष ले. हर किसी की अपनी दृष्टि होती है और उसी के अनुसार वह लिखता है, काम करता है, क्योंकि उसकी आस्था, उसका विश्वास, उसकी प्रतिबद्धता कहीं तो टिकती ही है. यही कारण है कि भीष्म ने अपने लेखन के माध्यम से उन शक्तियों को बेनकाब किया जो विभाजन की त्रासदी के कारण थे.

भीष्म साहनी ने लगातार अपने शिल्प को तोड़ा है. उन्होंने जो सहजता इस समय के अंतराल में रचनाकार के रूप में प्राप्त की है, वह बड़ी विरल चीज है.

एक कथाकार के रूप में भीष्म का जो देय है, वह केवल हिंदी कहानी को नहीं, बल्कि भारतीय कहानी को, और केवल भारतीय कहानी को नहीं आज की जो जीवंत प्रगतिकामी—प्रगतिशील और प्रगतिवाद दोनों शब्दों से परहेज नहीं कर रहा...लेकिन जो प्रगतिकामी समाज है, किसी भी देश का, मैं समझता हूं कि ये कहना चाहिए कि तीसरी दुनिया का जो लेखन है; उस तीसरी दुनिया के लेखन में भीष्म साहनी का बहुत बड़ा योगदान है.

भीष्मजी इस दौर के महत्वपूर्ण लेखक हैं

शानी

भीष्म साहनी ऐसे लेखक नहीं हैं जिनके कथा साहित्य के विषय में कोई परिचय दिया जाए, राय दी जाये. वे अग्रज कथाकार हैं तथा उन्होंने हिंदी कथा साहित्य में बहुत ही सार्थक ढंग से हस्तक्षेप किया है. मेरी निश्चित धारणा है कि भीष्म साहनी उन थोड़े से लेखकों में से हैं जो वास्तविक जन सरोकार के साथ जुड़े रहे हैं. सच्चा लेखक होने का अर्थ ही है, बुनियादी तौर पर जनता से जुड़ना. जब आप दमित या शोषित के साथ नहीं हैं तो आप लेखक हैं ही नहीं.

भीष्म साहनी अपने संपूर्ण लेखन में चाहे वह कहानी हो या उपन्यास या नाटक-सीधे जनता खासकर आम जनजीवन से जुड़े रहे हैं. इसी कारण उन्होंने हिंदी को कुछ बहुत अच्छी कहानियां दीं. वे उन थोड़े से लेखकों में से हैं, जो अच्छी कहानियां लिखते हैं और लोगों को निराश नहीं करते. चलताऊ ढंग से उन्होंने कुछ नहीं लिखा है. बहुत साफ शब्दों में मैं एक बात कहना चाहूंगा. मैं उनको जितना अच्छा कहानीकार समझता हूं, उतना अच्छा उपन्यासकार नहीं. अब जैसे 'तमस' उनका बहुचर्चित उपन्यास है. लेकिन मुझे लगता है कि यह उपन्यास एक तरह से, हिंदू-मुस्लिम समस्या को या सांप्रदायिकता को बहुत सतही ढंग से छूता है. एक ऐसी समस्या को, जिसके लिए इतिहास में जाने की जरूरत थी, उन्होंने केवल अंग्रेजों के मत्थे ठोक दिया है. लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी में इस विषय को, सांप्रदायिकता और विभाजन को लेकर जूझनेवाले थोड़े से लेखकों में भीष्म साहनी हैं—खासकर यशपाल के बाद. उन्होंने हिंदी को 'तमस' और 'अमृतसर आ गया है' जैसा कथा साहित्य दिया. मेरा ख्याल है हिंदी में भीष्म साहनी और कृष्णा सोबती जैसे कथाकार हैं, जिन्होंने यशपाल के अतिरिक्त इस समस्या को देखने की कोशिश की. वैसे यह आश्चर्य की बात है कि हिंदी के अधिकांश लेखकों ने सांप्रदायिक वैमनस्य जैसी समस्या को छुआ नहीं है अथवा छूते-छूते रह गये हैं. शायद वजह यह भी है कि हिंदी के अधिकांश लेखकों ने, जो खासकर हिंदी भाषी प्रदेशों से आते हैं—इस खून-खराबे को उस हद तक नहीं देखा है जितना पंजाब, दिल्ली या पाकिस्तान के लेखकों ने देखा है. भीष्म जी ने, मंटो ने, सीधे उससे रूबरू होकर लिखा, इसलिए, 'अमृतसर आ गया है,' 'टोबा टेकसिंह' जैसी कहानी वे दे पाये.

एक लेखक का सबसे बड़ा दायित्व यही होता है कि बहुत सारे छुपे हुए जो पात्र हैं, जो समाज में देखे-अनदेखे रह जाते हैं, हम जानते हैं उनको, लेकिन अनदेखा कर दिया जाता है, लेखक उन्हें ढूंढ निकालता है. रेणु ने ऐसा किया. 'हीरामन' जैसे चरित्र को सहज ही नहीं भुलाया जा सकता है. भीष्म साहनी ने भी ऐसा ही किया. भीष्म जी के बारे में मैं जब भी सोचता हूं, खासकर उनके पात्रों के बारे में, तो मुझे उस मां की बहुत याद आती है, जो टूटे हुए फर्नीचर की तरह छुपायी जाती है. उसका नाम महत्वपूर्ण नहीं है, लेखक की वह दृष्टि महत्वपूर्ण है, जो ऐसे पात्रों को समाज में ढूंढती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाकार भीष्म साहनी

□ राजकुमार सैनी

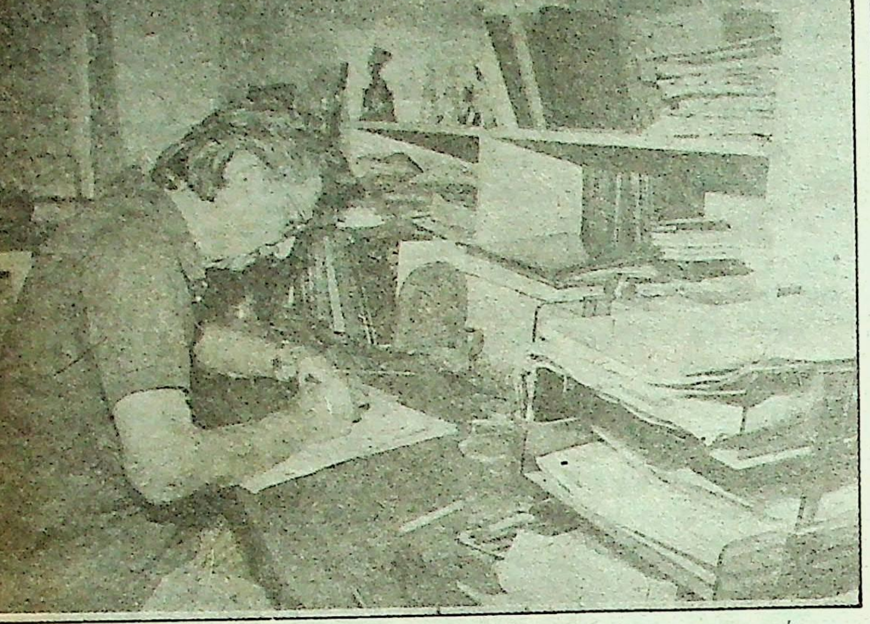

सन् १९४७ के बाद के प्रमुख कथाकारों में भीष्म साहनी का नाम अब आदर के साथ लिया जाता है. गैर-सांप्रदायिक (सेक्यूलर) चेतना के वे एक प्रतिनिधिक और प्रगतिशील रचनाकार हैं. हिंदी में पंजाबी अंचल के स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, अज्ञेय और भीष्म साहनी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. इनमें यशपाल के बाद भीष्म साहनी उक्त अंचल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकार एवं कहानीरकार हैं. रावलपिंडी के मुस्लिम बहुल क्षेत्र में लालित-पोषित युवा रचनाकार भीष्म साहनी का प्रारंभ और विकास आर्यसमाजी वातावरण में हुआ. इसी दौरान युवा भीष्म को हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों के जीवन-यापन का घनिष्ठ परिचय मिला और इस मिली-जुली संस्कृति को निकट से आत्मसात करने तथा परखने का अवसर मिला. इस मिश्रित माहौल ने उनकी जीवनदृष्टि को सकारात्मक और सक्रियात्मक ढंग से प्रभावित किया. इसी का सुपरिणाम हुआ कि भीष्म साहनी एक सेक्युलर और प्रगतिशील दृष्टिसंपन्न युवा कथाकार के रूप में साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए. सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय वे कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता थे. मार्च १९४७ के सांप्रदायिक दंगों के विरुद्ध उन्होंने रावलपिंडी की राज्य कांग्रेस समिति में शिरकत की. उस समय वहां जो राहत-समिति बनी, उसके वे सदस्य थे. इस समय के अनुभवों और प्रेक्षणों को संजोकर उन्होंने 'तमस' उपन्यास रचा. 'तमस' उपन्यास में रावलपिंडी और उसके आसपास की कई घटनाएं सूक्ष्य या दृश्य रूप में प्रस्तुत हुई हैं. जो सन् १९४२ से १९४७ के बीच वहां घट रही थीं. एक तरह से ऐसी घटनाएं उस समय पूरे पंजाब में घट रही थीं और उन्होंने देश के इतिहास को अपने ढंग से प्रभावित-कुप्रभावित किया था. 'तमस' उपन्यास में ऐसी घटनाओं और तत्संबंधी संदर्भों को रचनात्मक स्तर पर चरितार्थ किया गया है. इसीलिए वह उस समय का एक प्रामाणिक और रचनात्मक दस्तावेज बन गया है.

सन १९४७ में ही श्री भीष्म साहनी 'इप्टा' से जुड़ गये और उनका वामपंथी झुकाव स्पष्ट से स्पष्टतर होता गया. 'इप्टा' में उन्होंने अपने बड़े भाई बलराज साहनी के मार्ग निर्देशन में एक अभिनेता के रूप में कार्य किया. श्री बलराज साहनी अपने समय के एक अत्यंत लोकप्रिय और प्रमुख अभिनेता थे. इसके अतिरिक्त वे स्वयं एक महत्वपूर्ण लेखक थे. भीष्म साहनी के कलात्मक व्यक्तित्व के विकास में बलराज साहनी का विशेष योगदान रहा. उस समय बलराज साहनी ने एक लोकप्रिय नाटक का निर्देशन किया. भीष्म साहनी की सुरुचि संपन्न और कलात्मक दृष्टि संपन्न पत्नी श्रीमती शीला साहनी और कैफी आज़मी की पत्नी श्रीमती शौकत आजमी ने इस नाटक में एक साथ अभिनय किया. नाटक का नाम 'भूतगाड़ी' था.

सन १९५० में भीष्म साहनी दिल्ली आकर बस गये और उन्होंने दिल्ली कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया. १९५७ से १९६३ तक वे मास्को में रहे और वहां ढेर सारा अनुवाद कार्य किया. १६ वर्ष की आयु में कथा-लेखन आरंभ किया. पहली कहानी 'नीली आंखें' प्रकाशित हुई. यह कहानी 'हंस' पत्रिका में छपी थी, जिसका संपादन उन दिनों कुशल कथाकार, संपादक और समालोचक अमृत राय कर रहे थे.

भीष्म साहनी के कथाकार व्यक्तित्व का जो सिलसिला उस समय शुरू हुआ, वह आज तक चल रहा है. आज भी वे थके नहीं हैं. अभी हाल ही में प्रकाशित उनका 'मय्यादास की माड़ी' शीर्षक उपन्यास हमारे समय का एक महत्वपूर्ण हिंदी उपन्यास है. इस उपन्यास में उन्होंने पंजाबी प्रांतर में ढहते हुए सामंतवाद की जर्जर इमारत को, उसकी एक-एक ईंट को उलट-पलटकर दिखाया है और यह साबित कर दिया है कि वे (यशपाल के बाद) हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद की विरासत के दूसरे प्रामाणिक दावेदार हैं. 'मय्यादास की माड़ी' में 'गोदान' जैसी संश्लिष्टता, सहजता, कला धैर्य व श्रमशीलता, रचनात्मक प्रौढ़ता और संजीदगी का अद्‌भुत संयोग है.

बलराज साहनी ने 'सारिका' के ही अगस्त १९६५ अंक में अपने छोटे भाई की कला के बारे में लिखा था—''साधारण लोगों की छोटी-छोटी बातें वह खुद अपनी आंखों से देखता है. उन लोगों की सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है. पात्रों को कल्पना में नहीं, जीवन में खोजता और चुनता है.''

इनके 'तमस' और 'बसंती' उपन्यासों के बारे में भी यह कथन युक्तियुक्त बैठता है हालांकि यह कथन काफी पहले ही कह दिया गया था. 'तमस' और 'बसंती' के अधिकांश पात्र आंखों देखे हैं. पात्र ही नहीं अधिकांश घटनाएं भी आंखों देखी हैं. 'तमस' में रावलपिंडी और 'बसंती' में दिल्ली का परिवेश और प्रतिवेश बोलता है. बसंती पटेल नगर दिल्ली के एक ओर उग आयी झोंपड़ बस्ती की नारी है. ये बस्तियां बार-बार उजड़ती हैं और बार-बार बसती हैं. श्याम कश्यप के शब्दों में—''दिल्ली को फैलने, विकसित होने और उसके समानांतर इन मेहनतकशों के बार-बार बसकर उजड़ने की त्रासदी के विरोधाभास के माध्यम से भीष्म साहनी ने हमारे देश में पूंजीवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विस्तार और विकास की निर्मम कहानी कह दी है.'' 'मय्यादास की माड़ी' के अधिकांश चरित्र कल्पना की उपज हैं. कल्पना की उपज होते हुए भी वे वास्तविक जीवन जैसे प्रत्यक्ष और विश्वसनीय हैं. इसका कारण शायद यह है कि लेखक का मानस इतना प्रौढ़ और परिपक्व हो चुका है कि उसकी कल्पनाशीलता वायवी और रहस्यपरक नहीं है. यह यथार्थ की तरह ठोस और प्रत्यक्ष है. तथापि इस उपन्यास का एक पात्र 'कल्ला' आंखों—देखा पात्र है और यही पात्र, उपन्यास में चित्रित जीवन की आयरनी को सर्वाधिक मार्मिकता के साथ उभारता चलता है. इस उपन्यास में भीष्म साहनी की कथा-कला का स्थापत्य उल्लेखनीय है. बड़ी मेहनत के साथ वे नींव खोदते हैं, फिर एक-एक ईंट चुनते हैं. दीवारें खड़ी करते हैं. चारदीवारी तैयार हो जाती है. फिर उसके भीतर एक मजबूत इमारत उभरती नजर आती है.

सामंतवाद की ढहती हुई इमारत की एक-एक ईंट को परखते हुए, उसके सारे मलबे का सर्जनात्मक इस्तेमाल करते हुए वे अपने उपन्यास की इमारत निर्मित करते हैं. डा. रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' में निराला के काव्य में स्थापत्य कला का उल्लेख किया है. भीष्मजी के इस उपन्यास में भी स्थापत्य कला देखने योग्य है.

उक्त तीन उपन्यासों के अतिरिक्त भीष्मजी ने और भी उपन्यास लिखे हैं. सभी उपन्यासों की काल क्रमानुसार सूची इस प्रकार है:—

१. 'झरोखे' (१९६७), २. 'कड़ियां' (१९७१) ३. 'तमस' (१९७४), ४. 'बसंती' (१९८०) और ५. 'मय्यादास की माड़ी' (१९८८).

इसके अतिरिक्त वे एक चर्चित नाटककार भी हैं. नाटकों की सूची इस प्रकार है:—

१. 'हानूश' (१९७७), २. 'कबिरा खड़ा बजार में' (१९८१) और ३. 'माधवी'. संयोग ही है कि तीनों नाटक अपनी कथावस्तु के लिए इतिहास, अतीत और मिथक के मुखापेक्षी रहे हैं. 'हानूश' में वे लगभग ५०० वर्ष पहले प्राग नगर में हानूश नाम के एक ताला मिस्त्री की संघर्ष गाथा रचते हैं. 'कबिरा खड़ा बजार में' युवा कबीर की कथा है जो सच्चाई और ईमानदारी की भाषा बोलने के जुर्म में कमर पर कोड़े खाता है. 'माधवी' मध्ययुगीन नारी के साथ होने वाले अन्याय और उसके शोषण का कच्चा चिट्ठा है. तीनों नाटकों की अंतर्वस्तु में एक संघर्षधर्मी जिजीविषा स्पंदित होती है जिसका स्मरण भी आज के मानव और मानवी को प्रेरणा व स्फूर्ति प्रदान करता है.

भीष्मजी ने अपने बड़े भाई बलराज साहनी की जीवनी भी लिखी है. यह जीवनी अंग्रेजी में है तथा' बलराज माई ब्रदर' (१९८१) के नाम से प्रकाशित है.

भीष्म साहनी एक कुशल अनुवादक भी हैं. इन्होंने सोवियत साहित्य की लगभग २५ कृतियों के अनुवाद किये हैं, जिनमें तालस्ताय के 'रिसरक्शन' का अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है और सर्वोत्कृष्ट बन पड़ा है. इसके अतिरिक्त इन्होंने यशपाल, अमरकांत, कमलेश्वर और रमाकांत तथा पंजाबी के कथाकार नवतेजसिंह और गुरुदयाल सिंह की पंजाबी कहानियों का भी अंग्रेजी में अनुवाद किया है. तथापि प्रमुख रूप से वे एक प्रौढ़ उपन्यासकार और कहानीकार ही हैं. उपन्यासकार के रूप में उनकी चर्चा की जा चुकी है.

भीष्मजी की कहानियों में 'वाङ चू', 'नया मकान', 'लीला नंदलाल की', 'चीफ की दावत', और 'अमृतसर आ गया है' जैसी कुछ कहानियां मुझे विशेष रूप से पसंद हैं.

> ''भीष्मजी की तरह रचनाकार होना बहुत कठिन है. वर्षों तक चुपचाप और लगातार परिश्रम करते रहने से ही उनका ऐसा प्रखर रचना व्यक्तित्व उभरकर आया है. चींटी की तरह वे मेहनती और संग्रही हैं.''
>
> —अमरकांत

'नया मकान' शीर्षक कहानी में एक मध्यवर्गीय युवक की मानसिकता का व्यंग्यात्मक चित्रण है जो वर्गापसरण की प्रक्रिया से गुजरने का दावा करता रहता है, किंतु व्यवहार और आचरण में कुलीनों की नकल करता है. नवधनाढ्य मानसिकता से ग्रस्त है और आर्थिक महत्वकांक्षा की सीढ़ियां चढ़ रहा है.

'चीफ की दावत' कहानी में मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं के सटीक चित्रण के माध्यम से मौजूदा व्यवस्था द्वारा पालित मूल्यधर्मिता के पाखंड को हम खंड-खंड होते हुए देखते हैं. कहानी का प्रमुख पात्र अपने चीफ बास को दावत पर बुलाता है. इस दावत के अवसर पर सीधी-सादी बूढ़ी मां एक गैर जरूरी सामान की तरह निरर्थक हो जाती है, लेकिन, चीफ को उसी बुढ़िया के हाथ की बनायी हुई फुलकारी ही पसंद आती है. विडंबना की पराकाष्ठा यह है कि जिस मां को चीफ की नजर से परे रखने की भरसक कोशिश की जाती है, उसी के हाथ की बनाई चीज चीफ को अच्छी लगती है. कहानी का अंत व्यंग्य को करुणा के बीज भाव से आच्छादित कर लेता है. वह व्यंग्य सार्थक होता है जो करुणा को उद्घाटित कर सके. हरिशंकर परसाई की व्यंग्य-कथा 'मन्नु भैया की बारात' का अंत भी ऐसे ही करुणा तक व्यंग्य की सृष्टि करता है. 'चीफ की दावत' कहानी के अंत में मां बेटे से कहती है—''मुझे हरिद्वार भेज दो.'' वह समझ गयी है कि बेटे के घर में अब वह फालतू और अनावश्यक हो गयी है.

'अमृतसर आ गया है' कहानी 'कथन' और 'कथ्य' का एक पारदर्शी क्रिस्टल है. 'वस्तु' और 'रूप' की ट्रांसपरेंसी है. स्मृति विधान की शैली में वाचक बीते हुए कालखंड को याद कर रहा है, एक संजीदा अहसास के साथ. पूरी कहानी में व्यंग्य और करुणा का पारस्परिक टकराव है. अतीत (या व्यतीत) के घटाटोप में वर्तमानता बिजली की तरह बार-बार कौंध उठती है. कहानी की बुढ़िया प्रतीकात्मक है, बड़बड़ाते हुए आदर्शवाद और बुदबुदाते हुए मानवतावाद की नियति और परिणति को नमूदार करती हुई वह एक जीर्ण-शीर्ण प्रतिमा है. 'तमस' उपन्यास की ही तरह यह कहानी सांप्रदायिकता के अंधेरे में चीत्कार की तरह सुनाई देती है.

'वाङ चू' कहानी का नायक न चीनी है न भारतीय है. वह एक मनुष्य है. राजनीति ने इसी मनुष्य को संदेहास्पद बना दिया है. साहित्य का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह मनुष्य की असली पहचान बनाए रखे. यह कहानी इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है और इसीलिए एक सार्थक रचना है.

अंत में हिंदी के श्रेष्ठ कहानीकार अमरकांत की एक टिप्पणी का अंश उद्धृत करते हुए इस आलेख का समापन करना चाहता हूं—

''भीष्मजी की तरह रचनाकार होना बहुत कठिन है. वर्षों तक चुपचाप और लगातार परिश्रम करते रहने से ही उनका ऐसा प्रखर रचना व्यक्तित्व उभरकर आया है. चींटी की तरह वे मेहनती और संग्रही हैं...''

भीष्मजी का व्यक्तित्व और कृतित्व बार-बार भुला दी जानेवाली बात को फिर याद करा देता है कि अपनी सहज साहित्य-साधना और निरंतर परिश्रम से एक संघर्षधर्मी और समाजनिष्ठ लेखक कलात्मक उत्कर्ष के ऊंचे से ऊंचे शिखर पर पहुंच जाता है जबकि अपनी जन्मजात प्रतिभा का ढिंढोरा पीटनेवाले तथा कलात्मक आतंक बरपा करनेवाले आत्ममुग्ध लेखक रेत के टीलों तक ही पहुंचते हैं और वहीं लोट-पोट हो रहते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संधिकाल का मानवीय दस्तावेज

मय्यादास की माड़ी

विगत दशक में जिन दो उपन्यासों के साथ उपन्यास पुनः चर्चा के केंद्र में आया उनमें से एक था भीष्म साहनी का 'तमस' और दूसरा जगदंबाप्रसाद दीक्षित का **मुर्दाघर**. **तमस** इस अर्थ में उपन्यास लेखन की नयी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता था कि उसका कोई नायक न था. यहां इतिहास के एक विशिष्ट काल खंड में विभिन्न सामाजिक शक्तियों की टकराहटों के बीच सारे पात्र अपनी-अपनी भूमिकाओं के स्वयं नायक थे. तमस की सफलता-कथा का तो अब कहना ही क्या है. थोड़ी-बहुत यही विशेषता मुर्दाघर की भी थी. किंतु किसी ऐतिहासिकता के अभाव में, जो उपन्यास को महाकाव्यात्मक ऊंचाई देता है, वह एक थोड़े समय की उत्तेजना बनकर रह गया.

भीष्मजी की यही कला दृष्टि उनके नवीनतम उपन्यास **मय्यादास की माड़ी** में है जिसमें तमस के लगभग सौ साल पहले का कालखंड चित्रित है, और अधिक प्रौढ़ता और निखार पर है. तमस में विभाजन के तत्काल पहले, १९४६ का जलता हुआ पंजाब है, उसके सौ साल पहले भी पंजाब की भूमि पर एक आग लगी थी. उस समय महाराजा रणजीतसिंह के लगभग ४० वर्ष के शांतिपूर्ण शासन के बाद, जो मल्का विक्टोरिया के कंपनी शासन में भारत के पूर्ण विलय का अंतिम कांटा था, सिख अमलदारी के अंग्रेजी अमलदारी में संक्रमण का द्वंद्व चल रहा था. **मय्यादास की माड़ी** इसी संक्रमण के द्वंद्व की कथा है, जिसमें भीष्मजी के ही शब्दों में प्रश्न किसी के देश भक्त या देशद्रोही होने का नहीं बल्कि अपने-अपने हित के अनुसार समय को पहचानकर आचरण करने का था (पृष्ठ १३३) जो समस्त द्वंद्व का आधार है. किंतु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होते हुए भी **मय्यादास की माड़ी** वैसा तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है जो अंततः इतिहास पुरुषों की वीरगाथा बनकर रह जाते हैं. यह १९वीं शताब्दी में बरतानी शासन व्यवस्था के मजबूत होने के साथ केवल पंजाब ही नहीं संपूर्ण भारतीय सामाजिक विकास (वस्तुतः पतन) का एक मानवीय दस्तावेज है, और वह भी इतनी खूबसूरती के साथ कि जो इन बारीकियों से अनभिज्ञ हैं वे भी इस उपन्यास के कथा-रस में डूब-डूब जायेंगे. इसके अनेक हास्यजनक स्थलों पर हंसेंगे, क्षोभजनक स्थलों पर कुपित होंगे, दुखद स्थलों पर अवसाद से घिर जायेंगे, और अंततः अपने अतीत जन-जीवन के बारे में कुछ नया जानेंगे. व्लादिमीर नावोकोव ने लिखा है—बड़ा उपन्यासकार जादूगर और शिक्षक दोनों होता है. भीष्मजी इस उपन्यास के साथ इसी रूप में प्रतिष्ठित होते हैं.

कथा के केंद्र में है दीवान मय्यादास की माड़ी (किलानुमा महल) जो टीले के पार काबुली दरवाजे के आगे फैले कस्बे पर जैसे शासन करती है हालांकि खालसा शासन का वैधानिक प्रतिनिधि शीशमहल में रहनेवाला अमीरचंद है लेकिन दीवान मय्यादास लाहौर दरबार का ऊंचा ओहदेदार और काबुल में राजदूत रह चुका है. फिर भी वह कथा का नायक नहीं, उस पुरानी व्यवस्था का अस्तगामी प्रतिनिधि है जिसका सूरज भारतीय आकाश में डूब रहा है नयी अमलदारी के कायदे-कानूनों के आगे कुछ दिनों वह दृढ़ता से खड़ा रहता है पर अंततः इतना टूट जाता है कि नयी-नयी शुरू हुई रेलवे के गार्ड को ही अंग्रेज हाकिम समझकर उसे झुक-झुककर सलाम बजाने लगता है. यह समय को न समझकर पुराने आदर्शों से चिपके रहनेवालों की दयनीयता है? समय को समझता है उसके छोटे भाई की जारज संतान दीवान धनपत जो कथा को ले चलनेवाला एक प्रतिनायक (अथवा मनोरंजक खलनायक) है. वह पीला अंगरखा और केसरिया पगड़ी पहने मरियल टट्टू पर चलता है. (एक तरह का डान क्विक्जोट), अंग्रेजों की फौज को ऊंटों की सप्लाई करता है जिनकी दुमें काटकर वह एक की जगह दो के हिसाब से पैसे वसूलता है और जब तीन लड़ाइयों में खालसा राज्य को, मुख्यतः जनरलों की गद्दारी के कारण, हराकर अंग्रेज हाकिम की अमलदारी शुरू होती है तो अपनी सेवाओं के बदले तीन गांवों की सनद पाकर अपनी कुटिलता से मय्यादास की माड़ी पर भी काबिज हो जाता है. जहां से कभी उसका सामान तक फेंकवा दिया गया था. अब वह अंगरखे केसरिया पगड़ी और मोतियों की माला के ऊपर अंग्रेज भक्ति के प्रमाणस्वरूप नेकटाई लगाकर अपना दरबार लगाता है और लगान न देनेवाली रैयत को कोड़ों से पिटवाता है. अंग्रेजी अमलदारी का एक और परिणाम उस व्यापारी वर्ग का विकास है जो भारतीय पूंजीवाद का आदि रूप है. उसका प्रतिनिधि मलिक मंसाराम है जो विदेशी सामानों के व्यापार से अमीर बन राजा अमीरचंद के शीशमहल की नीलामी में दीवान धनपत के दबदबे को धूल चटा देता है. इस क्षति की पूर्ति दीवान धनपत की बेटी से अपने मंझले बेटे को ब्याहकर दहेज में शीशमहल प्राप्त कर तथा बारात की बेइज्जती के बहाने अपने पगले बड़े बेटे से मलिकों की एक और बेटी ब्याहे बिना दुल्हन को विदा न कराने की जिद करता है. और अंततः नाटकीय परिस्थितियोंवश एक गरीब विधवा की पुत्री रुक्मिनी को ब्याह कर लौट जाता है. उपन्यास इसी नाटकीय घटना से प्रारंभ होता है परंतु यह सारी कुटिलता नाकाम हो जाती है जब अंततः अपने ही पापों के प्रतीक के रूप में अपनी ही बदबू न सह पाने के कारण लकवाग्रस्त हो प्राण त्याग देता है, और बागडोर लंदन से लौटे उसके सबसे छोटे बैरिस्टर बेटे हकीकतराय के हाथ में आ जाती है. जो बाप की तरह अंग्रेज परस्त है लेकिन तब तक कोठी की धूल झड़ने लगी है और उसकी सबसे ऊंची बुर्जी पर उल्लू बैठकर भावी पतन का अशुभ संकेत देने लगते हैं.

लेकिन जीवन की द्वंद्वात्मकता एकांकी नहीं होती. जहां हम सिख अमलदारी की जगह अंग्रेजी अमलदारी के साथ रेलवे, जमींदारी व्यवस्था, विदेशी माल और फैशन तथा विकृति लानेवाले मनोरंजनों आदि के आयात के जरिये जीवन के रूपांतरण का साक्षात करते हैं वहीं बीज रूप में आगामी बदलाव की दूसरी शक्तियां-कूका विद्रोह, आर्यसमाज के शिक्षा प्रसार आदि के संकेत पाते हैं जो जड़ता की शक्तियों से टकराती दिखायी देती हैं और अंततः दीवान हकीकतराय की नींद हराम करती हुई आजादी की शक्तियां दस्तक देने लगती हैं.

यहां एक बात की ओर संकेत करना अप्रासंगिक न होगा. १-९वीं सदी के भारत के संक्रमणकाल पर बंगला और तमिल उपन्यासकारों ने भी बहुत कुछ लिखा है. अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक स्थितियों के कारण बंगाल और दक्षिण के जनमानस ने थोड़े समय तक कंपनी राज का स्वागत किया था. संभवतः इसी कारण विमल मित्रऔर प्रमथनाथ बिशी अपने उपन्यासों (**बेगम मेरी विश्वास**, **लाल किला**) में बंगाल की नवाबी मसनद और बहादुरशाह जफर के शासन के मुकाबले अंग्रेजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज व्यवस्था का पक्ष लेते दिखाई देते हैं. तमिल उपन्यासकार शांडिल्यन का राजा की भेरी तो अंग्रेजी राज के संस्थापक क्लाईव की महानता और पराक्रम की गुणगाथा है. यह एक भावुक और आत्मपरक दृष्टि है. भीष्मजी की दृष्टि एक संतुलित वैज्ञानिक चिंतन से संपन्न है. वह अत्यंत रोचक ढंग से हमें बताती है कि अंग्रेजी शासन व्यवस्था ने भारत के संसाधनों की कैसी लूट की, उनके थोड़े समय के ही शासन में यहां कितने अकाल पड़े और पुरानी सामंती व्यवस्था की जगह जहां खेती की भूमि पूरे गांव की होती थी और लगान भी राजा उपज के अनुसार लेता था, वहां अंग्रेजों द्वारा स्थापित जमींदारी व्यवस्था ने किस प्रकार ग्रामीण पंचायती समाज को निजी खेतिहरी की शोषणकारी व्यवस्था में बदलकर उसे रैयत और जमींदार के रूप में बांट दिया. यहां भीष्मजी उस रूढ़ मार्क्सवादी दृष्टि का भी विरोध करते हैं जो भारतीय सामंती समाज को विरोध के भूदास प्रथावले सामंतवाद के समकक्ष मानती रही है.

लेकिन **मय्यादास की माड़ी** एक सामाजिक दस्तावेज ही नहीं, यह नाटकीय उतार-चढ़ावों के साथ अनेक चरित्रों के घात-प्रतिघात की एक मानवीय कथा है. तमस में श्वेत-श्याम रंग की प्रधानता है तो यहां संभवत: अंग्रेजों के आगमन से पहले भारत की समृद्धि के प्रतीक स्वरूप नीले, पीले, हरे अंगरखों, मणिमालाओं, रेशमी पगड़ियों, मुश्की घोड़ों के साथ आकाश और प्रकृति के रंगों की छटा आदि से अंत तक छायी रहती है. यदि अमृतलाल नागर के पास लोक भाषा को पकड़ पाने के संवेदनशील कान हैं तो भीष्मजी के पास एक कौशलपूर्ण कैमरा आंख भी है जो हर स्थिति, चेहरे, मनोभाव और व्यवहार को काव्यात्मक सटीकता के साथ फोकस में ला देती है, चाहे वह युद्ध का वर्णन हो या हलवाई के लड़के का 'जांघिये पर हाथ पोंछते हुए' भागना हो. दुनिया के बड़े उपन्यासों की तरह यहां भी हम इतिहास चक्र के साथ करवट लेते समय को बीतता और आगे बढ़ता महसूस करते हैं.

मय्यादास की माड़ी हमें मुग्ध ही नहीं करता बल्कि हिंदी के उपन्यास साहित्य को प्रौढ़ता और समृद्धि प्रदान करता है.

रमाकात

• मय्यादास की माड़ी (उपन्यास), भीष्म साहनी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पृष्ठ : २७३ मूल्य : ७५ रुपये.

'पाली' : अनवरत कथायात्रा का नव्यतम प्रमाण

आज जबकि स्वतंत्रता के बाद उभरी पीढ़ी में अधिकांश कथाकारों का अनुभव-संसार चुक गया है और उनका लेखन मंद-सा पड़ा है, भीष्म साहनी लगातार रचनात्मक हैं

संग्रह की पहली कहानी 'पाली' विभाजन की त्रासदी को, उनकी पूर्ववर्ती कहानियों 'अमृत-सर आ गया है', 'जहूरबक्श' या 'सरदारनी' की जमीन पर होते हुए भी उनसे पूरी तरह अलग रूप में घटित होती है. अबोध और मासूम पाली का, परिस्थितियों के कालचक्र में हिंदू से मुसलमान बनाया जाना, फिर हिंदू बनाया जाना, पर मुस्लिम संस्कार का खत्म न होना कई प्रश्न खड़े करती है. पाली के दोनों तरफ हिंदू और मुस्लिम पंडित-मुल्ला हैं, जो अपने धर्म और मजहब में उसे बांधने की कोशिश करते हैं और दूसरी तरफ उसकी हिंदू-मुस्लिम माएं हैं-ममता से छलछलाता हृदय लिए, जो उसे सिर्फ बेटे की तरह ही स्वीकारती हैं. दरअसल, भीष्मजी धर्म या मजहब के पंजे से मुक्त मनुष्य की कल्पना करते हैं, ठीक वैसी ही जैसी कबीर ने कभी की थी. आज मजहबों में घिरा मनुष्य कितना दारुण और विवश और त्रस्त है, इसकी गहरी पीड़ा हमारे भीतर वे उतारते हैं. संग्रह की दूसरी कहानी 'झुटपुटा' १९८४ में घटित सिख विरोधी दंगों की भीतरी परतों को हटाती है. दंगाई एक सिख की दुकान में आग इसलिए नहीं लगाते क्योंकि मकान हिंदू का है. एक ड्राइक्लीनर की दुकान में भी आग नहीं लगायी ''क्योंकि उसमें एक हिंदू और एक सिख-दोनों भाईवाल हैं.'' पीछे मोती नगर में ड्राइक्लीनर की एक दुकान किसी सिख सरदार की है. उसे जलाने गये तो किसी ने पुकार कर कहा—''ओ कमबख्तों दुकान सिख की है, पर उसमें कपड़े तो ज्यादा हिंदुओं के हैं.'' इस पर उसे छोड़ दिया. दूध लेनेवालों की कतार में प्राय: हर आदमी अपने पड़ोसी सिखों के भी दूध के बरतन ले आया है और अंत में एक सरदार ड्राइवर अपनी जान को जोखिम में डालकर ट्रक से दूध ले आता है. इन तमाम दृश्यों को देखकर भीष्मजी को लगता है. ''जैसे हम लोग इतिहास के झुटपुटे में जी रहे हैं. आपसी रिश्तों के इतिहास का पन्ना पलटा जा रहा है, दूसरा खुल रहा है. अगले पन्ने पर जाने हमारे लिए क्या लिखा होगा?''

दंगे, लूट-पाट, नृशंसता के बीच भी किस तरह मनुष्यता जीवित है और वही हमारे समाज को सांस्कृतिक एकता में बांधे है— भीष्मजी इसका जीवंत और मार्मिक चित्र अपनी कहानियों के द्वारा रखते हैं.

'नौसिखुआ' एक ऐसे सिख युवक की कहानी है जो आतंकवादियों में नया-नया शामिल हुआ है. उसे जब एक दुकानदार को मारने का आदेश दिया जाता है तो वह उस दुकानदार पर गोली नहीं चला पाता. कारण, दुकानदार की कलाई पर उसके जैसा ही गुरु का कड़ा चमचमा रहा था. वह स्वयं मार दिया जाता है, इस तरह यह कहानी यह तथ्य सामने रखती है कि आतंकवादियों ने सिर्फ सिख धर्म को इस्तेमाल के लिए कवच की तरह पहन रखा है. वास्तविक रूप में वे सिख धर्म के भी वैसे ही विरोधी हैं जैसे मनुष्यता के और अंततः देश के.

'आवाजें' कहानी पाकिस्तान से विस्थापित ऐसे मनुष्यों की जीवंत गाथा है, जो दिल्ली की एक कालोनी में बसाये जाते हैं और वर्तमान समय में अपनी आगामी पीढ़ी के द्वारा भी जिन्हें उपेक्षित कर ठुकरा दिया जाता है. वे अपने अतीत और वर्तमान में एक साथ विस्थापन की पीड़ा झेलते हैं.

झूमर' इस संग्रह की सबसे लंबी और मार्मिक कहानी है. कहानी के नायक अर्जुनदास के माध्यम से भीष्मजी स्वतंत्रता के संघर्ष के उच्चादर्शों को जीते, त्याग, बलिदान और देश प्रेम के भावाकुल अंतस को लिए एक ऐसे पात्र को हमारे सामने रखते हैं, जो आजादी के बाद पतनशील मूल्यों के बीच आर्थिक अभाव और मानसिक यंत्रणा में जीता है. भीष्मजी इन कहानियों में मनुष्य को उसके अतीत के साथ, वर्तमान की जटिल और भयावह परिस्थितियों के बीच, एक साथ उजागर करते हैं.

संग्रह की 'प्रादुर्भाव', 'सेमिनार', 'खुशबू', और 'चोरी' शीर्षक कहानियां अपने समय के व्यावसायीकरण के बीच बहुत कुछ तलाशती हैं और एक तीखा व्यंग्य लिए हैं.

भीष्म साहनी के इस नये संग्रह की कहानियों में एक खास प्रकार की ताजगी है जो आज की प्रायः कहानियों में दुर्लभ होती जा रही है. □

□ भारत यायावर

• पाली : भीष्म साहनी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : ६०/

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अपनी बात' के बहाने सबकी बात

वास्तव में किसी भी लेखक की निजी उधेड़-बुन उसके रचे जा चुके तथा रचे जानेवाले साहित्य ही एक मात्र खाद-पानी होती है. उस उधेड़-बुन के चलते एक रचनाकार ताउम्र एक ऐसी 'शतरंज' खेलता है जिसमें वह अपने लिए मात ही मात चुनता जाता है. यही 'मात' उससे और-और लेखन-परफेक्शन की ओर बढ़ता लेखन कराती जाती है. मगर इस 'मात' को स्वीकार करना हर किसी के वश का रोग नहीं होता. छद्म महानता को त्यागकर, किसी 'मात' को ओढ़ और स्वीकार कर लेना किसी लगभग 'संत' की ही महानता हो सकती है और इस संतई को जो अर्जित कर लेता है वह अपनी आयु के वरिष्ठ पड़ाव पर भी सक्रिय रहता है. इस संतई-अवधारणा को यदि हम अपने समय के महत्वपूर्ण रचनाकर्मी भीष्म साहनी के संदर्भ में तौलें तो बात यकायक पारदर्शी हो उठती है. इस साहित्यिक के विषय में इस आयाम से सोचने का सुअवसर जुटाती है उसकी नयी किताब—'अपनी बात', जिसमें उनके कुछ स्मरण, आलोचनात्मक टिप्पणियां आदि सत्ताइस निबंध सकलित हैं.

इन सभी टिप्पणियों को एक साथ पढ़ते हुए जहां एक ओर किसी बड़े साहित्यकार के नेपथ्य की झांकियों से पाठक का साक्षात्कार होता है, वहीं दूसरी ओर पिछले लगभग चार दशकों का राजनीतिक, सामाजिक; सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिदृश्य भी जीवंत हो उठता है. बंटवारे के समय की खूंरेजी तो बहुत से शब्दकारों ने देखी-भोगी है—कुछ लेखकों ने उस पर बेहद जीवंत रचनाएं भी रची हैं, मगर 'तमस' अकेले भीष्म साहनी ही ने लिखा है. इसी तरह से 'अमृतसर आ गया है' कहानी हो या 'चीफ की दावत'...भीष्म साहनी ने ये रचनाएं देकर मानों इन कथ्यों को निरस्त्र कर डाला है. यह कितनी बड़ी उपलब्धि है कि इतिहास के एक बर्बर दौर को किसी सहित्यिक रचना में कैद कर लिया जाये और फिर भी वह साहित्यकार खुद को साहित्य का 'जमाई' घोषित न करे.

यद्यपि सुविधा के लिए इन निबंधों में से कुछ को हम आत्मपरक, कुछ को निबंधात्मक, अलोचनात्मक या संस्मरणात्मक कह सकते हैं. इनके लेखन का उत्स भी विभिन्न आमंत्रणों—आयोजनों में ही निहित रहा दीखता है; तो भी इनमें एक सूत्रता के पदचाप हमें साफ-साफ सुनाई पड़ते हैं. यह एक सूत्रता किसी लेखक-जैसी 'ठहरी दृष्टि' के सूचक नहीं बल्कि भीष्म साहनी जैसे आस्थावान साहित्यकार के विश्वास का ही शब्दांकन है जो किसी रचना से उच्चतम मानवीय मूल्यों की कलापूर्ण स्थापनाओं की अपेक्षा करता है. जिस ऋजुता, धैर्यशीलता, पारदर्शिता तथा संवेदनशीलता के साथ से वे अपनी कथाओं, उपन्यासों या नाटकों को पालते-पोसते-प्रस्तुत करते हैं, वही तमाम गुण उनके इस निबंध विधा में देखने को मिलते हैं तथा ये निबंध उपदेश न देकर, चुपचाप पाठक के दिलोदिमाग पर असर डालते हैं; और इस तरह वे इस विधा में लालित्य भी जोड़ देते हैं. भीष्म साहनी ने इन निबंधों में अपने दुख-दर्दों, अभावों, असफलताओं को फैशन-परेड की अनिवार्य नियति से बहुत साफगोई के साथ बचाया है तथा कभी शेक्सपियर के बहाने, तो कभी कबीर या प्रेमचंद के साहित्य की सार्थक चर्चाएं करते हुए उन्होंने अनेकानेक पनप रहे साहित्यिक प्रपंचों-षड्यंत्रों को भी उघाड़ा है.

इन लगभग सभी निबंधों में किसी बड़े लेखक की वह 'पहली दुनिया' दिखाई पड़ती है जो उसके विचारों को कण-कण सुस्पष्ट बनाती है. एक भीष्म साहनी जैसे सफल लेखक की 'मैं, अपनी नजर में' निबंध में वर्णित 'असफलता' पाठक को निराश नहीं करती बल्कि उसकी नितांत व्यक्तिगत छटपटाहट को जान लेने का संतोष प्रदान करती है.

जीवनोन्मुख कहानी की मांग ही संभवतः भीष्म साहनी के कथाकार की बड़ी सफलता है जिसे उनके न केवल आत्मपरक वक्तव्यों में पाया जा सकता है बल्कि प्रेमचंद, परसाई और यहां तक कि 'तमस' की शूटिंग के दौरान लिखे जानेवाले डायरीनुमा रिपोर्ताज में भी थामा जा सकता है. व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई पर लिखे गये दोनों आलेखों में भीष्म साहनी की वही विश्लेषक-विशेषज्ञ की दृष्टि स्थापित होती है जो संभवतः वे किसी कहानी को लिखने के पूर्व भी अवश्यतः इस्तेमाल में लाते होंगे. इतनी सहजता से व्यंग्य को समझकर, परसाई के व्यंग्य को समझा देना तो किसी विशुद्ध आलोचक के वश का भी नहीं लगता. कई स्थलों पर तो भीष्म साहनी यदा-कदा व्यंग्य की फुलझड़ियां भी छोड़ते हैं जो पाठकों के लिए एक 'सूचना' हो सकती है. इसके अतिरिक्त जो एक बात उनके आत्मपरक लेखन में है, उसके जरिए हम जान पाते हैं कि व्यक्तिगत तौर पर भी यह रचनाकार कितना सहज तथा सरल है और इसीलिए वह बेहतर साहित्य हमें सौंप सका है.

भीष्म साहनी ने कहानी, उपन्यास और नाटक—तीनों विधाओं में लिखा है और लगभग समान गति से लिखा है. मगर 'अपनी बात' में उनके कथाकार और वह भी मात्र कुछेक कहानियों तथा केवल 'तमस' उपन्यास के बारे में ही जानने का मौका मिलता है. इस हिसाब से किताब उनके लेखन की संपूर्ण परिक्रमा नहीं करती. इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि इस तरह का इतर लेखन भीष्म साहनी का शौक या जरूरत न रही हो, और दूसरा कारण जो कि अधिक सही लगता है वह यह कि इस किताब को तैयार करते वक्त लेखक का ध्यान उधर गया ही न हो और जो उपलब्ध सामग्री हो उसके आधार पर यह किताब बना दी गयी हो. बेहतर होता यदि ऐसी किताब को तैयार करने से पहले लेखक/प्रकाशक ने यह तय किया होता कि ऐसी किताब में लेखक की मुकम्मल तस्वीर ही जानी चाहिए ताकि जिज्ञासु पाठकों या शोधकर्त्ताओं के लिए भी वह स्मृति समान महत्व प्रदान कर सके.

□ राजकुमार गौतम

● **'अपनी बात' (निबंध संकलन); लेखक : भीष्म साहनी; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, मूल्य-७५.०० रूपये**

जिंदगी की पकड़

कहानी लिखने में इसे भी तरह-तरह के लालच परेशान करते हैं. किसी महान लेखक की रचना पढ़ ले तो उसी के अंदाज में कहानी लिखना चाहता है. उसी लेखक की दृष्टि से लिखने की कोशिश भी करता है. उस वक्त उसे भी लगता है कि उसी की आंखों से दुनिया को देख रहा है और उसी के अंदाज में बात कह रहा है. लेकिन इस कोशिश में हर बार उसे चपत ही पड़ी है, थोड़ी ही देर में मन पर छाया गुबार छनने लगता है और कलम घिसटने लगती है. बात बनती नहीं. दोबारा पढ़ने पर अक्सर झाग ही झाग हाथ लगती है. अब इसने जान लिया है कि किसी दूसरे की दृष्टि से जिंदगी पकड़ में नहीं आती. □

[संदर्भ : भीष्म साहनी के एक लेख से]

प्रस्तुति : कानन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुआवजे

(**शस्त्रों की दूकान. अलमारियों में छुरे, तलवारें, संगीने, तमंचे, नेजे, आदि सजे हैं. पर्दा खुलने पर दुकानदार धूप-बत्ती हाथ में लिये पहले अपने इष्टदेव की आराधना करता है फिर हथियारों को धूप दिखाता है, उनके सामने फूल रखता है, फिर उन्हें नमस्कार कर प्रार्थना के शब्द बुदबुदा रहा है. छोटेलाल और गुमाश्ता (दलाल) अंदर दाखिल होते हैं.**)

दुकानदार : आइये, आइये, अब नींद टूटी है आपकी? हमारी कौम में यही तो कमजोरी है, प्यास लगने पर कुंआ खुदवाते हैं. फरमाइये क्या हुक्म है?

छोटेलाल : दो सौ लाठियां भिजवा दीजिये.

दुकानदार : क्या? क्या फर्माया आपने?

छोटेलाल : दो सौ लाठियां. चलिये अढ़ाई सौ कर दीजिये.

दुकानदार : क्यों, बच्चों की परेड करवाओगे? उनसे कवाइद करवाओगे?

छोटेलाल : हिफाजत और सुरक्षा के लिये.

दुकानदार : लाठियों से कौम की हिफाजत करोगे? आज के जमाने में लाठियों से रक्षा करोगे? युवक पैंतरे बदल-बदलकर लाठी घुमाएंगे और दुश्मन डरकर भाग जायेंगे? यही ना? (हंसता है) अब तो बंदूक-पिस्तौल भी पुराने पड़ गये हैं. श्रीमानजी, अब तो हथगोले और बम चलने लगे हैं. किस दुनिया में रहते हैं आप?...मैंने सुना है कि आप अखाड़े खोल रहे हैं, जहां लड़के कसरत करेंगे, कुश्ती करेंगे. डंड पेलेंगे. (हंसकर) इस तरह कौम की सेवा करोगे? दुश्मन तो गोला-बारूद इकट्ठा कर रहा है, आप लाठियां चलाओगे? वाह, बादशाहो! (अलमारी में से एक छुरा निकाल लाता है) यह छुरा देखो, पूरे नौ इंच लंबा फल है इसका. (छुरे की धार पर उंगली फेरता है) क्या चीज है! इसकी धार देखो, वजन में कितना हल्का है. एक ही वार में पेट की सभी अंतड़ियां काटकर रख देगा. अंदर घुसेड़कर एक ही मरोड़ दो तो वहीं चित्त कर देगा. देखो तो कितना हल्का है, चाहो तो जेब में रख सकते हो, नेफे में अड़ा लो, पता ही नहीं चलेगा, बोलो कितने दूं?

छोटेलाल : दाम क्या है?

दुकानदार : (व्यंग्य से) जाति की रक्षा का दाम पूछते हो?

छोटेलाल : फिर भी?

दुकानदार : यही तो हमारी कौम में कमजोरी है. ब्याह-शादी में तो लाखों बहा देंगे, पर जब कौम पर खतरा मंडराने लगे तो पैसे गिनने लगते हैं. दुश्मन ने असले हथियारों से अपने

रेखांकन : हेमज्योतिका

भीष्म साहनी के नाटक 'मुआवजे' का एक दृश्य

गोदाम भर लिये हैं, और इधर आपको दाम की चिंता खाये जा रही है.

गुमाश्ता : दुश्मन ने अपने गोदाम भर लिये हैं? आप को कैसे मालूम है?

दुकानदार : क्यों, हम बाजार में नहीं बैठे हैं क्या? बहुत-सा माल वे हम से ही ले गये हैं.

गुमाश्ता : आपसे? क्या आप दुश्मन को भी असला बेचते रहे हो?

दुकानदार : हमें तो व्यापार करना है, महाराज. जो भी आये, दाम दे जाये और माल उठा ले जाये. (छुरा पेश करते हुए) औरों से चालीस रुपया फी छुरा लिया है, आप धर्मभाई हो, आप उनतालीस दे दो.

(छोटे लाल सोचने लगता है)

बाहर यह चीज ७० में भी नहीं मिलेगी. पर आप धर्म के काम के लिये आये हो, पुण्य का काम कर रहे हो, आपको ३९ में दे देंगे.

छोटेलाल : दाम कुछ कम करो, सौ छुरे ले लेंगे.

दुकानदान : वारा नहीं खाता. (पास जाकर) आपको कौन-सा अपनी जेब से देना है महाराज, आप भी तो कौम की जेब से ही दोगे...एक और चीज मैं आपको दिखा देता हूं (अलमारी में से कमानीदार चाकू निकालता है) यह कमानीदार छुरा है. कमानी दबाओ, सात इंच का फल बाहर निकल आता है...हमारी दुकान पर से पांच सौ छुरा जा चुका है.

छोटेलाल : दुश्मनों को बेचा है?

दुकानदार : हम खुद थोड़ा बेचने जाते हैं, पर कोई दूकान पर आ जाये तो इंकार भी तो नहीं कर सकते?

छोटेलाल : वे लोग आप से और क्या कुछ ले गये हैं?

दुकानदार : और भी बहुत कुछ ले गये हैं.

गुमाश्ता : फिर भी?

दुकानदार : (हंसकर) एक ग्राहक का भेद दूसरे को नहीं देते, साहिब, दुकानदार के लिये तो ग्राहक भगवान का रूप होता है...यह छुरा ले जाओ, बड़े काम की चीज है.

छोटेलाल : एक सौ छुरा दे दो.

दुकानदार : एक सौ से क्या बनेगा? छुरा पांच सौ तो लो?

छोटेलाल : दो सौ कर दो. ज्यादा जरूरत हुई तो और मंगवा लेंगे.

दुकानदार : कब मंगवा लोगे, जब दूकानें बंद हो जायेंगी, जब सारा का सारा काम ठप्प हो जायेगा? आपने पहले ही देर कर दी है.

छोटेलाल : तीन सौ कर दो.

दुकानदार : यह वक्त पैसे गिनने का नहीं है महाराज, कौम के काम में कंजूसी नहीं करते. पैसे गिनते रहोगे तो कोई भी काम पूरा नहीं कर पाओगे...मैं चार सौ लिख रहा हूं.

छोटेलाल : (धीरे से सिर हिलाता है) लिख लो.

दुकानदार : (पास जाकर) छुरे तो मैं भेज दूंगा. पर सच पूछो तो हमारे लोग चला नहीं पायेंगे. हमारी कौम को खून से डर लगता है, हमारे हाथों आदमी मर जाये तो हम खुद रोने लगते हैं. पर हां, हमारे आदमी बंदूक-पिस्तौल चला लेंगे. बंदूक दूर से वार करती है ना, इसीलिये. यह काम ज्यादा आसान है, ज्यादा आसान भी है और ज्यादा सुथरा भी है. एक डरपोक आदमी भी बंदूक चला सकता है, पर डरपोक आदमी छुरा नहीं चला सकता. दूर से फायर करो, पता ही नहीं चलता कौन, कहां पर गिरा है.

मेरी बात मानो, कुछ पिस्तौल, तमंचे, बंदूक, हथगोले भी ले लो, एहतयात के लिए. सारा बंदोबस्त वक्त रहते कर लेना चाहिये.

छोटेलाल : (सिर हिलाता है, लगता है दुकानदार के तर्क से प्रभावित हुआ है) मैं अपने साथियों से बात करूंगा.

दुकानदान : साइंस का पूरा-पूरा फायदा उठाओ. यह साइंस का जमाना है. एक बटन दबाओ और हजार आदमी खाक हो जायें, हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी भी कुंद कुल्हाड़ी से गले काटते हैं. साइंस का इस्तेमाल करो, लाठियों-कुल्हाड़ियों के दिन बीत गये. कुछ आगे बढ़ो, श्रीमानजी.

छोटेलाल : मैं मशविरा करूंगा.

दुकानदार : करो मशविरा, पर मशविरा ही नहीं करते रहना...एक और बात भी अर्ज कर दूं...अपने युवकों के हाथ में जरूर हथियार दो, पर अब हर काम के लिये पेशेवर आदमी मिल जाते हैं. पैसे दो, और काम करवा लो. खुद जोखिम उठाने की जरूरत ही नहीं. वे लोग इस काम में खूब मंझे होते हैं, उनका हाथ भी ज्यादा साफ होता है, उनका निशाना अचूक बैठता है. बाहर ही बाहर पैसे दो और काम करवा लो. आग लगाना, लूट-पाट, ये काम आसान होते हैं, कोई भी कर लेगा, पर जान से मारने का काम, पेशेवर के हाथ में, उसी से करवाओ. (पास जाकर धीरे से) कहो तो हम इंतजाम कर दें?

छोटेलाल : (चौंक जाता है) आप? आप इंतजाम कर सकते हैं?

दुकानदार : कर देंगे.

छोटेलाल : आप किस तरह करोगे?

दुकानदार : यह हम पर छोड़ दो. भाई साहिब, अब हर काम के लिये एजेंसियां खुल गयी हैं. यह काम तो टेलीफोन पर भी हो जाता है. हमें सेवा का मौका दीजिये.

(छोटे लाल बक्से से दस-दस हजार के नोटों के पुलिंदे निकालकर दुकानदार के आगे रखता है.)

छोटेलाल : दस-दस हजार की गड्डी है, इन्हें गिन लो, अपनी तसल्ली कर लो.

दुकानदार : आपसे तो आंखें बंद कर के लेंगे, महाराज, यह तो प्रसाद है, पुण्य का पैसा है, चूमकर लेंगे.

छोटेलाल : सामान भिजवा देना.

दुकानदार : बेफिक्र रहिए, ठीक जगह पर पहुंच जायेगा...आदमियों का इंतजाम हम कर देंगे.उन्हें जो कुछ देना-करना होगा वह भी बता देंगे. सस्ते में ही हो जायेगा. एक-एक शराब की बोतल और कुछ पैसे. बहुत महंगा सौदा नहीं है, हम पर छोड़ दें.(मुस्कराता है) आप आराम से घर जाओ और टेलीविजन देखो, आजकल प्रोग्राम अच्छे आ रहे हैं. 'रामायण' का तो जवाब नहीं, वाह, हमारी सभ्यता का निचोड़ निकालकर सामने रख दिया है, वाह वाह, क्या चीज बनी है.

छोटेलाल : अच्छी बात है, तो मैं चलूंगा.

दुकानदार : ठहरो जी, आप की बात यहीं पर करवा देते हैं (घंटी बजाता है) (धीमी आवाज में) पर किसी से इस बात का जिक्र नहीं करना. आप हमारे धर्मभाई हो, आप की मदद करना हमारा फर्ज बनता है.

छोटेलाल : (चौंककर) यहां पर? नहीं, नहीं. यहां ठीक नहीं. नहीं. (झेंप जाता है)

दुकानदार : (हंसता है) बाबूजी, कब आप यह झेंप-शर्म छोड़ोगे? दुनिया में य सब काम खुल्लम-खुल्ला होने लगे हैं. झिझक-शर्म किस बात की? आप तो औरतों से भी ज्यादा शर्माने लगे हो? आप तो कौम का काम कर रहे हो, कौम के काम में झिझक-शर्म किस बात की ?

छोटेलाल : नहीं, नहीं, ऐसी बात तो नहीं है, पर फिर भी यहां पर, (गुमाश्ते से) मैं चलता हूं, गुमाश्ताजी, आप बात कर लो.

दुकानदार : यह भी ठीक है. आप खुद सामने नहीं आओ, गुमाश्ता बात कर लेगा.

(स्टेज पर अंधेरा छा जाता है. थोड़ी देर तक अंधेरा ही बना रहता है, फिर एक ओर को रोशनी का दायरा बन जाता है जिसके बीचोंबीच गुमाश्ता और जग्गा खड़े हैं. जग्गा पेशेवर गुंडा है. गले में रंगदार रूमाली, ऊंचा लंबा पहलवानी आकार, फनियर मूंछें...)

जग्गा : पच्चास रुपये फी आदमी लूंगा. इससे एक पैसा कम नहीं होगा, लूट-पाट अपनी.

गुमाश्ता : यह कौम का काम है.

जग्गा : कौम का हो या निजी हो, इसमें भी आदमी मारना, उसमें भी आदमी मारना. ठेके पर करवाना चाहो तो ठेके पर करवा लो, दिहाड़ी के हिसाब से करवाना चाहो तो इस तरह करवा लो. जैसा तुम्हें वारा खाता हो.

गुमाश्ता : मैंने कहा है ना, यह कौम का काम है.

जग्गा : मुझसे पूछो तो कौम का काम ज्यादा मुश्किल होता है. पूछो क्यों? इसमें दूसरी कौम के आदमी को ढूंढना पड़ता है, खोजना पड़ता है. हम तो हर कौम के आदमी को मारते हैं, हमारे लिये सब बराबर हैं. जो सामने आ जाये. चुनचुनकर मारना ज्यादा मुश्किल होता है.

गुमाश्ता : अगर आदमी मरे नहीं, सिर्फ जख्मी हो जाये, तो कितने पैसे लोगे?

जग्गा : तो भी पच्चास रुपये.

गुमाश्ता : क्यों?

जग्गा : पच्चास रुपये फी केस, मरे या न मरे. हमने तो उसे मारने का जोखिम उठाया, आगे उसकी किस्मत.

गुमाश्ता : पच्चास रुपये ज्यादा है.

जग्गा : ज्यादा हैं? तुम्हें कौन से अमीरजादे और लखपति मरवाने हैं. यही, मोची-नाई-मजदूर मरवाओगे. अगर यह मंजूर नहीं तो दिहाड़ी के हिसाब से मरवा लो.

गुमाश्ता : दिहाड़ी का क्या हिसाब होगा?

जग्गा : दिहाड़ी के हिसाब से, अढ़ाई सौ रुपये रोज.

गुमाश्ता : दिहाड़ी के हिसाब से करें तो क्या मालूम दिन में एक भी आदमी नहीं मर पाये, दिन भर तुम कहीं बैठे सुलफा पीते रहो.

जग्गा : हराम की कमाई हम नहीं खाते, बाबू, जुबान देंगे तो काम पूरा करेंगे...तुम ठेके पर करवा लो. सिट्टियां गिनकर पैसे दे देना.

गुमाश्ता : कत्ल कैसे करोगे?

जग्गा : क्यों? बढ़िया विलायती छुरे से मारेंगे. घुमावदार फलवाला छुरा. एक ही मरोड़ दो और अतड़ियां बाहर.

गुमाश्ता : तुम छुरा अंदर ही रहने देते हो या बाहर निकाल लेते हो?

जग्गा : छुरे को अंदर कैसे छोड़ देंगे, बाबू, इस तरह तो हर आदमी के लिये नया छुरा खरीदना पड़ेगा. आदमी पांच रुपये का और छुरा पच्चास रुपये का.

गुमाश्ता : यह कौम का काम है, और तुम अपनी कौम के आदमी हो, वरना मुझे तो दूसरे भी मिल सकते हैं.

जग्गा : उनसे करवा लो...और उस्तादजी, हमें दूसरी कौम की तरफ से भी बुलावा मिल चुका है. पर मैंने कहा नहीं, पहले अपनी कौम की खिदमत करेंगे. हां, अगर आप के साथ सौदा पक्का नहीं हुआ, तो हमें तो आदमी ही कत्ल करने हैं, कहीं और कर लेंगे.

गुमाश्ता : तुम्हें चोखा काम मिलेगा. शायद आग लगाने का काम भी मिल जाये.

जग्गा : आग लगाने का काम हम नहीं करेंगे. हम से आदमी मरवा लो, एक. दो, दस, जितने कहोगे पार लगा देंगे, पर आग लगाने का काम कुत्ता काम है, यह हम नहीं करते.

गुमाश्ता : इसमे लूट-पाट भी तो शामिल होगी. वह सब तेरी.

> यही तो हमारी कौम में कमजोरी है, ब्याह-शादी में तो लाखों बहा देंगे, पर जब कौम पर खतरा मंडराने लगे तो पैसे गिनने लगते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जग्गा : न. यह हाथ काले करनेवाला काम है, तुम कहोगे झुग्गी-झोपड़ी को आग लगा दो, वहां हमें क्या मिलेगा? मिट्टी के मांडे? किसी माड़ी को आग लगाओ, वहां से तो कुछ माल हाथ लगेगा, पर माड़ी के बाहर तो दस-दस चौकीदार होते हैं, लोहे के दरवाजे और सींखचे और झबरैले कुत्ते...पर नहीं, आग लगानेवाला काम ही गंदा काम है.

पूछो क्यों, हाथ काले करो, किरासीन के डिब्बे उठाते घूमते फिरो, चोरों की तरह छिप-छिपकर जाओ, फिर गांडुवों की तरह वहां से भागते फिरो. यह भी कोई काम है! कत्ल का काम शाही काम है, आदमी ऊपर चलता बने, हम घर को चलते बने. मामला मिनटों में खत्म...एक बात पूछूं?

गुमाश्ता : क्या है?

जग्गा : आपने हमीदे को भी बुला भेजा था?

गुमाश्ता : कौन कहता है? उसे तो मैं जानता भी नहीं. तुम्हें इसका ख्याल ही कैसे आया?

जग्गा : एक ही बात है, उससे करवा लो या हम से करवा लो, वह मेरा भागीदार है, हमारी एक-दूसरे के साथ सांझ है.

गुमाश्ता : सांझ है!

जग्गा : उससे भी बात करोगे तो रेट एक ही होगा. यह तो व्यापार है, बाबू तेरे लाले की भाईवाली. सांझेदारी चौधरी खुदा बख्श के साथ है या नहीं? हम से पूछ. तेरे लाले ने माल की चालीस पेटियां खुदाबख्श के गोदाम में रखवायी हैं या नहीं?

गुमाश्ता : इसकी खबर तुम्हें कैसे मिल गयी?

जग्गा : हम से क्या छिपा है बाबू?

गुमाश्ता : उनका पुराना रख-रखाव है.

जग्गा : वही तो मैं भी कह रहा हूं. व्यापार व्यापार है, धर्म धर्म है, दोस्ती दोस्ती है.

गुमाश्ता : (पास आकर) इस बात का जिक्र किसी से करने की जरूरत नहीं है.

जग्गा : किस बात का?

गुमाश्ता : कि लाले ने अपनी चालीस पेटियां खुदाबख्श के गोदाम में रखवा दी हैं.

जग्गा : हमें क्या पड़ी है, तुम सौ पेटियां रखवाओ, पांच सौ रखवाओ...फिर क्या हुक्म है? आज सवेरे मैं डेरे में से निकला तो हमीदा कहने लगा, जग्गे, काम हाथ में से नहीं जाने देना, हम थोड़ा खा लेंगे.

(गुमाश्ता कुछ सोच रहा है)

फिर क्या इरादे हैं? यह फैसले तो फौरन किये जाते हैं, इतनी देर में मैं तीन बंदे पार पहुंचा चुका होता.

गुमाश्ता : तेरा वक्त आया हुआ, तू यह ले. (थैले में से शराब की बोतल निकालता है.)

जग्गा : इसका क्या करूं?

गुमाश्ता : क्यों, तू कत्ल करने के बाद शराब नहीं पीता?

जग्गा : नहीं उस्तादजी, मैं तो दूध पीता हूं, दूध पीकर सोओ तो नींद खूब जम के आती है, शराब पीकर सोओ तो आदमी बड़बड़ाता है, जब से सियासी कत्ल करने लगा हूं, शराब छोड़ दी है, मुंह में से कुछ अनाप-शनाप निकल जाये तो ख्वाह-म-ख्वाह लेने के देने पड़ जायें. मैं तो काम पर निकलता हूं तो डेरे में कहकर आता हूं कि लो भाई, दूध-जलेबियां गर्म करो मैं आ रहा हूं. एक गिलास दूध साथ में रोटी का टुकड़ा, या दूध में आध पाव जलेबी. बड़ी मीठी नींद आती है, सब कत्ल-वत्ल भूल जाता है.

> दूध पीकर सोओ तो नींद खूब जम के आती है, शराब पीकर सोओ तो आदमी बड़बड़ाता है, जब से सियासी कत्ल करने लगा हूं, शराब छोड़ दी है,

गुमाश्ता : तू तो बड़ा पारसा आदमी बन गया है.

जग्गा : नहीं, ऐसा तो नहीं, शराब का नशा भी करते हैं पर खाली वक्त में, छुट्टी के दिन (शराब की बोतल रख लेता है).

गुमाश्ता : तुम्हें पच्चास रुपये फी केस देंगे. हमें मंजूर है. काम सही होना चाहिये. साथ में एक और काम भी करना होगा.

जग्गा : वह क्या?

गुमाश्ता : काम यह है कि एक जमीन खाली करवानी है.

जग्गा : हो जायेगा. कौन-सी जमीन?

गुमाश्ता : बटन बनानेवाली फैक्टरी है ना? उसकी बगल में पुल के पार.

जग्गा : वहां तो झुग्गी-झोपड़ीवाले डेरा डाले हुए हैं.

गुमाश्ता : वही.

जग्गा : (सोचता है) यों तो बड़े काम में हाथ डालने में बरकत होती है, हमारा बाप कहा करता था. (प्रगटत:) क्या करना होगा?

गुमाश्ता : बस उसे खालीं करवाना है.

जग्गा : वह तो तुम खुद भी खाली करवा सकते हो.

गुमाश्ता : हम खाली करवा सकते तो तुम से कहते ही क्यों.

जग्गा : हो जायेगा. करवा देंगे खाली. पर रुपये पांच हजार होंगे.

गुमाश्ता : इतनी रकम?

जग्गा : बस्ती भी तो बड़ी है. पांच-सात को मारेंगे तभी बाकी लोग भागेंगे. मेरे और आदमी भी तो काम पर लगेंगे. उन्हें भी तो कुछ दूंगा...सारी रकम पेशगी होगी. कर देंगे तुम्हारा काम. पर रकम पेशगी होगी.

गुमाश्ता : पहले जमीन खाली करवाओगे, फिर उसके इर्दगिर्द कांटोंवाली तार लगवाओगे.

जग्गा : तार लगानेवाला कुत्ता काम हम नहीं करते.

गुमाश्ता : चलो, वह हमारे आदमी कर देंगे. तुम जमीन खाली करवाओगे.

जग्गा : हो जायेगी.

गुमाश्ता : एक और काम भी करना होगा.

जग्गा : बोलो.

गुमाश्ता : तुम झुग्गी-झोपड़ीवालों को फैक्टरी के अंदर धकेल दो.

जग्गा : क्यों? उन्हें क्या वहां पर बंद करोगे?

गुमाश्ता : नहीं भाई, हम उन्हें रोजगार देंगे.

जग्गा : तुम रोजगार दोगे? अभी तो तुम उन्हें अगले जहान पहुंचा रहे थे.

गुमाश्ता : तुम नहीं समझ पाओगे. तुम उन्हें फैक्टरी के अंदर धकेल दो.

जग्गा : (हंसकर) जैसे बूचड़खाने में बकरियों को धकेलते हैं?...क्यों? बाहर रहते हुए उन्हें रोजगार नहीं दिया जा सकता. बाबू, तेरा काम मश्कूक जान पड़ता है. रुपये दस हजार होंगे.

गुमाश्ता : क्यों? तू समझता है तू ही यह काम कर सकता है? हम कोई और इंतजाम कर लेंगे.

जग्गा : रुपये दस हजार होंगे. तू किसी दूसरे से क्या करवायेगा, हम अपने सभी साथियों को खबर कर देंगे. कोई तेरे नजदीक नहीं आयेगा. तू समझता क्या है? हमें जानता है या नहीं? अच्छी तरह पहचान ले. सारी रकम रख जा मेरे पास. आज शाम से पहले, रुपये दस हजार दूकान के मालिक के पास पहुंच जायें. उसके बाद अपना यह थोबड़ा मेरे सामने नहीं लाना. पैसा नहीं पहुंचा तो तेरा यह टेंटुआ दबा दूंगा. (गुस्से से) भाग जा यहां से. फूट. फैक्टरी की तरफ इनका मुंह मोड़ दो. हम मुंह मोड़नेवाले हैं क्या? हम तो मुंह तोड़नेवाले हैं...सुअर का बच्चा.

(रोशनी बुझ जाती है.) □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्म साहनी के नाटक: 'प्रयोग' की परिधि में

भीष्म साहनी हिंदी के एक ऐसे नाटककार हैं, जिनका नाटक नौ साल तक लगातार करने के बावजूद कलाकार उसे बार-बार मंचित करना चाहते हैं और दर्शक भी उसे बार-बार देखना पसंद करते हैं. उनके नाटक गांव-किसान, नगर और महानगर के मजदूर, बुद्धजीवी, अमीर और गरीब हर वर्ग के लोग समान उत्साह से देखते हैं.

वे दिल्ली की नाट्य-मंडली 'प्रयोग' के अध्यक्ष भी हैं और 'प्रयोग' ने ६०० से २०,००० दर्शकों के सामने उनके नाटक पिछले नौ साल से दिल्ली और देश के कई हिस्सों में मंचित किये हैं.

'प्रयोग' के निर्देशक और कलाकारों से भीष्मजी के संदर्भ में चर्चा हुई कि नाटकों को मंचित करते हुए उन्हें नाटककार के रूप में भीष्म साहनी और एक आदमी के रूप में भीष्म साहनी कैसे लगे? भीष्मजी के साथ काम करते हुए उनके अनुभव कैसे रहे? उनके नाटकों में क्या-क्या खूबियां हैं?

हैरान कर देता है दर्शकों का ऑबजर्वेशन : एम.के. रैना

हमारा भीष्मजी के साथ बहुत ही नजदीकी और प्यार का रिश्ता है. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक करने के दौरान उनसे काफी बातचीत और विचार-विमर्श हुआ. इस नाटक में काफी चीजें ऐसी थीं, जिन्हें रंगमंच की दृष्टि से मंच पर उतारना संभव नहीं था.

नाटक में गीत और संगीत पक्ष बहुत कम थे. या यों कहें कि उसमें संगीत की कोई गुंजाइश थी ही नहीं. इन्हीं समस्याओं को हल करने के लिए एक दिन मैंने भीष्मजी को खाने पर बुलाया और अपनी समस्या उनके सामने रखी तो उन्होंने साफ कहा कि संगीत की तो मुझे पकड़ ही नहीं है. तब मैंने सोचा कि बिना गीत और संगीत के तो कबीर को पूरी समग्रता में पेश ही नहीं किया जा सकता.

फिर मैंने एक छात्र की भांति कबीर ग्रंथावली को पढ़ना शुरू किया और उनके दोहे और पदों को इकट्ठा करके उन्हें नाटक के दृश्यों में पिरोना प्रारंभ कर दिया.

नतीजा यह हुआ कि नाटक के कई पुराने दृश्यों को निकालना पड़ा और नये-नये दृश्यों को जोड़ना पड़ा. अंत में भीष्मजी को यह सब मैंने आखिरी रिहर्सल में दिखाया और फिर नाटक का मंचन हुआ. नाटक होने के बाद दर्शकों की प्रतिक्रियाएं आने लगीं तब उन्हें मंच के अनुकुल बनायी गयी ये सारी चीजें अच्छी लगने लगीं.

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक पुस्तक के रूप में प्रकाशित है. परंतु हम लोग जो नाटक करते हैं, उसकी पांडुलिपि अलग है. यह फर्क मुख्य रूप से गीत, संगीत और भाषा को लेकर है.

हमने अपनी पांडुलिपि में पात्र के अनुकुल भाषा का प्रयोग किया है. जैसे नाटक में जो निम्न जाति के पात्र हैं, वे हमारी पांडुलिपि में अवधी बोलते हैं, जो उच्च वर्ण हैं वे तत्सम मिश्रित हिंदी बोलते हैं. भाष का जो यह स्तर है, इसे हमने अपनी पांडुलिपि में जोड़ा है. वही हम मंचों पर दिखाते हैं.

भाषाओं के इस प्रयोग से नाटक के मूल तत्व जातिवाद, सांप्रदायिक कट्टरतावाद और इसके खिलाफ कबीर का संघर्ष, उनका व्यक्तित्व और उस समय की भारत की तस्वीर बिल्कुल साफ हो गयी है.

हमने कबीर के जिन पदों को लिया है, उसे लोक संगीत और लोक धुन में ही पेश किया है. इस नाटक को कबीरपंथियों ने भी पसंद किया.

एक बार बनारस में इस नाटक का 'शो' होनेवाला था. जहां 'शो' हो रहा था, वहीं कबीर पंथियों का गढ़ था. कुछ दिन पहले एक नाटकमंडली ने वहां कबीर पर जब नाटक किया, तो उन लोगों ने नाटक के कलाकारों के साथ काफी दुर्व्यवहार किया था. खैर, सारी बातें जानने के बाद भी एक विश्वास के साथ नाटक किया. नाटक खत्म होने के बाद आठ-दस लोग आये. मैंने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा कि क्या आप मुझे मारने आये हैं?

उन लोगों ने मुस्कराते हुए कहा, "नहीं, लेकिन एक गलती आपने भी कर ही डाली और वह यह है कि कबीर ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुआ था. आप लोग यह क्यों नहीं स्वीकार कर पाते हैं कि निम्न जातियों में भी जन्म लेकर लोग संत, महात्मा और विद्वान हो सकते हैं. महापुरुष होने के लिए ब्राह्मणी के गर्भ से ही पैदा होना क्या कोई अनिवार्य शर्त है?

मैं दर्शकों के इस ऑबजर्वेशन को देखकर हैरान रह गया. वास्तव में इस बिंदु पर न मैंने और न भीष्मजी ने विचार किया था. उनकी इस बात ने मुझे भी प्रभावित किया.

'हानूश' सबसे अच्छा नाटक है : जलीस एहसन

मैंने भीष्मजी के नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' में सिकंदर लोदी, 'माधवी' में गालव और 'हानूश' में हानूश की भूमिका निभायी है. भीष्मजी ने जितने नाटक लिखे, पहले हमारे ग्रुप को पांडुलिपियां दी हैं. उनसे हम लोगों का जीवंत संपर्क रहा है.

कई बार ऐसा हुआ कि उन्होंने नाटक लिखे. नाटक के कुछ दृश्य इस तरह लिखे कि अभिनेता का मंच पर प्रवेश हो गया परंतु उस अभिनेता को मंच पर से वापस नहीं बुलाया गया.

नतीजा यह होता था कि वह अभिनेता बिना अभिनय और संवाद के मंच पर खड़ा रह जाता था. मंच की उन तकनीकों पर उनसे चर्चा होती थी और फिर स्क्रिप्ट में तब्दीली लायी जाती थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक की नाटकीयता, मंच की तकनीकी जरूरतों और बारिकियों पर निर्देशक से मदद ली जाती थी. भीष्मजी की महानता यह है कि जब वे एक बार अपने नाटक की पांडुलिपि निर्देशक को सौंप देते हैं, तो फिर वे कोई हस्तक्षेप नहीं करते.

मुझे उनका सबसे अच्छा नाटक 'हानूश' लगा. 'हानूश' की दो सबसे बड़ी विशेषताएं हैं. एक तो उसमें जबरदस्त नाटकीयता है और दूसरे उसमें ठोस ऐतिहासिक संदर्भ उभर आया है.

भीष्मजी की दृष्टि मार्क्सवादी है. उन्होंने बड़े ही खूबसूरत ढंग से सामंतवाद से पूंजीवाद के संक्रमण के क्षण को दिखाया है. किस प्रकार देश में सामंती शक्तियां पूंजीवाद पर हावी हैं, इसे बड़े ही खूबसूरत ढंग से उन्होंने लिखा है.

'माधवी' को मंच की दृष्टि से कम लोकप्रियता मिली. निर्देशक एम.के. रैना ने काफी मेहनत की. फिर भी इसे सफलता नहीं मिली. दीपा साही ने इसमें माधवी की भूमिका अदा की थी. इसमें नाटकीयता की कमी है और जिस मिथ का प्रयोग इस नाटक में किया गया है, वह प्रचलित भी नहीं है.

हालांकि भीष्मजी इन सारी बातों से वाकिफ थे. इसमें नाटकीयता लाने के लिए तीन बार प्रयास किये गये. जिस दिन पहली बार यह नाटक होना था, उस दिन तक रैना संतुष्ट नहीं थे. वैसे वे इसके प्लॉट और कहानी से काफी प्रभावित हैं.

भीष्मजी की यह एक बड़ी खूबी है कि वे पांडुलिपि देने के बाद भले ही नजर आयें, परंतु जब भी नाटक का 'शो' होता है, वे नाटक देखने जरूर आते हैं और 'शो' खत्म होने का बाद मिठाई का डिब्बा लेकर खड़े दिखाई देते हैं.

भीष्मजी के हर नाटक में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता उभर कर आयी है, और सबसे बड़ी बात यह है कि यह प्रतिबद्धता नाटक में थोपी हुई नहीं होती.

परिवेश की जबरदस्त पकड़ है : काव्य कुमार

मैंने 'कबिरा खड़ा बजार में' में बशीरा और 'माधवी' में सूत्रधार का अभिनय किया.

'बशीरा' की भूमिका को जैसा भीष्मजी ने लिखा है, वैसा ही मैंने मंच पर उतारा है. उसके संवाद, वाक्य-विन्यास और उसकी भाषा बहुत ही खूबसूरत थी.

जब भीष्मजी ने मेरी भूमिका देखी, तो उन्होंने खुश होकर कहा कि मैं ऐसा ही चाहता था. वे मेरे अभिनय से काफी प्रसन्न थे.

नाटक में बशीरा की प्लेसिंग इतनी अच्छी है कि जब मंच पर बशीरा का प्रवेश होता है, तो वह चार पीढ़ियों की कहानियां सुनाता है. इतने लंबे दृश्य को उन्होंने इतने अच्छे ढंग से लिखा है कि दर्शक बोर नहीं होते. यह 'सोलोसीन है. सोलोसीन अक्सर बोरिंग हो जाया करते हैं.

भीष्मजी का नाटक बहुत संतुलित होता है. उनके हर नाटक के दृश्य की अपनी उपयोगिता होती है. वे बड़ी सीधी-सादी भाषा में बहुत ही गूढ़ बातें कह जाते हैं.

कुछ नाटककारों के नाटक सिर्फ पढ़ने में अच्छे लगते हैं, करने में नहीं. परंतु भीष्मजी के नाटक पढ़ने और करने में एक जैसा आनंद देते हैं.

उनके नाटक सहज और स्वाभाविक होते हैं और नाटक के पात्र परम आवश्यक होते हैं. यदि माधवी में 'सूत्रधार' न हो, तो पूरा नाटक ही बिखर जाये.

भीष्मजी का सबसे बड़ा गुण यह है कि एक लेखक के रूप में वे न निर्देशक और न कलाकारों के काम में दखल नहीं देते.

उनके नाटक को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि ऐसा नाटक हमने पहले कभी नहीं पढ़ा.

उन्हें परिवेश का जबरदस्त ज्ञान है. वे पूरे परिवेश को बड़े ही खूबसूरत ढंग से कागज पर उतारते हैं.

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक को 'साहित्य कला परिषद' के छह पुरस्कार मिले हैं और मुझे सर्वश्रेष्ठ (द्वितीय) कलाकार का पुरस्कार मिला है.

काश उनकी रचना का केंद्रबिंदु 'नाटक' होता : अनीस एहसान आजमी

मैंने 'कबिरा खड़ा बजार में' में जुलाहे का अभिनय किया है. जुलाहा कबीर का शुरू से साथी है और कबीर जब संत हो जाते हैं, तो वह शिष्य हो जाता है.

भीष्मजी के साथ काम करते हुए विरोध नाम की चीज ही पैदा नहीं होती. वे संशोधन को बड़े सहज ढंग से स्वीकार कर लेते हैं.

बात को जोरदार तरीके से कहने के लिए संशोधन की जरूरत हर नाटक में होती है.

मैंने भीष्मजी, उनकी पत्नी शीलाजी, उनकी पुत्री डा. कल्पना, उनके दामाद रोमी, निर्देशक, एम.के. रैना, उनकी पत्नी डा. अंजलि रैना, वेद ढींगरा और जलीस के साथ 'कबिरा खड़ा बजार में' पढ़ा. भीष्मजी के इस नाटक के स्क्रिप्ट को एन.एस.डी. श्रीराम सेंटर के राजेंद्रनाथ, भारत-भवन, भोपाल, अनामिका, कलकत्ता ने यह कहकर लौटा दिया था कि यह नाटक मंच पर करना संभव नहीं है.

इस नाटक को पढ़ने के बाद यह प्रस्ताव किया गया कि अगर मूल पांडुलिपि को अवधी का टच दे दिया जाये, तो नाटक आकर्षक बन सकता है.

जब नाटक का पहला 'शो' हुआ, तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना काफी प्रभावित हुए. परंतु 'दिनमान' में भीष्मजी के हवाले से नाटक की समीक्षा करते हुए लिखा था कि भीष्मजी इसकी भाषा शैली से संतुष्ट नहीं हैं. जब भीष्मजी ने इस नाटक को प्रकाशित कराया, तो भूमिका में भाषा संबंधी अपना असंतोष व्यक्त भी किया.

शायद भीष्मजी को ऐसा लगा हो कि नाटक मेरा है और भाषा किसी और की.

परंतु जो लोग अवधी जानते हैं, वे इसकी भाषा-शैली की खूब प्रशंसा करते हैं. भीष्मजी ने बहुत कम नाटक लिखे हैं, यदि उन्होंने अपनी रचना का केंद्रबिंदु नाटक बनाया होता, तो विजय तेंदुलकर और बादल सरकार जैसे नाटककारों की श्रेणी में उनकी गिनती होती.

'कबिरा...' की प्रशंसा में...: अनूप बरुआ

'कबिरा खड़ा बजार में' में गांव के ग्रामीण साधु और सिपाही का अभिनय मैंने किया है. भीष्मजी के व्यक्तित्व से ही उनकी क्षमताओं का पता चलता है. वे बड़े ठंडे मिजाज के हैं, बहुत सुलझे हुए, नेक और सही इंसान हैं. उनके साथ बात करते हुए बहुत अच्छा लगता है. उनके भीतर अहम् बिलकुल नहीं है. वे राह चलते हुए भी सही ढंग से रिसपांस करते हैं. बचपन में कबीर के दोहे तो सभी पढ़ते हैं. अलग-अलग लेखक के अलग-अलग इंटरप्रिटेशन होते हैं. हिंदुस्तान के अंदर किसी नाटक कंपनी ने कबीर के ऊपर इतने 'शो' नहीं किए.

पिछले नौ साल में सौ से ऊपर 'शो' हो चुके हैं. आदमी जितनी बार यह नाटक देखता है, उतनी ही बार उसे और इस नाटक को देखने की इच्छा होती है. दर्शक बार-बार उसे देखते हैं और बार-बार उसकी प्रशंसा करते हैं.

बाहर से जब भी नाटक खेलने का निमंत्रण मिलता है 'कबिरा खड़ा बजार में' ही मंचित करने का आमंत्रण आता है. जब कि 'प्रयोग' के पास हर वक्त पांच-छह नाटक तैयार रहते हैं, जिन्हें कभी भी और कहीं भी किया जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणित

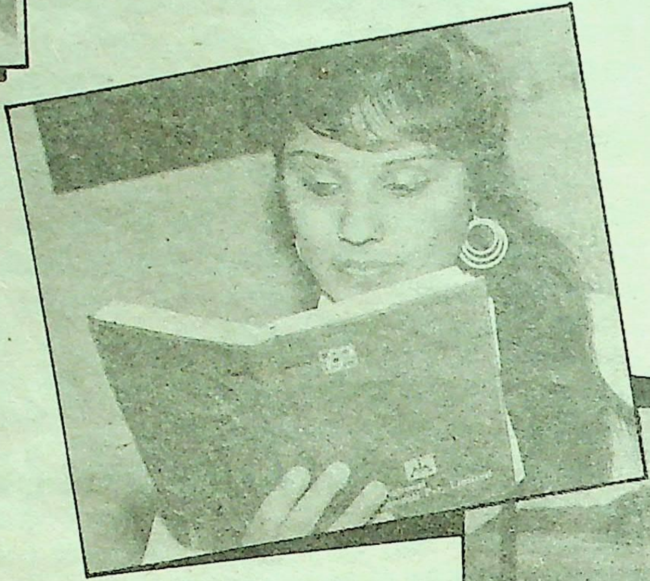

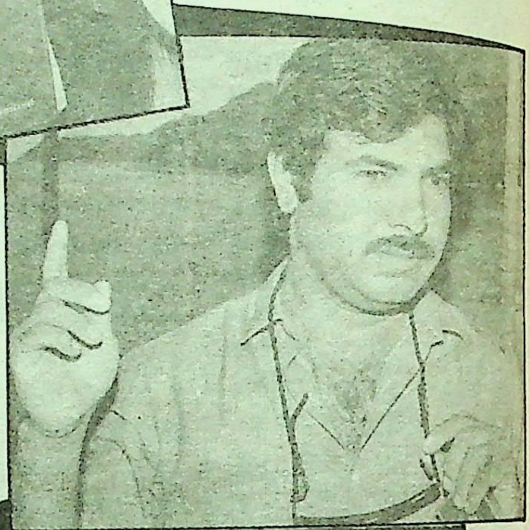

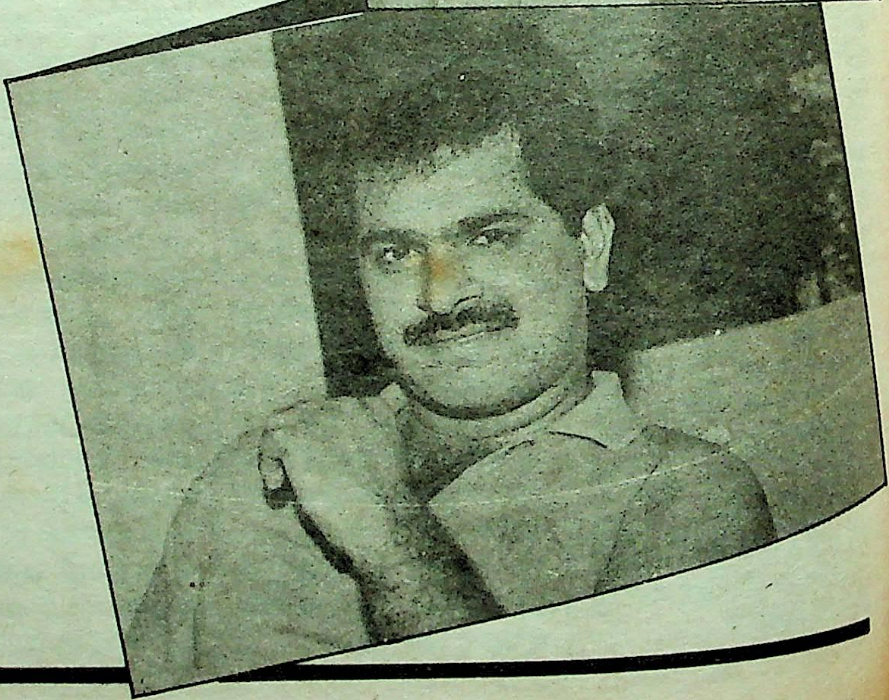

□ श्रवणकुमार

मूलतः कथाकार. पहली कहानी 1953 में प्रकाशित. तब से अब तक अस्सी से ऊपर कहानियों और तीन उपन्यासों की रचना. कहानियां छह संग्रहों में संगृहीत. दो संग्रह 'श्रवण कुमार की चुनी हुई कहानियां' के रूप में प्रकाशित. एक कहानी संग्रह अंग्रेजी में 'इकोज़ ऐंड री-इकोज़' नाम से प्रेस में. एक और कृति 'मैं : मेरी रचना' (प्रमुख कहानीकारों की रचना-प्रक्रियाओं का संपादित संकलन) भी प्रेस में.

रचनाओं में एक औसत आदमी की अवहेलना और पीड़ा मुखरित. इधर की रचनाओं में मानव नियति और मानव मन की गुत्थियों का सवाल प्रबल.

1986 में हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'श्रवणकुमार की चुनी हुई कहानियां-1' के लिए 1984-85 साहित्यिक कृति पुरस्कार.

संपर्क : एच-259,
डी.डी.ए. फ्लैट्स,
नरायणविहार
नयी दिल्ली-110028

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब भी रह-रहकर मेरे अंदर सिहरन दौड़ रही है. यह सिहरन कहां से शुरू होती है और कहां खत्म होती है, इसका मुझे कुछ पता नहीं चल रहा. शायद उस बिंदु से जहां उन्होंने अपनी उंगली के शीर्ष की दाब दी थी, या शायद...मुझे वैसे अब भी अपने होंठ बहुत गीले लग रहे हैं. जैसे उन पर कुछ चिपक रहा हो. उस समय तो मुझे लगा था जैसे कि मैं बिलकुल भीग गयी हूं. बस, जरा थोड़ा और न संभलती तो. तो...? यहीं प्रश्न-चिह्न लग जाता है.

तब मैं उनके चेहरे को अपनी हथेलियों के बीच लिये हुए थी और उनकी आंखों में एकटक देख रही थी. कितना अविचलित है यह चेहरा, मुझे लगा था, उस सबके बावजूद. तब मुझे एकाएक लगा था कि यह आदमी एक बहुत बड़ा घोखा भी हो सकता है. पर धोखा देने वाले की आंखें कुछ और ही होती हैं. ''पगले!'' मेरे मुंह से अनायास ही निकल गया था और मैंने खुद ही उस चेहरे को अपने वक्ष में भींच लिया था. हम कहां से कहां पहुंचे जा रहे हैं, मैंने अपने आप से पूछा था, और तब मैंने मन ही मन कहा था—हो जाने दो आज सब कुछ. लेकिन फिर न जाने किसने मुझे जैसे कि कालर से पकड़कर पीछे खींच लिया था और मेरे कान में फुसफुसाया था, ''यही तुम्हारा चरम बिंदु है.''

रह-रहकर वह आवाज अब भी मेरे कानों में गूंज जाती है, जैसे बेहद थके होने पर कई तरह की आवाजें कानों में सांय-सांय करती रहती हैं.

न जाने क्यों, तब मैंने उनसे पूछा था, ''आप किस मानव नियति की बात करते हैं? सच्चाई, ईमानदारी, क्या सब सापेक्ष नहीं हैं? क्या किसी की नियति यह नहीं कि वह दूसरों को पीसता रहे, और किसी की यह कि वह दूसरों से पिसता रहे?''

रात गहरी होती जा रही है और मुझे नींद नहीं आ रही. लगता है जैसे मेरे अंदर मछलियां उछल रही हों. आंखें बंद करती हूं तो वे और भी ज्यादा उछल-कूद मचाने लगती हैं. कानों में सांय-सांय की आवाजें भी और ज्यादा गहरी होने लगती हैं, जैसे तूफान में हवा सीटियां बजाती है. बचपन में सुना था कि भूत सीटियां बजाते हैं. क्या भरोसा अब भी कहीं भूत बैठे मुझे घूर रहे हों और मौका पाते ही मुझे आ दबोचें. अभी उस दिन ही तो सुन रही थी कि पड़ोस में उस लड़की के साथ रात में भूतों ने बलात्कार किया. भय के मारे वह चिल्ला भी न सकी थी. गले में एकदम जैसे किसी ने कपड़ा ठूंस दिया था. एकदम काले भूत, शरीर पर रबड़ चढ़ा हुआ. तब उन भूतों ने किसी दूसरे घर में भी वही कुछ करना चाहा था और तब किसी ने उन्हें ललकारा था, और तब पता चला था कि ये भूत नहीं...ये भूत हैं...!

उफ, कितना दिल दहलाता है यह सब सुनकर! तभी शायद उन्होंने वह उपन्यास भी लिखा था—'द घोस्ट्स'. पढ़कर एक बार तो सनसना गयी थी मैं. मैं तो, दरअसल, कभी सोच भी न सकती थी कि कोई इतने गहरे में जाकर इस बेबाकी से वार करेगा. मेरा अंदर-बाहर सब छिल गया-सा लगता था—कि कहीं रत्ती-सा भी छुआओ तो सी-सी कर उठूं. जैसे बाहर-भीतर सब कच्चे घाव हों. ''वी आर ए नेशन ऑव घोस्ट्स, लवलैस घोस्ट्स, येस, येस, वी!'' लगा था जैसे समूचा राष्ट्र एक ऐसे कगार पर पहुंच चुका है जहां से गिरकर वह चकनाचूर हो जायेगा. या जैसे बम के धमाके के साथ कहीं से ज्वाला फूटेगा और उसके अंदर से लावा बहकर अपनी ज़द में हर किसी को ले लेगा. तब काफी देर तक मुझे वे धमाके सुनाई देते रहे थे. तब सहज ही मैं उन्हें पत्र लिखने बैठ गयी थी.

मेरे...

'मेरे' के बाद मैंने कई शब्द लिखे थे और काटे थे. कुछ समझ ही नहीं पा रही थी कि क्या संबोधन करूं. उनकी और मेरी उम्र में फर्क भी तो कितना है! उन्होंने खुद ही कहा था कि मैं चालीस को छू रहा हूं. और मैं? अभी पिछले महीने ही तो अट्ठारह पार किये हैं. मेरे जन्म दिन पर, न जाने किस रौ में आकर, उन्होंने मुझे मेजर आर. कहकर पुकारा था. उनका संकेत स्पष्ट ही था—कि अब मैं अपनी जिम्मेदार खुद हूं. खुद ? नहीं, नहीं, अभी तो मुझे कई सीढ़ियां चढ़नी हैं. वैसे तो मैं एक-एक करके सब सीढ़ियां चढ़ ही जाती, लेकिन उन्होंने जैसे कि मुझे एकाएक आखिरी सीढ़ी पर ला खड़ा किया—लो, अब थोड़ा ही तुम्हारे लिए और उचकना बाकी है!

और तब?...वे सामने साये कैसे हैं? जैसे कोई नंगा नाच रहा हो. ठीक यह किसी औरत का साया है. उभार कितने स्पष्ट हैं. अब यह आदमी है. धत् ये क्या करने लगे? मेरा शरीर बुरी तरह तना जा रहा है...ये ...ये सब भूत हैं, भूत और प्रेत! बचो, बचो, इनसे.

'मेरे...' मेरे क्या? उन्होंने मुझे 'लिटल फ्रेंड' कहा था और मुझे लगा था कि हां, फ्रेंडशिप में ही हमारी 'डिलिवरेंस' है. हम दोनों मित्र हैं—मित्र. मेरे मित्र. नहीं, नहीं, आदरणीय. पर आदरणीय में वह भाव नहीं जो मेरे में है. नहीं, इस रिश्ते को अपरिभाषित ही रहने दो. जैसे मानव नियति परिभाषित नहीं हो सकती. हम कहां से आये हैं, हमें कहां जाना है? लगता है जैसे चंद्रमा

''होमो?''
उनकी आंखों में अब मैं दूसरी तरह की चमक देख रही थी. वह और-और जानना चाह रहे थे, और मेरे मुंह से एक बार जो बात निकल गयी थी, वह वापस नहीं आ सकती थी. मैं उसे वापस बुलाना चाहती भी नहीं थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पहुंचकर भी मानव कहीं अवरुद्ध हो रहा है. एक हम हैं जो अभी तक रोजी-रोटी की समस्या ही हल नहीं कर पाये हैं और एक वे हैं जो चंद्रमा पर पहुंचकर भी किसी आंतरिक छटपटाहट के शिकार हैं.

मुझे सुनकर कोई अचंभा नहीं हुआ था जब उन्होंने कहा था, "तुम तो समय से बहुत पहले ही सयानी हो गयी थी. यू हैव मेच्योर्ड रादर टू अर्ली."

"यैस," मेरे मुंह से अनायास निकल गया था, "मेरी परिस्थितियों ने मुझे समय से पहले मेच्योर कर दिया."

"कैसे?" वह एकदम उत्सुक हो उठे थे.

"आई हैव बीन ए होमो." मैं सच्चाई उनसे छिपा न सकी थी.

"होमो?" उनकी आंखों में अब मैं दूसरी तरह की चमक देख रही थी. वह और-और जानना चाह रहे थे, और मेरे मुंह से एक बार जो बात निकल गयी थी, वह वापस नहीं आ सकती थी. मैं उसे वापस बुलाना चाहती भी नहीं थी. न जाने कैसे मुझे उन पर इस कदर विश्वास हो रहा था. एक बार मुझे लगा भी कि मेरी इसी बात को लेकर मुझे ब्लैकमेल किया जा सकता है. पर अविश्वास से तो हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते. बल्कि जब मैंने उन्हें अपनी उस सहपाठिनी के बारे में बताया था जिसे एक बार दागी करके बार-बार ब्लैकमेल किया गया और अब वह इस अवस्था में है कि 'इसके' बिना रह ही नहीं सकती, तो वह काफी देर चुप रहे थे. शायद कुछ सोचते रहे थे.

लेकिन 'होमोज़' के प्रति उनकी उत्सुकता कुछ 'एकेडेमिक' भी दिखती थी. वह अब भी कुरेद-कुरेदकर प्रश्न पूछ रहे थे. उन्होंने इसके लिए दूसरा शब्द इस्तेमाल किया—लेसबियन.

"किसके साथ तुम...?"

"थी मेरी एक सहपाठिनी. इससे मेरा स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो गया. हऊ अनहैल्दी इट इज़!"

"ह्वाई अनहैल्दी?"

"बिकॉज़...बिकॉज़..." मैं ठीक से अपनी बात समझा न सकी. उनका खयाल था कि हम शायद शारीरिक रूप से भी 'समलैंगिक' थीं. तब मैंने उन्हें काफी समझाने की कोशिश की कि शरीर ही सब कुछ नहीं है, मन भी बहुत कुछ होता है. जैसे कि अब. हम शरीरिक रूप से चाहे उतने संपृक्त नहीं हैं, पर मानसिक रूप से एकदम जुड़े हुए हैं.

लेकिन तब मैंने उन्हें अमिता की बात भी कह दी थी कि—हऊ इंटेंसली आई हेट हर. आई सीक रिवेंज ऑन हर.

मेरी बात सुनकर वह कुछ चौकन्ने हो गये थे, "क्यों, क्या बिगाड़ा है उसने तुम्हारा?"

"बिगाड़ा नहीं है कि मैं वक्त से पहले ही...!"

वह समझ रहे थे कि मैं कुछ बात उनसे छिपा रही हूं. क्यों छिपा ली थी मैंने उनसे पूरी बात?

मम्मी मुझे बताती है कि जब मैं पांच बरस की थी तब एक 'महात्मा जी' मुझे प्यार से बुलाकर अपने कमरे में ले गये और मेरे सामने नंगे हो गये. वह काफी बुजुर्ग थे—लंबे-लंबे सिर के बाल और लंबी-लंबी दाढ़ी. हमारे मुहल्ले में किसी के यहां आकर ठहरे हुए थे. मैं उस समय तो वहां से ऊं-आं करके चली आयी, लेकिन बाद में गली के सब बच्चों को इकट्ठा करके वहां ले गयी. एक कौतूहल था. सबको दिखाना चाहती थी. 'महात्मा जी' ने वह रात तो किसी तरह वहां काटी, लेकिन सुबह होते ही बोरी-बिस्तर समेत वहां से गायब हो गये.

तभी मम्मी को इन महात्माओं से बड़ी चिढ़ है. मम्मी बताती हैं, अभी जब वह क्वांरी थी—यानी पाकिस्तान बनने से पहले—तो वह अपने घर की खिड़की से इन महात्माओं की काफी लीलाएं देखा करती थी. घर की खिड़की जिधर खुलती थी, उधर मंदिर था, देवी का. वहां के पुजारी के अलावा और भी कई साधु-संन्यासी वहां जमा रहते थे. एक दिन बाल काढ़ते-काढ़ते जब उसने खिड़की खोली तो देखा कि वे आपस में ही गुंथे हुए हैं. एक दिन वहां एक भक्तिन पहुंची हुई थी. पर ये भक्तिनें भी कहां-कहां नहीं पहुंचती. देखा जाये तो एक तरह से ये मठ-मंदिर चलते ही उनके सहारे हैं. धर्म के नाम पर तुम इनसे कुछ भी करवा लो. या इन ब्लैक के पैसे वालों से. पर ये ब्लैक के पैसे वाले हैं अजब. उधर जितनी निर्ममता से लोगों को लूटेंगे, उतनी ही निर्ममता से लुटा भी देंगे. इनकी मुख्य समस्या तो यही होती है कि इतना पैसा पचायें कैसे! इसीलिए जितना ब्लैक का ह्वाइट बन गया, बनां लिया और बाकी लुटा दिया. लूटो, लूटो, दिल खोल के लूटो. शायद हमारे देश की बीमारी की जड़ यह लूट का पैसा ही है. एक तरफ लोग इतने गरीब, और दूसरी तरफ रंगा-रंग महफिलें. कल ही कोई कह रहा था कि एक दिन आयेगा जब ब्लैक ह्वाइट दिखने लगेगा और ह्वाइट ब्लैक. हमारे समाजवाद की नींव इसी ब्लैक पर तो रखी गयी है. तब देश चकनाचूर नहीं होगा तो क्या होगा? कांच के मर्तबान की तरह एक दिन सब चूर-चूर होकर बिखर जायेगा...

मम्मी अजब किस्से सुनाती है. तब की बातें बताती है जब मैं अभी पेट में ही थी. मम्मी ने वैसे हमसे काफी दोस्ताना रिश्ता कायम कर रखा है. बल्कि बहुधा तो उससे कोई बात छिपाने को मन नहीं होता. उसकी एक बात मुझे बड़ी प्यारी लगती है—जब गलत काम करोगी, तभी उसको छिपाने की सोचोगी. तो अब मैं क्या कोई गलत काम कर रही हूं? तब मैं क्यों नहीं खुलकर इसके बारे में उससे बात कर पाती? एक बार कुछ की भी थी. काफी रात गये तक बातें होती रही थीं. तब मुझे लगा था कि ऐसी अंतरंगता मुझे और कहीं मिलनी सहज नहीं. तब मैंने मम्मी से कहा था—'मम्मी, बात यूं है. क्या कभी ऐसा नहीं होता कि हम चाभी-भरे खिलौनों की तरह आपस में टकरा जाते हैं और फिर एक-दूसरे से ऐसे बंध जाते हैं कि बरबस एक दूसरे के पीछे टंगे-टंगे, खिंचे-खिंचे चले जाते हैं? 'नियति' क्या यही होती है? पर नियति में कोई स्थिर मंजिल नहीं होती. मंजिल होती भी है तो वह हमेशा आगे-आगे सरकती रहती है. शायद इसी से व्यक्ति भी और-और आगे बढ़ने की सोचता है...'

पर 'इत्तफाक' भी क्या कभी-कभी नियति की कड़ियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोड़ने वाला नहीं होता? इत्तफाक देखो कि उनकी वह कहानी मैंने उस पत्रिका में पढ़ी और मुझे लगा जैसे किसी ने मुझे उघाड़कर रख दिया हो. मैं एकाएक अपने को नंगी लगने लगी थी. क्या कभी ऐसा भी होता है कि किसी के साथ तुम्हारा कोई लगाव न हो, लेकिन क्षणिक प्रभाव इतना तीखा हो कि तुम अपनी सारी सुध-बुध खो बैठो और तुम्हें वस्तु-स्थिति का तभी भान हो जब उस आवेश में से गुजर जाओ? जैसे सांप अपनी आंखों से चिड़िया को बांध लेता है, ठीक वैसी ही पकड़ उसकी आंखों में थी. मुश्किल से एक बार मेरी-उसकी आंखें मिली थीं, और मैं उसके और-और करीब होती गयी. हम लोग गाड़ी से जा रहे थे. स्लीपर कोच था. रात हुई और सब अपनी-अपनी नींद में खो गये. पापा सबसे ऊपर वाली बर्थ पर थे, मम्मी बीच वाली पर, और मैं सबसे निचली पर. वह मेरे सामने वाली बर्थ पर था. गज़ब की बेबाकी थी उस शख्स में. मैं तभी संभल पायी जब सब कुछ बीत चुका था. और उन्होंने अपनी कहानी में ठीक इसी स्थिति को पकड़ा था. यह बात मैं अभी तक किसी को बता नहीं पायी हूं. शायद किसी को बताऊंगी भी नहीं...कहानी का नाम भी क्या था— 'पहचान'. यानी उस क्षणिक आवेश से ठीक पहले की स्थिति और उस आवेश के बीत जाने के ठीक बाद की स्थिति. क्षण बीत गया तो पहचान भी खत्म...तब मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था...कैसा इत्तफाक है कि वह 'पचाहन' हमारी पहचान बन गयी. पर यह व्यक्ति वैसा व्यक्ति नहीं था. इसकी आंखों में सांप की आंखों की सी पकड़ भी नहीं थी. बल्कि पहली बार जब मैंने इन्हें देखा था तो मुझे इन पर कुछ हंसी-सी आयी थी. बात ही इन्होंने कुछ ऐसी की थी. चाहिए यह था कि मैं इनसे प्रभावित होती, उलटे यह मुझसे प्रभावित हो रहे थे.

"आई एम स्टन्नड टु फाइंड दैट वन कुड बी सो मेच्योर्ड एट योअर एज." इन्होंने एकाएक कहा था.

"ह्वाई स्टन्नड?" मैंने पूछा था.

और यही वह शब्द था जिस पर मैं मन ही मन हंसी थी. हंसी भी थी, पर इसी वाक्य ने कहीं मुझे सहज ही छू भी लिया था.

मम्मी ने मेरी बात सुनकर मेरा विरोध नहीं किया था. केवल कुछ देर खामोश रही थी, जैसे कुछ सोच रही हो. तब मुझे लगा था कि जरूर मम्मी के जीवन में ऐसा कोई क्षण आया होगा...

नहीं, मम्मी की आंखों से उस समय केवल एक बूंद आंसू टपक पड़ा था, "तुझे क्या पता, पगली, तू मेरी कितनी प्यारी बेटी है!" उसने कहा था, "मैं तेरा हर खुशी में साथ दूंगी बशर्ते कि तू कोई गलत काम न करे." और मम्मी ने तबसे ही उनका घर में हमेशा स्वागत किया है.

नहीं, स्थिति का यह समाधान नहीं.

जैसे-जैसे रात गाढ़ी होती जा रही है, वैसे-वैसे मेरी नींद गायब होती जा रही है. रात भर जगती रही तो सुबह कालेज जाना भी मुश्किल हो जायेगा. परीक्षा में अब कुछ ही महीने तो बाकी हैं. इन्हें पार कर लूं तब शायद मैं भी कुछ लिख सकूंगी. अपना पहला लिखा इन्हें दिखाया था तो बोले थे, "मुझसे अच्छा लिखती हो."

हूं. ऐसे ही मन रखा होगा.

फिर बोले, "बी योअरसेल्फ."

बात ठीक भी है. पर कोई औरत आदमी के बराबर बोल्ड हो भी कैसे सकती है? विशेषकर हमारे समाज में जहां औरत को व्यक्ति न समझकर हमेशा औरत ही समझा जाता रहा है. जरा-सा लोगों को पता चल जाये कि इस औरत का कोई संरक्षक नहीं, फिर देखो उनकी जीभ कैसे लपलपाती है! या जब कोई औरत किसी को अकेली मिल जाये, तब देखो वह कैसे उसे घेरने की फिराक में पड़ता है! और कुछ न सही, ऊल-जलूल मज़ाक ही शुरू हो जायेंगे...शायद हर समाज में ऐसा ही होता है. पर हमारे यहां के लोग तो जो छिपकर खुद करते हैं, यदि वही दूसरे को करता देख लें तो एकाएक उनके भीतर कहीं का सदाचारी उठ खड़ा होता है. अभी उस दिन ही तो मम्मी कह रही थी कि उनके मुहल्ले की लड़कियां 'मुंह अंधेरे' घर से निकल पड़ती थीं, मंदिर जाने के लिए, लेकिन पहुंचती थीं कहीं और. हां, घर लौटते समय उनके माथे पर चंदन का टीका जरूर लगा रहता था. एक लड़की ने तो...

उस दिन वह भी तो अपना अनुभव बता रहे थे. हर जगह लगता था जैसे कि कोई अपनी चमड़ी नुचवाये बिना बाहर आ ही नहीं सकता. हां, दलालों का सहारा लो तो जिस काम को करवाने में तुम्हें घंटों या महीनों लगेंगे, जहां तुम्हें हार भी माननी पड़े, वहां मिनटों-सैकिंडों में सब कुछ हो जायेगा. फिर ब्लैकमेलर अलग—ऐसा नहीं करोगे तो ऐसा हो जायेगा! और वे तुम्हें अंतिम क्षण तक नहीं बख्शेंगे. यानी अगर तुम्हारी अस्थियां भी प्रवाही जाने को हों, किसी तथाकथित पवित्र स्थल पर तो वे उन्हें भी किसी तरह हड़बोच लेंगे और फिर उनका मुंहमांगा दाम चाहेंगे और दाम न मिलने पर डरायेंगे कि वे उन्हें कहीं कूड़े में फेंक देंगे.

सच, जब वह बातें करते हैं तो किये जाते हैं, तब रुकने का नाम नहीं लेते. जैसे किसी ने उनकी नस पकड़ रखी हो कि बोले जाओ, बच्चू, खबरदार जो रुके तो. उस समय उनका स्वर कुछ ट्रैजिक भी होता है. है भी तो यह कितनी बड़ी ट्रैजिडी कि एक तरफ तो हम समाजवादी समाज की बात करें और दूसरी तरफ आदमी को कदम-कदम पर ज़लालत का सामना करना पड़े.

लेकिन क्या इस ज़लालत का मुझे भी सामना करना पड़ेगा? जब बाकी लोग इससे नहीं बच पाये, तब मैं कैसे बच सकती हूं? यह हमारे यहां के आदमी की सामूहिक नियति है. किस कदर डर जाती हूं इस सबके बारे में सोचकर! लड़कियों को तो शायद और भी ज्यादा जलालत सहनी पड़ती होगी. कहीं-कहीं नौकरी पाने की, सुना है, शर्त ही यही रखी जाती है. हंसी भी आती है और इन बातों के बारे में सोचकर और रोष भी उमड़ता है. क्या स्त्री-शरीर महज़ एक पण्य-वस्तु है?

शादी? शादी भी क्या एक सौदा नहीं है? लड़केवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस फिराक में रहते हैं कि उन्हें दुधारू गाय मिल जाये जिसे हर वक्त दुहा जा सके और लड़कीवाले इस फिराक में होते हैं कि लड़की के लिए एक मजबूत 'खूंटा' मिले. क्या कभी किसी ने 'कंपेनियनेबलनैस' की बात भी सोची है?—कि दो संगी-साथी आपस में मिलें, जो एक-दूसरे के विकास में सहायक हों. एक वे हैं जो आदमी-औरत कंधे से कंधा मिलाकर हर चोटी पर विजय प्राप्त कर लेना चाहते हैं. और एक हम हैं जो हर बात ले-देकर सैक्स पर ही खत्म करते हैं. यानी इससे आगे कुछ नहीं, फाटक बंद है और बंद रहेगा, और अब तुम लौट जाओ. शायद इसीसे हमारे यहां हर कोई अवरुद्ध-सा दिखता है. क्या करें? कहां जायें?—जैसा भाव ही प्राय: हर चेहरे पर अंकित रहता है. या, बेचारगी! जैसे कोई कह रहा हो—पिटी मी! पिटी मी! उधर उनके चेहरे हर वक्त दमकते हैं. लगता है जैसे सब कुछ पाकर भी वे कुछ और पाने की फिराक में हैं. हैरी! हां, हैरी और ग्लोरिया की बात मुझे याद आ रही है. उन्होंने ही बतायी थी. हैरी और ग्लोरिया पति-पत्नी थे. हैरी कोई चौबीस बरस का था और ग्लोरिया अट्ठाइस बरस की. ग्लोरिया की पहले दो बार शादी हो चुकी थी. यानी हैरी से शादी करने से पहले वह किसी और के साथ रह रही थी. वह हैरी का दोस्त था. हैरी कनाडा से आया था. उसके पास रहने को कोई जगह नहीं थी. न्यूयॉर्क में वैसे भी जगह मिलती कहां हैं! कहीं सातवीं-आठवीं मंजिल पर उसका वह दोस्त रह रहा था. कमरों की दीवारें बिलकुल छिली हुई. फर्श पर सीमेंट जगह-जगह से उखड़ा हुआ. खैर, हुआ यह कि ग्लोरिया में एकाएक कुछ ऐसा परिवर्तन आया कि चौथे ही दिन उसका पति घर से बाहर था और हैरी भीतर. उन्होंने हैरी का ही वाक्य दुहराया था— 'आई वॉक्ड इन, ही वॉक्ड आउट.' हंसी आ गयी थी मुझे यह वाक्य सुनकर और फिर मैं कुछ आश्चर्य में भी पड़ गयी थी. क्या वहां इंसानी रिश्ता, बस, इतना स्थायी है?...एक दिन ग्लोरिया के रूप का ज़िक्र करते हुए कहने लगे कि कसी जीन्स में से उसकी जांघें जैसे पिघलकर बाहर आने को होतीं. जितनी देर वह सामने होती, उतनी देर वह पूरी तरह दिलोदिमाग पर छायी रहती, बल्कि उसक अनुपस्थिति में भी उसका वह रूप कहीं गहरे में गुदगुदाता रहता, यानी उसका यौन आकार ही प्रमुख रहता. तो क्या हम यही मानें कि एक भारतीय के लिए सैक्स ही उसकी इयत्ता है, जबकि विकसित देशों के इन प्राणियों के लिए स्त्री-पुरुष का यह मिलन एक नयी दुनिया खोजने का साधन बनता है? हैरी कैमिस्ट्री में डाक्टर था. लेकिन जितनी उसकी कैमिस्ट्री में पैठ थी, उतनी ही साहित्य और समाज-शास्त्र में भी. दूसरे शब्दों में, आप उससे किसी भी विषय पर बात कर लें...एक तरह से संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास. और इधर हम हैं कि व्यक्तित्व को जैसे ग्रहण लगा हो. कहीं न कहीं पंगुता ज़रूर नज़र आ जायेगी. उन्होंने शायद 'लॉप-साइडिड पर्सनैलिटी' कहा था. जैसे कहीं घुन लगा हो या बेरी-बेरी के मरीज़ हों.

ग्लोरिया शायद कहीं सैक्रेटी थी. बारह सौ डालर के करीब पाती थी. हैरी कहीं दो-ढाई हज़ार पा रहा था. दोनों के लिए ग्लोरिया की कमाई काफी थी. बाकी आराम से बचा लेते थे. तभी तो अब भारत के भ्रमण पर आये हुए थे. भारत का भ्रमण कर लेने के बाद वे दूसरे देशों में भी घूमे. कभी समुद्र की लहरों पर और कभी आकाश की गहराइयों में. लेकिन कितने लोग होंगे हमारे देश में जिन्होंने अपने घर से पचास किलोमीटर का फासला भी तय किया होगा? अधिकतर तो कोल्हू के बैल की तरह अपने उसी संकुचित दायरे में चक्कर लगाते रहते हैं. वह कह रहे थे कि उन्होंने स्वयं अभी तक हवाई यात्रा नहीं की, समुद्री यात्रा की तो बात ही क्या!

पर असली सवाल तो कमाई का है. जब सरकार खुद मानती है कि हमारे यहां चालीस प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं, यानी उनकी कमाई मुश्किल से पंद्रह-बीस रुपये माहवार है, तब आप ही सोचिए, कैसा होता होगा उनका जीवन! वे लोग जिनकी झोपड़ी में कभी चिराग नहीं जलता, वे लोग जिनके लिए नमक एक नायाब चीज़ है, वे लोग जिनके पांव बीहड़ जंगलों-पहाड़ों में चलने से जानवरों के पांव की तरह खुरीले हो जाते हैं, वे लोग जिन्हें कंद-मूल न मिलने पर जानवरों के गोबर में से अनाज के दाने बीनकर अपनी भूख मिटानी पड़ती है...चालीस प्रतिशत लोगों की हालत तो ऐसी है, और बाकी चालीस प्रतिशत की हालत? शायद उनमें से भी बीस प्रतिशत की हालत कमोबेश उन्हीं खुरीले पांववाले लोगों की तरह होती होगी! बस...फर्क सिर्फ इतना होगा कि इनके झोपड़ों में कभी-कभार चिराग जल जाता होगा, नमक इनके लिए नायाब न होकर चीनी नायाब होती होगी, और ये अपने पांव को खुरीलेपन से बचाने के लिए उनमें कभी-कभार फटे टायर का चप्पल-जूता टांक लेते होंगे. अब आप ही बताइए, ऐसे में कोई क्या जोड़े और क्या खाये! मध्यम वर्ग को बदनाम तो किया जाता है, लेकिन यह मध्यम वर्ग ही है जो समाज को सौष्ठ प्रदान करता है. हां, इस वर्ग में वे लोग भी हैं जो अंतिम श्रेणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

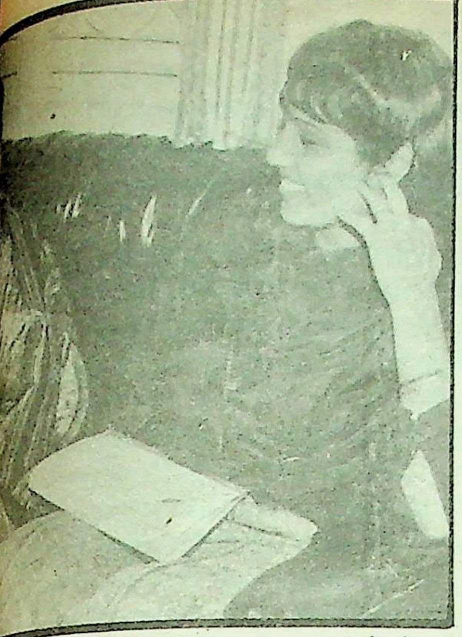

के बीस प्रतिशत में मिल जाना चाहते हैं और उनसे मिलकर एक प्रकार से देश के बाकी लोगों के खिलाफ षड्‌यंत्र रचते हैं.

वह अपने एक परिचित के बारे में कह रहे थे न? हर महीने उसे सवा सौ रुपये का मनी आर्डर आता था. वह होस्टल में रहता था. कह रहे थे, एक बार उन्होंने ऐसे ही पूछ लिया, ''तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं?''

''गिरदावर हैं, गिरदावर!'' वह बड़े फख्र से बोला था.

''गिरदावर क्या होता है?''

''गिरदावर? वही कानूनगो. यानी पहले पटवारी, फिर कानूनगो. कानूनगो के बाद नायब तहसीलदार, नायब तहसीलदार के बाद तहसीलदार, तहसीलदार के बाद एस. डी. ओ. या डिप्टी क्लैक्टर, डिप्टी क्लैक्टर के बाद क्लैक्टर, क्लैक्टर के बाद कमिश्नर, कमिश्नर के बाद चीफ सैक्रेटरी. समझे? ये हैं वे मोहरे जिनके सहारे राज्य सरकारें खड़ी हैं. ये न हों तो सरकार के गल्ले खाली पड़ जायें. राजस्व की वसूली यही लोग तो करते हैं. और भाई, पटवारी-कानूनगो ही तो इस व्यवस्था की नींव हैं.''

''कितना मिलता है एक गिरदावर को?''

''एक सौ रुपये माहवार.''

''बस?''

''क्या यह कम है? अरे, ऐसी पोस्टों के लिए तो लोग तरसते हैं. कभी-कभी तो हजारों देने पड़ते हैं इन्हें पाने के लिए. और फिर कहीं अपनी मनपसंद जगह पर पोस्टिंग हो जाये तो कहना ही क्या! सुना नहीं, पुलिस स्टेशनों और चुंगी नाकों के लिए तो बोली लगती है!''

वैसे है न यह मजे की बात—कि किसी को तनख्वाह तो सौ रुपये माहवार मिलती हो और उसमें से वह सवा सौ रुपये हर माह अपने लड़के को भेजे, तीन सौ बीवी को (वह गिरदावर के साथ कहां-कहां घूमती रहे, और फिर इतने परिवार के साथ. दस बच्चे तो होंगे ही) और बाकी जेब खर्च के लिए अपने पास रख ले और उसी जेब खर्च में से मकान खरीदने का जुगाड़ भी कर ले. यदि इस तरह का गणित तुम भी जानते हो तो तुम कुछ भी कर सकते हो. भारत खोजना तो जरूरी है नहीं, उसे तो विदेशी ही खोजेंगे. हां, तुम किसी विदेश को जरूर खोज सकते हो.

सच, उस दिन उन्होंने जाने किस रौ में आकर कह दिया था, ''चलो, हम भी अमेरिका चलेंगे.''

''क्यों, ग्लोरिया की याद सता रही है क्या?''

''ग्लोरिया की नहीं, हैरी की, सच, क्या आदमी था! बोला, पहले मेरी एक लेस्बियन से दोस्ती थी. खूब बढ़िया दोस्त थी. कई बार हम दोनों एक साथ एक ही औरत की तारीफ करते. जिस तरह मैं उसके बारे में रस ले-लेकर बातें करता, ठीक वैसे ही वह भी करती. लेकिन सबसे ज्यादा हैरत मुझे इस बात की होती कि कहने को हैरी केवल चौबीस बरस का था, लेकिन अपने आचार-व्यवहार और चिंतन से वह हमारे यहां के किसी चालीस-वर्षीय व्यक्ति से कम नहीं दिखता था. सच, बड़ी हैरानी होती है यह देखकर कि हमारे देश में सब किशोर ही किशोर हैं, वयस्क कोई नहीं. क्या हो गया है हमारी शिक्षा को? क्या हम जान-बूझकर देश से प्रौढ़ता का बहिष्कार कर देना चाहते हैं? क्या हम जान-बूझकर एक ऐसा चिंतनहीन समाज तैयार करना चाहते हैं जो अपनी उच्छृंखलताओं में खोया रहे और आदमी के विकास से जुड़े मुद्दों से दूर भागे? क्या हमारी पत्रिकाएं भी इसी उच्छृंखलता को बढ़ाने में योग नहीं दे रहीं? आपको शारीरिक मोटापा घटाने से लेकर ड्राइंग रूम की साज-सज्जा संवारने तक के बारे में तो ढेरों लेख मिल जायेंगे, लेकिन आदमी के उत्कर्ष के बारे में शायद एक टिप्पणी भी न मिले. यहां तुम अट्‌ठारह साल की लड़की से सिवाय प्रेम की ओछी बातें करने के, कोई और ढंग की बात नहीं कर सकते. तुम्हारी बात दूसरी है. लड़कों की हालत भी यही है. या ऊल-जलूल रोमानी किस्से पढ़ेंगे. या चांडाल चौकड़ी जमायेंगे. हां, नकल करने में ये लोग किसी से पीछे नहीं. इधर हिप्पीज़ की बाढ़ देखो कैसे बढ़ती जा रही है. अब इसके पीछे चिंतन कितना है और अंधानुकरण कितना, इस पर ज्यादा विचार करने की जरूरत नहीं. मुख्य बात तो यह है कि वर्जनाओं से घिरे रहने के कारण जब किसी लड़के-लड़की को आपस में मिलने का मौका मिलता है तो सबसे पहले वे एक-दूसरे के शरीर को ही चिचोड़ डालना चाहते हैं.''

सच, कभी-कभी क्या मैं नहीं चाहती कि कोई मेरे शरीर को भी चिचोड़े? उफ, इस शरीर की भी कभी-कभी कितनी तीखी मांग होती है! तब कभी-कभी यह फट पड़ने को होता है. तब ये संयम-बांध, सब टूट जाने को होते हैं. अब भी मैं कैसे तनी जा रही हूं. ओह, मैं क्या करूं? शरीर पर जरा-सा हाथ छुआने से शरीर के भीतर जैसे नन्हे-नन्हे क्षिप्रपगी जीव दौड़ने लगते हैं. एक बार मुझे अपने होंठों के दायें कोने के पास भी ऐसा ही लगा था. अजब सनसनाहट थी. मुझे लगने लगा था जैसे मेरे शरीर का यह भाग ऐसे ही सनसनाते-सनसनाते एकाएक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्क्रिय हो जायेगा. शायद लकवा ऐसे ही शुरू होता है—कि एकाएक भीतर के सब तार झनझना उठें और फिर हमेशा के लिए सुन्न पड़ जायें. पर तब तो उन्होंने अपने होंठ मेरे होंठों से छुआ भर दिये थे. आगे बढ़ने की बात ही नहीं थी. मौका भी कहां मिलता है? उस दिन मिला भी था तो मैंने ही कहा था, ''बस, यहीं तक. इससे आगे नहीं.'' और उनके हाथ वहीं रुक गये थे. पर उनकी आवाज कांप रही थी और उन्होंने कहा था, ''बट आई वांट टु हैव यू होल.''

''हूं तो सही आपके सामने समूची. नहीं?'' मैंने अपनी आंखें झपकते हुए कहा था.

''नहीं, ऐसे नहीं. आई वांट टु सी यू फुल.''

''दैन, शैल आई अनड्रेप माइसेल्फ?'' मैंने बात बनाने के लिए कह दिया था.

''ह्वाई नॉट?'' उन्होंने उसी आवेग में कहा था. पर वह आवेग उसी समय थम गया था, हालांकि मैंने भीतर ही भीतर चाहा था कि वह थमे नहीं. फिर मैंने और बात बनायी थी, ''बट माई बॉडी इज़ नॉट ब्यूटिफुल.''

''हुं.'' उन्होंने कहा था, ''आई नो, हाऊ ब्यूटिफुल इट इज़!'' उस समय वह बहुत धीमे बोल रहे थे, यहां तक कि उनके शब्द ठीक से सुनाई भी नहीं पड़ रहे थे. पर उस दिन तो मेरा शरीर वाकई 'ब्यूटिफुल' था, क्योंकि कैमिकल से मैंने अपनी टांगों के सब बाल साफ कर रखे थे. किस रौ में किये थे, पता नहीं. पर मन के कहीं गहरे में ज़रूर उन्हीं का खयाल रहा होगा, क्योंकि एक बार मैंने उन्हें कहा भी था कि मेरी टांगें सुंदर नहीं, मेरी टांगों पर बड़े घने बाल हैं. पर उस दिन कैमिकल शायद मैंने इसलिए भी लगाया था कि मैंने स्कर्ट पहना था. स्कर्ट में मैं अब भी नन्हीं-सी लगती हूं. पर टांगें मेरी काफी मजबूत हैं. शीशे के सामने दोनों पैर जोड़कर खड़ी हो जाऊं तो जांघों के बीच कहीं अंतर नहीं रहता. मेरा चलने का ढंग भी कुछ ऐसा है कि चलती हूं तो दोनों जांघें आपस में टकराती हैं. उन्हें मेरा इस तरह चलना नृत्य की मुद्रा लगा था. ''सच,'' उन्होंने कहा था, ''जब तुम सामने से आती हो तो लगता है जैसे भरत नाट्यम करने जा रही हो.''

नहीं प्रिय, यह भरत नाट्यम नहीं है, यह जीवन-नृत्य है. जीवन-नृत्य की भी अपनी एक अदा होती है. तुममें एक अनूठी लय आ जाती है. दिखने में तो ऐसे लगता है जैसे तुम बड़े उल्लास में हो, लेकिन वास्तव में तुम्हारे भीतर बैठा कोई तुम्हें हमेशा सावधान करता रहता है कि देखो, कहीं तुम्हारा कदम 'थिड़क' न जाये.

नहीं, मेरे कदम 'थिड़कते नहीं. मैं पुख्ता कदमों पर हूं. चाहूं तो सबको चुनौती दे सकती हूं, मां को, बाप को, घर को, बार को. पर किसलिए ? किसलिए? महज़ चुनौती के नाम पर चुनौती? पर कहीं न कहीं तो मुझ पर अंकुश लगा ही हुआ है. क्या मैं खुल्लम-खुल्ला उन्हें स्वीकार कर सकती हूं? मम्मी अक्सर सुनाकर कहती है कि वह बुड्ढा-खूसट बाईस साल की छोकरी ढूंढ रहा था. बुड्ढा-खूसट! क्या वह उनके बारे में भी ऐसा ही कहेगी? क्या वह बुड्ढे-खूसट दिखते हैं? यदि उन्होंने अपनी उम्र

बतायी न होती तो हम कभी सोच भी नहीं सकते थे कि वह चालीस के करीब होंगे. मुश्किल से तीस-बत्तीस. चेहरे पर कहीं एक भी तो सलवट नहीं. बाल भी मुश्किल से एक-आध ही पका होगा. पर उससे क्या? इतने तो मेरे भी पक गये हैं. कभी-कभी मम्मी सुना-सुनाकर कहती है, ''ऐसा मौका फिर नहीं आने का. कहो तो 'हां' कर दूं.'' हिश!

सच, कभी-कभी मुझे इनसे भी विरक्ति हो जाती है जब यह ढीले-ढीले से दिखते हैं, क्योंकि मेरे मन में जो इनका चित्र है, वह एक ऐसे आदमी का है जिसमें अद्भुत 'स्ट्राइकिंग फोर्स' है. यानी कभी-कभी तुम्हें लगता है कि यह आदमी एक ही झपट्टे में सबका सफाया कर सकता है. तब ऐसा आदमी तुममें कितना साहस उपजाता है! लेकिन जब वही आदमी तुम्हारे सामने हारा हुआ, टूटा हुआ-सा, बैठा हो तो तुम्हें लगता है जैसे तुम एकाएक लुट गये हो, या तुम्हें लूटनेवाला आदमी तुम्हारे सामने ही बैठा है और वह मुजरिम है, गुनहगार है, और ऐसे आदमी को तुम्हें फौरन सजा देनी चाहिए.

उस दिन तो वाकई मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रखा था. इन्होंने कहा था, ''आई फील टोटली डिमॉरलाइज्ड टुडे.''

''कैसे?'' मैंने पूछना तो चाहा, पर मुझे लगा, यह आज मेरे सामने कौन बैठा है. वह बार-बार अपना चश्मा ठीक करते थे और रूमाल से माथा पोंछते थे. एक बार तो मैंने कहना चाहा, 'यह क्या मरघटी शक्ल बना रखी है! आप पुरुष हैं. पुरुषों जैसी बात कीजिए.' पर कह नहीं पायी थी. फिर मुझे लगा था कि नहीं, इन्हें अपना दिल हल्का कर लेने दो.

वह अपना दिल हल्का करते रहे थे और मुझे बार-बार अचंभा हो रहा था कि यह शख्स इतनी 'ह्यूमिलियेशन' कैसे बरदाश्त कर पाया! क्यों नहीं इसने अपने बॉस के मुंह पर कुछ दे मारा? क्यों नहीं उससे कहा कि आप खुद ही 'इनिशियेटिव' किल करते हैं और खुद ही कहते हैं कि 'इनिशियेटिव' नहीं लेते? कागज उठाकर पटक दिये थे तो आप उसे उठाकर पटक देते. यदि आप जैसे लोग भी इस तरह दब्बू बन गये तो हो गया देश का कल्याण! तब तो देश ज़रूर डूबेगा. जब वह आपके सामने हमेशा गलत काम करता है और आपके पास उसका सबूत भी है, तो आप क्यों नहीं उसे वहीं दबोच लेते? क्या यह खुद के साथ गद्दारी नहीं है? क्या यह राष्ट्र के साथ गद्दारी नहीं है?

वह चले गये थे तो मैं काफी देर तक कुलबुलाती रही थी. क्या यही था वह शख्स जिससे मेरी पहले दिन भेंट हुई थी? लेकिन वे लोग जो दूसरों को 'डिमॉरलाइज़' करते हैं, क्या कहीं गहरे में खुद 'डिमॉरलाइज़्ड' नहीं होते?

मम्मी मुझे बताती है कि जब मैं पांच बरस की थी तब एक 'महात्माजी' मुझे प्यार से बुलाकर अपने कमरे में ले गये और मेरे सामने नंगे हो गये. वह काफी बुजुर्ग थे. लंबे-लंबे सिर के बाल और लंबी-लंबी दाढ़ी.

क्या बत्ती जला दूं? पर मम्मी जग गयी, तो....? उसे नींद बहुत कम आती है. कभी-कभी तो पांव की आहट पाते ही झट से उठ बैठती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. एक दिन कह रही थी, जिसकी जवान बेटी हो, उसे नींद आयेगी भी कैसे? मत सोओ, रतजगा किया करो. तुम भी हाथ में खड़तालें-मंजीरे ले लो और गाओ देवी की भेंटें. खूब गाते हैं ये देवी की भेंटे गाने-वाले भी. कभी-कभी तो ऐसे लगता है जैसे कोई मंजीरों की आवाज़ कानों में पीसकर डाल रहा हो. ऐसी महीन पिसती आवाज़ उठती है कि...

उस दिन ऐसे ही कोई बात छिड़ गयी थी. मम्मी भी वहीं बैठी थी. मम्मी कभी-कभी खुद ही तो बात को कहां से कहां ले जाती है. प्रश्न था—क्या ह्यूमन माइंड एक सीधी रेखा पर चलता है? क्या वह इधर-उधर की नहीं सोचता? मम्मी के सामने यह प्रश्न स्पष्ट नहीं हुआ था. फिर प्रश्न को दूसरी तरह रखना पड़ा था— क्या स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से आबद्ध हो जाने के बाद फिर और, यानी पर-पुरुष, पर-स्त्री के बारे में नहीं सोचते? क्योंकि प्राय: कई स्त्रियां कहती मिलेंगी—हमने तो कभी अपने आदमी के अलावा दूसरे आदमी को सपने में भी नहीं देखा! मम्मी भी अक्सर अपने को इन्हीं औरतों में गिनती... बहस खूब खिंचती गयी और होते-होते पौराणिक स्त्रियों तक जा पहुंची. उस युग में तो स्त्री ऋतुमति होने पर किसी भी पुरुष से रति-भिक्षा मांग सकती थी. उत्तंक का ऋतु-शांति के लिए अपनी गुरु-स्त्री के साथ गमन करना या चंद्रमा की अपनी गुरु-पत्नी तारा के साथ रति-क्रिया, ऐसे ही प्रसंग नहीं हैं? बल्कि एक युग तो वह भी था.जब एक की स्त्री को दूसरा व्यक्ति बिना झिझक सहगमन के लिए ले जा सकता था. वह कह रहे थे महाभारत के श्वेतकेतु ने ही शायद पहली बार अपनी मां के ले जाये जाने पर आपत्ति की थी. पर एक बात तो थी ही कि तब यौन स्वच्छंदता पूरी थी और कोई भी स्त्री पर-पुरुष के बारे में और पुरुष पर-स्त्री के बारे में सोच सकता था. अब भी तो हमारे यहां ऐसी अनेक जातियां हैं जहां स्त्री एक से अधिक पुरुषों के साथ गमन करती है— बस, पहली चूड़ियां तोड़ीं और दूसरे के यहां जा बैठी. पर मम्मी को यह सब भारी लगा. शायद तभी उसने यह मामला कुछ अन्य औरतों के सामने रखा था. बुड्ढी औरतें तो यह बात मानने को बिलकुल तैयार ही न थीं. यह कैसे हो सकता है कि कोई अपने आदमी के होते हुए दूसरे आदमी का मन में खयाल भी लाये? मम्मी राज की मां के उदाहरण से बड़ी संतुष्ट दिखती थी. राज की मां रोज देर तक समाधि लगाये बैठी रहती थी ताकि किसी प्रकार के 'गंदे' विचार उसके मन में न आ पायें. लेकिन एक रात सपने में उसे अपना आदमी दिख गया. उसे मरे कई साल बीत चुके थे. अब इस उम्र में अपने भी आदमी का क्या काम? इसलिए वह दिन भर अपने गालों पर थप्पड़ मारती रही—धिक्कार है मना, ऐसा विचार इस उम्र में मन में भी आये.

पर वहां जो जवान लड़कियां बैठी थीं, उसका कहना था कि मन बंधकर रह ही नहीं सकता. बल्कि एक लड़की ने तो यहां तक कह दिया था कि आजकल शायद ही कोई लड़की ऐसी हो जिसका शादी से पहले शारीरिक संबंध न हुआ हो. इत्तफाक से वहां एक लेडी डाक्टर भी

वैसे है न मजे की बात. कि किसी को तनख्वाह तो सौ रुपये हर माह मिलती हो पर उसमें से वह सवा सौ रुपये अपने लड़के को भेजे, तीन सौ बीवी को. और उसी में से मकान खरीदने का जुगाड़ भी कर ले.

बैठी थी. उसने भी इस बात की पुष्टि की. पुष्टि ही नहीं की, यहां तक कहा कि आजकल की लड़कियां इतनी बेझिझक हैं कि ताज्जुब होता है. कुछ-कुछ तो अपने शरीर के विशेष अंगों के बारे में ऐसे बात करेंगी जैसे आंख-कान के बारे में कर रही हों. मम्मी वैसे तो हारने वाली नहीं है, पर उस दिन जाने कैसे हार मान ली. पर मैं जानती हूं—मम्मी हारकर भी हारने वाली नहीं है.

गरमी उसी शिद्दत से पड़ रही है. बल्कि किसी-किसी दिन तो पारा चवालीस को पार करके पैंतालिस को छूने को होता है. कहीं-कहीं तो यह छयालीस तक भी जा पहुंचा है. चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच रही है. आसमान ने एक अजीब-सी बेरहमी अख्तियार कर ली है. दिन में उसकी तरफ देखने भर से आंखें झुलस खा जाती हैं. इधर अखबारों में लोगों की गरमी से मरने की खबरें भी आने लगी हैं. देश के कुछ हिस्सों में धरती तक चटखने लगी है. हर तरफ बादलों के लिए पुकार हो रही है. कुछ लोग यज्ञ आहुति दे रहे हैं. क्या इस साल फिर अकाल पड़ेगा?

रुचि की सुबह जब आंख खुली तो उसके माथे की नसों में बेहद तनाव था, बल्कि गरदन की नसें भी ऐंठी हुई थीं. शायद यह तमाम रात पंखे के नीचे पड़े रहने का परिणाम है, उसने सोचा. पहले वह भी घर के अन्य सदस्यों के साथ खुली छत पर सोती थी, लेकिन इधर वह कुछ समय से अपने भीतर की ओर ज्यादा से ज्यादा खिंचती चली गयी थी: उसकी मम्मी ने उसे दो-एक बार टोका भी कि यहां भट्टी में कहां पड़ी रहोगी, लेकिन उसे जैसे बाहर की दुनिया से कुछ लेना-देना ही नहीं था.

अभी मुश्किल से सात बजे थे, लेकिन सूरज की रोशनी इतनी तेज़ हो गयी थी कि आंखों को चीरती थी. वह सूरज की उस तेज़ रोशनी के बावजूद कुछ देर अपने कमरे से लगी हुई बालकनी में खड़ी रही. कुछ लोगों की नित्यक्रिया शुरू हो चुकी थी. कुछ पैदल थे, कुछ साइकलों पर आ-जा रहे थे. बीच-बीच में स्कूटर-मोटर साइकल और कारों वाले भी दिखाई दे जाते थे. उसके घर से थोड़ी ही दूर एक मंदिर खड़ा करने के लिए एक बहुत बड़ा गड्ढा भरा जा रहा था. वहां मज़दूर इतनी सुबह ही काम पर पहुंच गये थे. उसने इन मज़दूरों को पिछले दिन भी देखा था, भरी दुपहरी में. चारों तरफ पत्थर ही पत्थर, कहीं कोई साया नहीं. वे पत्थरों को तोड़-तोड़कर जहां ज़मीन को समतल कर रहे थे, वहां फालतू पत्थरों को उस गड्ढे में फेंकते जा रहे थे. आदमी की मेहनत ही तो है कि उसने मिस्र जैसे देश में ऐसे विशाल स्मारक खड़े कर दिये जिन्हें देखकर एक बार तो बुद्धि चकरा जाये. शायद तभी कुछ लोगों ने एक नया शोशा छेड़ा—कि ये स्मारक आदमी के बूते से बाहर हैं, इन्हें बनाने वाले अतिमानव थे जो किसी दूसरे ग्रह से कुछ समय के लिए यहां आते थे और फिर वापस चले जाते थे.

रुचि बालकनी में मुश्किल से पांच-सात मिनट खड़ी रही होगी कि उसे सामने से एक मोटर साइकल आती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई दी. मोटर साइकल जैसे ही नज़दीक आयी, वैसे ही वह चौंक उठी—गॉड, अरुण! इत्ती सुबह! लेकिन फिर उसे बहुत अच्छा भी लगा और उसके भीतर एक पुलक-सी भर गयी.

अरुण अब उसके घर के बिलकुल सामने था. ''हाय रुचि!'' वह दूर से ही चिल्लाया. रुचि भी उत्तर में ''हाय अरुण!'' कहना चाहती थी, लेकिन संस्कारवश चुप रही और केवल मुस्करा दी. दरअसल, जब से वह अरुण के संपर्क में आयी थी, उसने कभी अरुण को 'अरुण' कहकर नहीं पुकारा था, बल्कि अपने मन में भी जब कभी उससे बातें करती, या उसके बारे में सोचती, हमेशा सम्मानसूचक 'वह' का ही इस्तेमाल करती.

निचले तल्ले का दरवाज़ा खुला ही था. मम्मी या पापा में से शायद कोई दूध लेने चला गया था. उसने अरुण को इशारा किया कि वह सीधा चला आये, और स्वयं भी वह भीतर की ओर लपकी. बाथरूम से पापा के नहाने की आवाज़ आ रही थी. तब मम्मी ही बाहर गयी होगी, उसने सोचा.

> उस युग में तो स्त्री ऋतुमति होने पर किसी भी पुरुष से रति-भिक्षा मांग सकती थी. उत्तक का ऋतु शांति के लिए अपनी गुरु-स्त्री के साथ गमन करना या चंद्रमा की अपनी गुरु-पत्नी तारा के साथ रति-क्रिया, ऐसे ही प्रसंग नहीं हैं?

अरुण अब बिलकुल उसके सामने था. उसका मन हुआ कि वह कुलांच भरकर उसके गले से झूल जाये, लेकिन फिर यह सोचकर कि कोई आता न हो, उसने केवल उसका हाथ अपने हाथ में भर लिया और उसे भीतर लिवा ले गयी.

पापा ने बाथरूम में कोई सहगली धुन छेड़ रखी थी—वह नहाते जा रहे थें और गाते जा रहे थे. मम्मी की आहट भी अभी कहीं आस-पास सुनाई नहीं दे रही थी, इसलिए रुचि पहले अरुण को दो-एक क्षण एकटक निहारती रही और फिर सहज ही उसकी गोदी में जा बैठी.

''क्या, घर में कोई नहीं है?'' अरुण ने ऐसे ही पूछ लिया.

''है क्यों नहीं! सुन नहीं रहे पापा की आवाज़? और अभी मम्मी भी आती ही होगी.'' रुचि ने भी ऐसे ही कह दिया, लेकिन फिर उसके गाल सहलाती हुई बोली, ''पर इतने दिन कहां अंतर्धान रहे?''

''यह प्रश्न मैं भी तुमसे पूछ सकता हूं.'' अरुण के स्वर में भी उलाहना था.

''लेकिन हम तो एक बार हाज़िरी लगा गये थे.''

''कब?''

''तीन-चार दिन पहले.''

''शाम को?''

''जी, हां.''

''जाना पड़ गया था कहीं.''

''कहां?''

''एक पत्रिका के कार्यालय में.''

''यह एकाएक कैसे?''

''बस, एक मित्र मिल गया. उसी के साथ गयी थी.''

''यानी नयी दुनिया की खोज शुरू?''

''पत्रिका के संपादक ने मुझे उस दिनवाली कला प्रदर्शनी पर एक टिप्पणी लिखने को कहा है.''

''तो तुम लिख रही हो?''

''क्यों, लिखूं या नहीं?

''ऐसी बातों में राय देने वाला मैं कौन हूं.''

''यह बात. देखा, आदमी कितनी जल्दी जैलस होता है.''

''यह बात जैलसी की नहीं, तुम्हारे फ्यूचर की है. यह ठीक नहीं होगा कि पहले तुम अपनी परीक्षा से निपट जाओ?''

''परीक्षा भी साथ-साथ निपटती रहेगी. इस संपादक ने मुझे दूसरी कला प्रदर्शनियों पर भी लिखने को कहा है.''

''मम्मी-पापा से बात की?''

''की थी. उन्हें तो उसके नाम से ही चिढ़ है. मम्मी कहती थी, जो आदमी मौसम बदलने के साथ बीवी बदले, उसका क्या भरोसा?''

''तुम्हारी मम्मी गलत नहीं कह रही. मैं भी इस संपादक को जानता हूं. नित-नयी लड़कियां फंसाना उसका शगल है. वह एक काउंटर वर्ल्ड खड़ा करना चाहता है.''

''काउंटर वर्ल्ड क्या?''

''तुमसे उसने इसके बारे में बात नहीं की?''

''नहीं. हां, यह ज़रूर कह रहा था कि उसे अभी तक किसी भी लड़की ने समझने की कोशिश नहीं की है और उसे ख्वाहमख्वाह बदनाम किया जाता है.''

बाहर एकाएक चप्पलें घिसटने की-सी आवाज़ हुई. ''मम्मी आ गयी है.'' रुचि एकाएक अपने को मुक्त करते हुए अलग सोफे पर जा बैठी.

रुचि की मम्मी किचन की तरफ न बढ़कर संभवतया रुचि को देखने सीधी भीतर चली आयी थी. लेकिन वहां रुचि के साथ अरुण को पाकर एकदम विस्मित हो उठी थी, और फिर तुरंत प्रकृतिस्थ हो अरुण को संबोधित करते हुए कह उठी थी, ''आप आज इतनी सुबह-सुबह?''

''रुचि को देखे बहुत दिन हो गये थे. मैंने सोचा, इसे

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हुए दफ्तर निकल जाऊंगा.'' अरुण ने बिना बात उलझाये साफ-साफ कह दिया.

''बहुत अच्छा किया आपने.'' रुचि की मम्मी अब पूर्णतः सहज थी, ''इधर यह भी आपकी रट लगाये रहती थी. बात-बात में आपका ज़िक्र होता था.''

अब तक रुचि के पापा भी बाथरूम से निकल आये थे और किसी मेहमान के आने का एहसास पाकर वहीं चले आये थे. ''कहिए जनाब, कहां रहे इतने दिन?'' उन्होंने अरुण से हाथ मिलाते हुए पूछा, ''हमने सोचा, शायद आपको एकाएक कहीं बाहर जाना पड़ गया.''

''नहीं, मैं यहीं था, इसी शहर में. पर कुछ घरेलू ज़िम्मेदारियों ने आ दबोचा था.'' अरुण के पास उत्तर पहले ही तैयार था.

रुचि 'एक्सक्यूज़ मी' कहकर थोड़ी देर के लिए बाहर चली गयी. उसकी मम्मी भी, 'अभी चाय बनाकर ला रही हूं.' कहकर उठ खड़ी हुई. उसके पापा अब लगभग तैयार ही थे, इसलिए वह अपने बाल संवार कर वहीं अरुण के पास बैठ गये.

''क्यों साहब, क्या तय किया इसकी शादी के बारे में?'' अरुण यों ही पूछ बैठा.

''तय क्या करना है. पहले पढ़ ले, फिर देखेंगे!'' रुचि के पापा जैसे बात को टालना चाहते थे.

रुचि की मम्मी का जैसे किचन में मन नहीं लगा. वह शायद चाय चढ़ाकर फिर वापस वहीं आ बैठी.

''आप इसे समझाइए,'' वह बिना किसी भूमिका के बोली. ''उस लफंगे के चक्कर में पड़ रही हो. अब उसकी पत्रिका के लिए आर्ट एक्ज़ीबिशंस कवर किया करेगी.''

''पर वहां तक इसे पहुंचाया किसने? मुझे कुछ-कुछ ताज्जुब हो रहा था, हालांकि मैं समझता था कि रुचि जैसी लड़की के लिए कहीं भी पहुंच पाना मामूली बात है.''

''था इसका एक क्लास-फैलो. पता नहीं कहां से आ टपका एक दिन मुंह अंधेरे ही. अब घर आये को कोई कहे भी क्या.'' रुचि की मम्मी का बयान जारी था. पर बयान का आखिरी वाक्य न जाने क्यों अरुण को चुभ गया. वह जैसे कसकसा-सा उठा.

''अच्छा, मैं चलता हूं.'' वह एकदम उठ खड़ा हुआ, और उनके मना करते-करते भी अपनी मोटर साइकल तक जा पहुंचा. रुचि को जैसे इस स्थिति का पूर्वाभास था. वह लगभग दौड़ती-सी आयी और अरुण को बाजू से खींचते हुए वापस कमरे में ले गयी. फिर अपनी मम्मी को संबोधित करती हुई बोली, ''मम्मी, मैंने कहा था न, यह बहुत सेंसिटिव हैं. पता नहीं किस बात का कब बुरा मान जायें.''

अरुण जैसे अब अपने किये पर शर्मिंदा हो रहा था. वह चुपचाप आंखें नीची किये वहां बैठा रहा. रुचि की मम्मी वापस किचन में चली गयी थी और उसके पापा भी 'तैयार' होने के बहाने दूसरे कमरे में चले गये थे.

''ए, यह सुबह-सुबह क्या कर डाला.'' रुचि अपनी आंखों में उलाहना भरकर, लेकिन साथ-साथ मुस्कराते

हुए उससे अब मुखातिब थी. ''तभी तुम लोगों से झट भिड़ पड़ते हो.'' और वह आज पहली बार 'आप' से 'तुम' पर उतर आयी थी. ''अच्छा सुनो, तुमने उस दिन वादा किया था कि मुझे अपने कालेज के दिनों की डायरी पढ़ने को दोगे, वादा याद है!''

''वादा याद ही नहीं, उसे पूरा भी किया है,'' और अरुण ने अपना ब्रीफकेस खोलकर रुचि के हाथ में एक बड़ा-सा लिफाफा थमा दिया, ''मेहरबानी करके इसे इधर-उधर नहीं करना'', और उसने उसे एहतियातन हिदायत भी दे दी.

''कैसी बात करते हो!'' रुचि उसे प्यार से लगभग झिड़कती-सी उठ खड़ी हुई और उस लिफाफे को कहीं सुरक्षित स्थान पर रखकर तुरंत लौट आयी.

इस बीच रुचि की मम्मी चाय ले आयी थी. लेकिन चाय पहुंचाकर वह वहां रुकी नहीं, उसी क्षण वापस चली गयी.

अरुण ने अपना कप हाथ में लिया ही था कि रुचि अपना कप उठाते हुए अरुण से बोली, ''आओ, इधर बालकनी से कुछ दिखाऊं.''

''क्या बंदर का तमाशा है?''

''चाहो तो बंदर का तमाशा समझ लो. लेकिन दरअसल, है वह आदमी का तमाशा. आदमी की मज़बूरी है कि उसे ऐसे तमाशे करने पड़ते हैं. इनमें अनिवार्यता तो है ही, साथ-साथ शोषण भी है.''

बालकनी में पहुंचकर रुचि ने उन्हीं मज़दूरों की ओर इशारा किया जिन्हें कुछ देर पहले वह खुद देख रही थी. फिर एकाएक बोली, ''मेरा तो ख़याल है, हर ऐसे व्यक्ति को जो अपने को सृजनशील कहता है, इन मज़दूरों के साथ मिलकर पत्थर तोड़ने चाहिएं.''

''तब ऐसा क्यों नहीं कहतीं कि हर सृजनशील व्यक्ति को कुछ समय तक कंसेंट्रेशन कैंप में रखा जाना चाहिए?'' अरुण ने तड़पकर उत्तर दिया, ''लगता है तुम भी उन लोगों की हिमायती हो जो अपने विरुद्ध एक

कल्पना करो जब किसी को खुले पायंचे का पजामा पहनाकर नाड़ा खूब कसकर बांध दिया जाये फिर पायंचों के रास्ते उसके भीतर छिप-कलियां-गिरगिटें छोड़ दी जायें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द नहीं सुन सकते और मौका मिलते ही अपने विरोधी को सांप-छछूंदरों-भरी ऐसी काल-कोठरी में पटक देना चाहते हैं जहां वह मारे दहशत के एक ही सैकंड में दम तोड़ दे. वैसे मैं शारीरिक श्रम को बेहद महत्वपूर्ण मानता हूं, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि मंज़िल तक पहुंचने के लिए एक ही राह पकड़ी जाये. राह दूसरी भी पकड़ी जा सकती है, और हो सकता है वह पहली राह से कुछ ज्यादा ही विकट हो.'' फिर कुछ रुककर बोला, ''तुम्हारा सुझाव लगभग वैसा ही है जैसा मैंने शायद तुम्हें कभी पहले भी बताया था, जब किसी लेखक ने कहा था कि लेखनी उठाने से पहले एक दर्जन औरतों के साथ शारीरिक संपर्क कायम करो. कुछ इसी तरह से हमारे कुछ वामपंथी और कुछ दक्षिणपंथी मित्र भी फार्मूले गढ़ कर चलते हैं. लेकिन माई लिटल फ्रेंड, याद रखो, सृजनशीलता फार्मूलों की दासी नहीं. वह अपने आप में एक ऐसी शक्ति है जिसका स्वयं सृजनशीलता वाले व्यक्ति को पूरा-पूरा अंदाज नहीं होता. हां, दृष्टि ज़रूर साफ होनी चाहिए.''

अरुण ने रुचि को एक अर्से बाद 'माई लिटल फ्रेंड' कहकर संबोधित किया था. जाने क्यों, उसे ऐसे लगा जैसे वह एकाएक उसी स्थिति में पहुंच गयी है, जिस दिन वे पहले-पहल मिले थे. वह जैसे फिर पिघलने लगी और इसीलिए खड़े-खड़े अरुण के बिलकुल साथ सट गयी.

''रुचि, तुम्हें मैं एक बात बतानी भूल गया. हालांकि ज्यादा महत्व की तो नहीं है, लेकिन...'' अरुण भी जैसे भावातिरेक में आ गया.

''बस, अब बात नहीं.'' रुचि मौज में आ रही थी.

''बाबा, यहां मजमा लगाना है क्या?'' अरुण रुचि के इतने निकट आ जाने के कारण सकुचा रहा था.

''हम खड़े ही हैं, और तो कुछ नहीं कर रहे.'' रुचि अपनी मौज खो देना नहीं चाहती थी.

''अच्छा सुनो,'' अरुण ने कहा, ''उस दिन जब तुम्हारे यहां ताला पड़ा था तो मेरी सुपर बॉस से कहा-सुनी हो गयी थी.''

''भिड़ गये उससे भी?'' रुचि खिलखिला पड़ी.

''अरे नहीं यार, बात तो सुनो.'' अरुण ने उसे पुचकारते हुए कहा, ''दरअसल, दिन में इतनी गरमी होती है कि दफ्तर में बैठना मुहाल हो जाता है. नाम के लिए कमरे में कूलर भी है, पर जब तक हवा आती-जाती न रहे, तब तक वह अपना कोई असर नहीं दिखा सकता. बस, ऐसी ही सब बातें थीं.''

''इसीलिए मैं तुम्हें मजदूर दिखा रही थी. एक तरफ यह जिंदगी है, जिसमें किसी प्रकार का कोई त्राण नहीं, और एक तरफ तुम्हारे जैसे लोग हैं जो अपनी सुविधाओं के लिए जूझते हैं.''

''बहुत खूब. दलीलें देना कोई तुमसे सीखे. तुम्हारे जैसे लोग ही स्याह को सफेद और सफेद को स्याह बनाते एक सैकेंड नहीं लगाते.

''नहीं, यह स्याह को सफेद बनाना नहीं, आम आदमी की नियति से जुड़ना है. इसी आम आदमी की नियति की तुम बराबर बात करते रहे हो न. तब क्या उससे दूर रहकर उसकी नियति से जुड़ा जा सकेगा?'' और फिर तुमने एक बार खुद ही तो कहा था कि हमें इनके बीच चलकर रहना होगा.''

''बेशक, मैंने कहा था और अब भी कहता हूं, लेकिन इसे नुस्खा मानकर नहीं चलता. चाहता हूं कि समूची व्यवस्था एक बात फिर तरतीब ले. जैसे, क्या यह संभव नहीं कि हमारा आदमी ज़्यादा संवेदनशील बने? लेकिन यह संभव कैसे हो जबकि हम उसे खुद क्रूर बनाते हैं? इधर अखबारों में पढ़ा नहीं कि पुलिस ने उन लोगों को कैसी-कैसी यातनाएं दीं जो एक बार उनके शिकंजे में आ गये? उन लोगों का कसूर क्या था? सिर्फ यही न कि उन्होंने सरकार की 'हां' में 'हां' नहीं मिलायी या अपने अधिकारों के लिए मांग की? क्या अपने अधिकारों के लिए मांग करना भी एक जुर्म है? यानी केवल पांच प्रतिशत लोग पंद्रह प्रतिशत पिट्ठुओं की मदद से अस्सी प्रतिशत लोगों को अपना ताउम्र गुलाम बनाये रहें, और वह भी जनतंत्र के नाम पर? मन होता है कि एक बार तो यह सब छोड़-छोड़कर खुले में आ जाऊं और इन सबको ललकारूं. पर फिर यह सोचकर चुप रह जाना पड़ता है कि जब नौकरी के बावजूद घिसट-घिसटकर चल रहे हैं, यानी एक महीना तनखवाह न मिले तो औंधे हो जाते हैं, तब बिना नौकरी के बीवी-बच्चों को कहां से खिलायेंगे! चलो, यह भी रिस्क ले लेते हैं. पर जेल में हम तो जायें, हमारे बीवी-बच्चों ने क्या बिगाड़ा है जो उन्हें बेघर-लावारिस बना दिया जाये और फिर किसी न किसी बहाने उन पर भी कोड़े बरसाये जायें. सुन-सुनकर दिल दहल उठता है. जैसे कि हम फिर बर्बर युग में आ गये हों.''

रुचि टकटकी लगाये अरुण की बात सुन रही थी. उसे लगा जैसे अरुण की आंखें भीग गयी हैं.

अरुण बोले जा रहा था, ''मैं मानता हूं, कमोबेश हर देश में ऐसा हुआ है और हो रहा है, लेकिन भारत तो जैसे सब देशों से बाज़ी ले गया. अभी तक नाज़ियों के गैस चैंबर्स या दक्षिण अफ्रीका की पाशविकता की मिसालें ही सुना करते थे, लेकिन अब तो अपने यहां के 'गिरगिट ऑपरेशन', 'हवाई ऑपरेशन' तथा 'रोलर ऑपरेशन' के बारे में सुन-सुनकर इंद्रियां जैसे सुन्न पड़ जाती हैं. फिर कैदियों को नंगा करके उनके शरीर के नाजुक हिस्सों पर जलती सिगरेटें छुआना या उन्हें उलटा लटकाकर उनकी नाक या गुप्त स्थलों में पिसी मिर्च भरना. हां, एक दृश्य मुझे कभी नहीं भूलता. वह बहुत पहले मैंने किसी विदेशी फिल्म में देखा था. शायद १५७६ के आसपास का वाकया है. यूरोप के किसी पूर्वी देश में घटा था. एक बार ग़रीबों ने अमीरों के खिलाफ बग़ावत कर दी. शुरू में उन्हें कुछ सफलता मिली. लेकिन फिर अमीरों ने अपनी शक्ति बटोरी और ग़रीबों को धर दबोचा और उनके नेता की ताजपोशी करने की घोषणा कर दी. गरीबों का वह नेता तरह-तरह की यातनाएं सहकर अधमरा तो पहले ही हो रहा था, अब उसे तमाम उमराव-उम्रा की उपस्थिति में एक स्टूल पर बिठाया गया. पास में एक अलाव जल रहा था. उसमें लोहे का एक मोटा कनटोप तपाया जा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. जब क्रनटोप तपकर एकदम लाल हो गया तो उसे चिमटों से उठाकर उस गरीब के सिर पर रख दिया गया जिससे पहले तो उसके बाल जले और फिर गरदन लटक गयी...हो सकता है कुछ समय बाद हमारे यहां भी ऐसे वाकयात सुनने में आयें. खैर, अभी यह तो सुनने में आता ही है कि कुछ लोगों को डाकू या अन्य नाम देकर घने जंगलों में ले जाया जाता है, फिर उन्हें वहां दौड़ने पर मजबूर किया जाता है और जैसे ही वे दौड़ते हैं, उन पर गोली चलायी जाती है. और कहींकहीं ऐसा भी हुआ कि आदमी को हिरासत में लेने की खबर तो मिली, लेकिन बाद में वह कहां गायब कर दिया गया, कुछ पता नहीं. एक बार बस में मुझे एक सज्जन मिले. अपने आपको सृजनशील लेखक कहते थे. मैंने पूछा—'आप सृजनशीलता' किसे कहते हैं?' बोले—'मेरी राय में 'सृजनशीलता' इस प्रकार है—कि आदमी को एक ऐसे कमरे में बंद कर दिया जाये जो चारों तरफ से पूरी तरह सील्ड हो, बाहर कड़ी निगरानी भी हो, लेकिन आदमी तब भी गायब हो जाये. लेखक का काम यह पता लगाना होगा कि वह आदमी कहां और कैसे गायब हो गया?' सच, मुझे उस वक्त उसकी बात चाहे बचकानी लगी थी, लेकिन अब वही सही लगने लगी है. ढूंढिए, ये सब लोग कहां गायब हो गये?''

''लेकिन ऐसी शर्मनाक बर्बरता को किसने प्रेरित किया होगा?'' रुचि के मन में सहज ही प्रश्न उठा.

''मेरा खयाल है, इस 'प्रेरणा के स्रोत' को ढूंढ़ना मुश्किल नहीं है. सुना है एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को यातना के खास-खास तरीके सीखने के लिए स्काटलैंड यार्ड भेजा गया था.''

''हां, अखबार में देखा था.''

''शायद अमरीका या रूस ने इनसे भी कड़े तरीके खोज निकाले हों. यह 'गिरगिट ऑपरेशन' तो निश्चय ही किसी विदेश की भेंट है. कल्पना करो, जब किसी को खुले पांयचे का पाजामा पहनाकर नाड़ा खूब कसकर बांध दिया जाये और फिर पायंचों के रास्ते उसके भीतर छिपकलियां-गिरगिटें छोड़ दी जायें.''

रुचि के मुंह से एकाएक चीख-सी निकली, लेकिन वह तुरंत संभल भी गयी.

''बस, इतनी सी हिम्मत है.'' अरुण ने उसे उलाहना दिया. ''ज़रा सोचो, पहले कितनी कुर्बानी दी होगी लोगों ने देश को अंग्रेजों से आजाद करवाने में, और अब कितनी कुर्बानी देनी पड़ेगी हमें इसे सही मानों में आज़ादी दिलाने में.''

रुचि बिलकुल चुप थी. अरुण ने उसे धीरे-से थपथपाया और चलने को तैयार हो गया.

उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि हर औरत पज़ेस्सिव होती है. एक बार उसके हाथ कोई आदमी लग जाये तो उसे समूचे को हड़प लेना चाहती है. उन्हें पज़ेस्सिवनेस से बड़ी चिढ़ है. वह अपनी पत्नी की भी इसी पज़ेस्सिवनेस से चिढ़ उठते हैं. हां, अक्सर जब वह मेरे साथ होते हैं तो मैं चाहती हूं, वह कहीं जायें नहीं, मेरे पास ही रहें. काश कि मैं उन्हें रोक पाती! लेकिन जैसे-जैसे देर हो रही होती है, उनके अंदर एक प्रकार की छटपटाहट-सी शुरू हो जाती है. वह बार-बार, बिना बात के, घड़ी देखते हैं. तब मैं भी कहे बिना नहीं रह पाती—नहीं, अभी नहीं जाना. तब उनकी दृष्टि बड़ी कातर हो उठती है. इस पर मैं उन्हें कसके ताना देती हूं और तब उनकी छटपटाहट स्पष्ट दिखने लगती है. वह एक कदम रोके रहते हैं जब कि उनका दूसरा कदम उठ चुका होता है. उस दिन तो मेरे कहने पर कि अभी नहीं जाना, वह खिसिया उठे थे. जैसे कोई बरस पड़ना चाहता हो, पर फिर भी हंस रहा हो. जैसे जबरन हंसना ही किसी की नियति है. पर मैं उन्हें और ताने पर ताना दिये जाती हूं जब तक कि वह मेरे इसरार की अवहेलना कर चल नहीं देते. तब मैं काफी दूर तक उन्हें जाते देखती रहती हूं. तब कभी-कभी लगने लगता है कि मैं दिग्भ्रमित तो नहीं हूं? क्या मैं ठीक दिशा में जा रही हूं? अंत में शायद कुछ भी हाथ न लगे. लेकिन 'अंत' को मैंने कब उपलब्धि माना है? यात्रा भी तो अपने आप में एक उपलब्धि है. बस, उतने ही क्षण जी लो, फिर देख लेंगे अपनी नियति क्या होगी. उनके इस नियति के प्रश्न ने न जाने कितने सारे भविष्य मेरे इर्द-गिर्द टांग दिये हैं. कठपुतलियों की तरह भिन्न-भिन्न आकृतियों में नाचता भविष्य, जिनमें से प्रत्येक का महीन सूत्र उनके हाथ में है. सच! मैं इतनी डिपेंडेंट कब से हो गयी! किसी पर इतनी आश्रित, किसी के प्रति इतनी बाधित! क्षण के एक झटके के साथ कभी अपनी उम्र से वापस किशोरावस्था में आ जाती हूं—जिसे इस वक्त अनजाने ही बड़ी तेजी से फलांग गयी थी और कभी जाने किस गति के साथ बहुत आगे पहुंचकर अचानक बुद्ध के दुःखवाद की हिमायती बन जाती हूं. वह दोनों स्थितियों से परेशान हो उठते हैं—शायद किसी में अपने को सहज महसूस नहीं कर पाते. एक बार बोले थे, ''यू लुक सो लवलेस!'' तो मन हुआ था कि एक ज़बरदस्त चोट करूं, ''एंड यू लुक सो फैंस्ड! लेकिन नहीं कहा. उन्हें तकलीफ देते समय खुद को भी काफी तकलीफ होती है.

लेकिन सच, कैसे बंध गयी हूं एक फैंस्ड, एक इतने प्रतिबद्ध व्यक्ति से. इसलिए अक्सर सोचती हूं कि मुझे उनसे अधिक की या 'संपूर्णता' की आशा नहीं करनी चाहिए, वरना निराशा ही होती है. पर नहीं होता, कुछ नहीं होता मुझसे. इतना सब होने पर भी हक के नाम पर...! ब्लैंक! यू स्टैंड नो व्हेयर. सच, आप मुझे यह क्यों जताना चाहते हैं कि मैं कहीं नहीं हूं, कोई नहीं हूं. आपका परिवार है, आपकी पत्नी है, आपका कर्तव्य है, मैंने इसे कभी नकारने की कोशिश नहीं की. लेकिन मैं भी क्या करूं? मेरे सहने का यह अर्थ तो नहीं कि मेरे अंदर आकांक्षा नहीं, आवेग नहीं. ईर्ष्या मैंने बचपन से नहीं सीखी. कभी नहीं. इसलिए कभी एक नारी-सुलभ ईर्ष्या-भाव के वश में हो जाती हूं, उस समय खुद-ब-खुद शर्म से गड़ने लगती हूं.

नहीं भई, कहीं भी छुटकारा नहीं. इस अनाम तकलीफ से किसी प्रकार भी मुक्ति नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा था कि हम सब उपयोगिता की दुनिया में रहते हैं, सब परोपजीवी हैं, बल्कि रिश्ते-नातों को बनाये रखनेवाली भी यह उपयोगिता, परोपजीविता ही है. उन्हें लगता है कि मेरा उनका संबंध भी इसी उपयोगिता पर आधारित है. क्या यह सच है ? लेकिन अगर यह सच है तो एकात्म होने वाली बात बिलकुल झूठी है? वह बार-बार यही कहते हैं कि शारीरिक रूप से एकस्थ हुए बिना ऐसे लगता रहता है कि जैसे कहीं कुछ कसर है. और तब जब मैंने 'न' कह दिया तो उन्हें लगा कि उनके प्रति मेरे विश्वास में कहीं टूटन है. वह ऐसे, मौके पर 'मिस्ट्रस्ट' शब्द इस्तेमाल करते हैं. नहीं, मैं आपको कैसे समझाऊं कि मुझे आपके प्रति कोई 'मिस्ट्रस्ट' नहीं है, और न ही मैं, जैसा आपने उस दिन कहा था, सरपट दौड़ते हुए एकाएक दिग्भ्रमित-सी खड़ी हो जाती हूं और किस बिंदु से किस बिंदु तक दौड़ी हूं, उसका पर्यवेक्षण करती हूं. हां, कभी-कभी अकारण ही डरने लगती हूं, एक अबूझ डर से कि मैं कुछ, कुछ तो बचाये रखूं. या मुझे कभी-कभी ऐसा भी लगने लगता है कि मैं अपने मां-बाप के प्रति विश्वासघात करूंगी. और फिर मुझे उसका भी खयाल आ जाता है जिसे आपने अपने ही शब्दों में 'माई फर्स्ट लव' कहा था. सच, कितना ओछा लगा था आपके मुंह से यह सुनना. जैसे कोई 'मॉड गाड', अपने पहले दूसरे, तीसरे...लव की बात कर रहा हो. सच, क्या प्यार इतना सस्ता है? लेकिन नहीं, आपके बाकी वाक्य से स्पष्ट था कि आप किसी घोर यातना में से गुजरे हैं. इसकी झलक मैंने आपकी डायरियों में भी पा ली थी, बल्कि उनके पन्ने पलटते समय इतना बंधती जा रही थी कि मम्मी के आने का डर न होता तो सभी सांस रोके पढ़ जाती. इत्तफाक ऐसा हुआ कि जब-जब मैंने उन्हें पढ़ना चाहा, मम्मी की छाया मेरा पीछा करती मुझे दिखाई दी. किंतु, प्यारी मम्मी, अब यदि मैं अपने कमरे की अंदर से चिटखनी चढ़ा लूं तो तुम यही समझोगी—न, कि मैं अपनी परीक्षा की तैयारी में लगी हूं? लेकिन मम्मी, तुम्हें क्या पता है, कौन सी परीक्षा देने जा रही हूं.

डायरी के पन्ने

28/7/52

वह भी जमाना होता है जब हर कोई तुम्हारी राय मांगने आता है, और वह भी वक्त होता है जब सब तरफ तुम्हारा तिरस्कार किया जाता है.

कल एक बुढ़िया देखी. सत्तर से कम क्या होगी. मांस कई-कई परतें लिये हुए, मुचड़ा-सा, जैसे किसी गैंडे का. चेहरे पर भी अनेक झुर्रियां. चल रही थी तो ऐसे लगता था जैसे अब लुढ़की सो लुढ़की. बगल में पानी से भरा घड़ा उठाये हुए. लगा, जैसे ऐन मौत के कगार पर खड़ी है और किसी भी क्षण ढह पड़ेगी. मां कह रही थी, वह किसी के हाथ का छुआ नहीं खाती. शायद इसी कारण कोई उसके पास नहीं फटकता.

अब उसने एक पगली लड़की से अपने बेटे की शादी कर दी है.

उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि हर औरत पजेस्सिव होती है. एक बार उसके हाथ कोई आदमी लग जाये तो उसे समूचे को हड़प लेना चाहती है. वह अपनी पत्नी की भी इसी पजेस्सिवनेस से चिढ़ उठते हैं.

4/8/52

दस बजे हैं. सुबह का समय है. अभी कुछ देर पहले एक मांगनेवाला हमारे दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ. कह रहा था, सुबह से भूखा हूं, खाने को कुछ नहीं मिला. मैं उसे कहने को था कि तुम आगे जाओ, लेकिन मुझे उसकी हालत पर रहम आ गया. मुंह चिबड़ा-सा, मटमैला. शरीर बहुत निर्बल. उम्र लगभग मेरे बराबर, यानी कोई बीस साल. इस उम्र में किसी को मांगना नहीं चाहिए. इतने में मेरी छोटी बहन आ गयी. उसने कहा, 'मांगते हो, इससे अच्छा कहीं कुछ काम करो.' सुनते ही वह झपाटे से आगे मुड़ा और गली में चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, 'किसी को मज़दूर चाहिए, किसी को काम करने वाला चाहिए!' कहीं से कोई जवाब नहीं. फिर लगा उसकी आवाज़ जैसे चारों तरफ गूंजने लगी है और कोई हमारा मज़ाक उड़ाने लगा है!

20/2/53

बंबई में हूं.

मैं नहीं सोच सकता था कि कोई एकाएक इस तरह मुझसे बंध जायेगा. मुझमें धरा ही क्या है? आंखें भीतर धंस गयी हैं और उनपर मोटा चश्मा चढ़ गया है. गालों की खाल भी खिंच गयी है. एक ही बनियान है जिसे रोज़ धोता हूं और पहनता हूं. उसमें भी कई छेद हैं. धोने के लिए कभी-कभी साबुन भी नहीं होता. साबुन आये भी कहां से! पहले तो इस पेट को भरने की समस्या है. घरवालों से एकदम नाता टूट चुका है. उन्होंने चाहा था कि मैं कहीं किसी प्रकार की भी नौकरी कर लूं. लेकिन बी.ए. फेल को नौकरी देता भी कौन? ज्यादा से ज्यादा किसी मनियारी की दूकान पर सौ-पचास की सहायक की नौकरी मिल सकती थी. हां, वहां इश्क तो हो सकता था. दिल भर कर. जैसे प्रायः रोपड़ के छोकड़े करते हैं. 'बहनजी' 'बहनजी' कहते-कहते आगे हाथ बढ़ा देते हैं. और 'बहनजी' भी खूब मज़े लेती हैं. पाउडर-क्रीम के साथ-साथ अपनी अंगिया का नाप भी बताती हैं, जांघिये का भी. इसी तरह, दर्ज़ी की दूकान पर भी, मेरा एक साथी कह रहा था, बड़ा मज़ा रहता है. खूब कस-कसकर अपनी छाती तथा नितंबों का नाप देती हैं...बंबई में नौकरी मैं भी कर रहा हूं, किसी मनियारी वाले या दर्ज़ी की दूकान पर नहीं, एक अखबार के दफ्तर में. ले-दे के संपादकीय विभाग में हम यहां दो-तीन व्यक्ति हैं. एक संपादक जी हैं, और बाकी हम दो उप-संपादक. लेकिन काम हमें ही सब करना होता है. संपादकजी कभी-कभी संपादकीय लिख देते हैं, वरना वह भी हम ही लिखते हैं. पत्र का 'प्रतिनिधित्व' करने के लिए भी हमें ही भेजा जाता है. कल एक ऐसा ही मौका आया. पिछले डेढ़ महीने से यहां काम कर रहा हूं, लेकिन तनख्वाह के नाम पर बीस रुपये थमा दिये गये थे, और बाकी अस्सी रुपये कहा था, कि शीघ्र ही मिल जायेंगे. पर आज-कल में पंद्रह दिन और बीत गये हैं. खोली का किराया पंद्रह रुपये तो चुकाना ही पड़ा था. बाकी बचे थे पांच रुपये. पांच

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपयों से कितने दिन चलता? इसीलिए बाजारवालों से उधार करना पड़ता है. दफ्तर भी मैं रोज़ पैदल ही आता-जाता हूं. कभी-कभी पेट में ऐसी उछल-कूद मची होती है कि मन होता है, किसी भी चीज़ पर दांत गड़ा दूं. कल मुझे जब पत्र का 'प्रतिनिधित्व' करने को कहा गया तो मेरी जेब में केवल दस आने थे जो मैं किसी कीमत पर खर्च करना नहीं चाहता था. इसलिए जब मैंने मैनेजर से किराये के पैसे मांगे तो उसने मुझे एक अठन्नी थमा दी. बहुत गुस्सा आ रहा था मुझे मैनेजर पर! दरअसल, मुझे लगता है कि हमारे पैसे रोकनेवाला यही व्यक्ति है, यद्यपि वह हर चीज के लिए संपादक को इंगित करता है. एक दिन मैंने संपादक से भी बात की थी, पर उसने मालिक की ओर इंगित कर दिया था. मैंने स्वयं जाकर तुमसे मिलना चाहा पर चौकीदार ने मुझे कोठी के भीतर नहीं घुसने दिया था. यह चौकीदार भी कैसा अजब आदमी है. इसको भी मेरी तरह तनख्वाह की पूरी राशि एक मुश्त नहीं मिलती, फिर भी वह मालिक का वफादार है. सेहत भी उसी तरह बरकरार है. वैसा ही लंब-तड़ंग. संपादक भी खूब मुस्तंड है. घर पर भैंस पाल रखी है. कहते हैं, मालिक का खास आदमी है.

लेकिन अपनी इस 'गरीबी' के लिए मैं किसे दोषी ठहराऊं? लोग कहते हैं, मैं बचपन में बिलकुल 'फायर ब्रेंड' था. हर छोटी-मोटी बात पर मैं सिर फोड़ने पर उतारू रहता था. हां, मुझे याद है, एक बार मैंने किसी के सिर में कपड़े धोने वाली 'थापी' दे मारी थी. वैसे भी मैं अपनी कमर से बिजली के तार से बुनी रस्सी लपेटे रहता था, और जब कहीं कुछ बात हुई, झट उसे खींच लेता था. लेकिन अब? अब लगता है मेरा गुस्सा ऐसे ही सोखा जा रहा है. मेरी आग मुझे ही झुलसाये जा रही है. क्यों नहीं मैं इस मैनेजर, इस संपादक, इस मालिक, इस चौकीदार को एक-बार गिरेबान से पकड़कर झकझोर देता? मालिक की तो, सुना है, पंजाब में दो-तीन मिलें हैं. यहां उसका दफ्तर है और कोठी है. कोठी सुना है काफी बड़ी है. बाहर से देखने में इतनी बड़ी नहीं लगती, लेकिन अंदर-ही-अंदर, सुना है, बहुत दूर तक चली गयी है. एक कमरे में तीन-चार झूले हैं और दीवारों पर चारों तरफ आइने हैं. शायद मालिक को उनमें किसी के साथ लेटना बहुत अच्छा लगता हो. पर वह हमारे पैसे क्यों नहीं देता? यह भी हो सकता है कि उसको इस बात का पता भी न हो और संपादक एवं मैनेजर बीच में ही हड़प जाते हों.

जिंदगी की दास्तां जैसे कि खत्म होने को है. या यों कहूं कि एक नयी दास्तां शुरू होने को है.

डायरी के पन्ने पढ़ चुकी हूं. एक लहूलुहान दुनिया है उनमें. जैसे किसी ने अपने खून से लिखा हो उन्हें. लेकिन वह खून, लगता है, जैसे कि अब सूख गया है. या हो सकता है अरुण के खून में ही तब्दीली आ गयी हो. धीरे-धीरे अरुण अब भीरु बनता जा रहा है. कितनी चिढ़ है मुझे इस भीरु रूप से. मैं नहीं चाहती कि कोई एक क्षण के लिए भी मुझे कमज़ोर दिखे. लेकिन हां, मुझे

गणित

छायाकार
पवन महेंद्र

मॉडल
रुचि
ऋता
अरुण
जितेंद्रकुमार
मां
शकुंतला रानी
पिता
छबीलदास
बॉस
रमेशकुमार

'उस' से बिलकुल जलन नहीं हुई.

मेरी कला समीक्षावाली बात को भी ज़रूरत से ज्यादा तूल दिया गया. मम्मी अलग से, और अरुण अलग से. दोनों ने ही तरह-तरह के अस्त्र चलाये इस पेशकश पर. क्या इसे मैं ईर्ष्या कहूं? ईर्ष्या नहीं तो और क्या है. अरुण नहीं चाहता कि किसी की तरफ मैं नज़र भरकर भी देखूं. यानी तुम हंसो तो मेरे लिए, रोओ तो मेरे लिए! यह किस तरह की 'पजैसिवनेज' है?

पत्रिका के संपादक अश्विनी ने कहा था कि इस ढांचे को आमूल-चूल बदलने की जरूरत है. उनका यह भी कहना था कि यह काम अकेले से नहीं हो सकता. उनके अनुसार सबसे पहले तो हमें एक काउंटर वर्ल्ड, एक प्रतिसंसार, खड़ा करना होगा जिसमें सभी पुराने मूल्यों को नकारना होगा. जैसे, भाई-बहन, मां-बाप, प्रेमी-प्रेमिका—ये सब दकियानूसी मूल्योंवाले रिश्ते हैं. इनके स्थान पर सहज रिश्ते चाहिए ताकि किसी भी बात को लेकर मन पर बोझ न पड़े. यह काउंटर वर्ल्ड बहुत आकर्षक भी हो सकता है और अनाकर्षक भी. आकर्षक इसलिए कि आपको हमेशा आगे बढ़ते रहने का एहसास रहेगा, और अनाकर्षक इसलिए कि इस सबमें नया कुछ भी नहीं.

मुझे अश्विनी का सुझाव अच्छा लगा. मैं तो यही चाहती हूं कि हमारी यह दुनिया फले-फूले, आगे बढ़ती रहे. पहले जिस बिंदु से मैं दुनिया देख रही थी, लगता था बस यह दुनिया बस इत्ती-सी ही है. लेकिन अब लगता है कि नहीं, यह दुनिया बहुत बड़ी है और गुर्बत से लड़ना तो इसका महज़ एक पहलू है, असली मुद्दे दूसरे हैं.

आज मेरे माता-पिता अगर जबरदस्ती मेरी शादी कहीं और कर दें तो यह, यानी अरुण, क्या चुपचाप खड़ा तमाशा नहीं देखता रहेगा? या और कुछ नहीं तो मुझे सीख ही देना शुरू कर देगा? लेकिन इधर अश्विनी जैसे लोग हैं जो इस शादी को एक ही क्षण में बेमानी कर देंगे. जीवन का असली ध्येय आत्मोपलब्धि ही है न? तब कहां से आत्मोपलब्धि अरुण की राह पर चलकर? संघर्ष, संघर्ष केवल संघर्ष! और अक्सर यह संघर्ष अर्थहीन भी लगने लगता है. अश्विनी के साथ जब मैं लंच ले रही थी तो उन्होंने कहा भी था कि उन्हें अब तक किसी ने समझा ही नहीं. अश्विनी अकेले हैं. कैसी कातरता थी उनकी आंखों में उस समय. न घर जैसा घर, न अपने जैसा कोई अपना. मुझे दया भी आयी और मैं सहानुभूत भी होती चली गयी. फिर यकायक अरुण और अश्विनी मेरे सामने दो पलड़ों में खड़े थे. निःसंदेह, अश्विनी का पलड़ा काफी भारी था. मैं मजबूर हूं, अरुण, मजबूर! नियति ने हमें, बस, यहीं तक साथ-साथ बांध रखा था. अब हम और आगे नहीं चल सकेंगे. मुझे तुमसे साफ-साफ कहना होगा. अलविदा, अरुण, अलविदा! जो कुछ तुमने मुझे दिया, वह मैं हमेशा अपने पास थाती बनाकर रखूंगी. हां, लेकिन वह थाती मेरे लिए बोझ नहीं होगी. जहां तक तुमने मुझे पहुंचाया है, उसके लिए तुम्हारी ऋणी हूं. मैं तुम्हारा यह ऋण कभी चुकाऊंगी, जरूर चुकाऊंगी. लेकिन तब तक के लिए अलविदा! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, 1989

प्रविष्टि भेजने की अन्तिम तिथि 13 अगस्त, 1990

जन संचार के विभिन्न माध्यम मुख्यतः सूचना और प्रसारण मंत्रालय से सम्बद्ध विषयों जैसे कि प्रकाशन, दूरदर्शन, प्रसारण, विज्ञापन, पत्रकारिता, फिल्म आदि पर हिन्दी में मौलिक लेखन को प्रोत्साहन देने के प्रयोजन से प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार योजना के अन्तर्गत वर्ष 1989 के पुरस्कारों के लिए प्रविष्टियां आमंत्रित करता है। इस योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित पुरस्कार दिए जाएंगे:-

प्रथम पुरस्कार	:	25,000/- रुपये
द्वितीय पुरस्कार	:	15,000/- रुपये
तृतीय पुरस्कार	:	10,000/- रुपये
मान पुरस्कार	:	5,000/- रुपये

वर्ष, 1989 के पुरस्कार के लिए जनवरी, 1989 से 31 दिसम्बर, 1989 तक की अवधि में प्रायोजित पुस्तकें अथवा लिखी पाण्डुलिपियों को विचारार्थ स्वीकार किया जाएगा।

प्रविष्टियां भेजने की अंतिम तिथि

वर्ष 1989 की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, योजना में भाग लेने के लिए अपनी प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 13 अगस्त, 1990 है। प्रविष्टियां भेजने से पहले पुरस्कार संबंधी नियम, प्रविष्टि प्रपत्र तथा पूर्ण विवरण मंगाने के लिए सहायक निदेशक (राजभाषा), प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली- 110 001 को लिखें अथवा सम्पर्क करें। अपने आवेदन पत्र के साथ अपना पता लिखा 10 × 22 सें.मी. आकार का बिना टिकट वाला एक सादा लिफाफा अवश्य भेजें।

davp 90/184

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

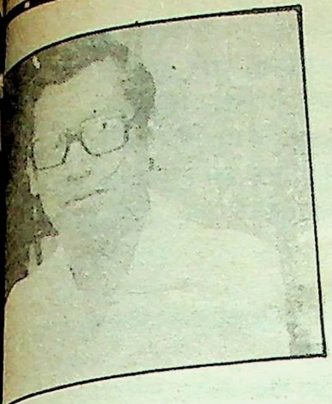

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

...ले अंकों में आपने पढ़ा

...अंकों में आप रामवरन, ...स, सहदेव ठाकुर, मूसा ...हरि की दास्तान और उनकी समस्याओं से रू-ब-रू हो ...ं. अब पढ़िये किसनसिंह ...स्तक और उस पुस्तक के ...बयान...

कई दिनों से उसकी मां कहती आ रही थी कि गोशाला के बाहर गाय के मूत्र के लिए जो गड्ढा था उसे थोड़ा और गहरा कोड़ना जरूरी था. उसके एकदम छोटा होने के कारण गाय का मूत्र आंगन में दूर तक फैल जाया करता था. समय अभाव के कारण हरि इस काम को कई दिनों से टालता आ रहा था. उसके शहर से लौटने पर रात में जब मां यह कहकर उसे कोस गयी थी कि दूसरों के लिए वह मारा-मारा फिरता रहता है और अपने काम को टालता रह जाता है तो उसने तय कर लिया था कि सुबह उठते ही वह उस काम को पूरा करके रहेगा. रविवार होने के बावजूद वह हफ्ते के अन्य दिनों की तरह तड़के ही उठ गया. सूरज के उगने में समय था. उस धुंधलके में अपने मौलिक कार्यों से निवृत्त हुआ. रसोई के भीतर पहुंचा. मिट्टी के चिराग की रोशनी थी भीतर. देवी चाय बना चुकी थी. उसमें शक्कर घोलने के बाद अपने भाई को कटोरा थमा दिया. जब परांठे देने लगी तो हरि ने कहा कि रख दे वह बाद में खायेगा.

विजय भी उसी के साथ जग गया था. उसने भी रसोई के भीतर आकर चाय पी. हरि के साथ बाड़े में पहुंचा. दोनों ने मिलकर गाय और बकरियों के नीचे बिछी घास को हटाया. गोबर, जो ताजा था उसे विजय ने एक पात्र में अलग रख दिया क्योंकि उसके रसोई से बाहर निकलते समय देवी ने कहा था कि वह सभी गोबर को खाद वाले गड्ढे में न फेंक आये. उसे घर लीपने के लिए कुछ गोबर की आवश्यकता थी. बाड़े को अच्छी तरह से साफ कर चुकने के बाद ही उसने गाय और बकरियों के सामने घास और पानी रखे. मूत्र के गड्ढे को खाली करने में हरि की मदद की. उन चार पांच बालटी मूत्र को वह खाद के गड्ढे में फेंक आया. तीन बकरियों के बीच काले रंग की जो बकरी थी वह अपने सामने की हरी घास के बावजूद मिमियाती घिघियाती ही रही. जान-बूझकर उसके गले में छोटी रस्सी बांधी गयी थी ताकि अपनी कूद-फांद में वह अन्य बकरियों को सींघ मारती न रहे. वह काली खंसी अंजली ने हरि की मां को दी थी. जब इस बाड़े में आया था तो कुलांचे मारता हुआ मेमना था. अंजली उसी गांव की थी जिस गांव की हरि की मां थी. उसका पति त्वाकरण जब भी शराब पीकर घर में हंगामा खड़ा कर जाता था तो अंजली अपने घर से हरि के घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हरि उस गड्ढे को थोड़ा अधिक फैला हुआ और कुछ ज्यादा गहरा खोदकर बाहर नि... तो सूरज अपने घंटे भर से अधिक की यात्रा पूरी कर चुका था. उसने अपनी मां को बुलाकर ... दिखाया. उसके संतुष्ट हो जाने के बाद ही उसने कुदाली नीचे रखी. मां ने अपने अब तक के ... रोज-रोज के तकाजे को जायज साबित करने के लिए कहा कि गाय को गंदगी में रखने से पाप ... है. अपनी मां की उस खुशी को बांटकर ही हरि नहाने के लिए वहां से हटा. पर नहाने से पहले ... बात उसे याद आ गयी. उसने रसोई के पास जाकर बाहर ही से पूछा, "देवी! घर पर मट्ठर ... तो है न?"

"बस एक डिबिया भर है."

"देखो आज दालपूरी पकनी चाहिए. आटा न हो तो हरीश को दूकान भेजकर मंगवा लो."

"और तरकारी?"

"आलू बना देना मसाले में...पर हां एकदम लटपट होना चाहिए. नारियल न मिले तो ... की चटनी बना देना."

उसे फरीद मियां और सहदेव ठाकुर के आने का पूरा विश्वास तो नहीं था फिर भी उम्मीद ... कि वे आ सकते हैं. फरीद के यहां से वह बहुत बढ़िया चावल का भात खाकर आया था. उस... तो फूल गोभी पकी थी. मसूर की दाल थी और टमाटर की चटनी. उस रूगाई को तो उसने ... लिया था. उतना स्वादिष्ट खाना तो शायद वह उन दोनों को नहीं खिला सकता था पर इतना ... तो उसे जरूर था कि देवी के हाथ की पकी दालपूरी खाकर वे दोनों खुश हो जायेंगे. उसकी ... मां भी उतनी मुलायम दालपूरी नहीं पका पाती थी. एक बार जब बातों ही बातों में अंजली ने ... ब्याह की बात छेड़ दी थी तो हरि कह उठा था, "अभी नहीं मामी...! अभी कुछ दिन और ... इसके हाथ की दालपूरियां खा लेने दो."

वह नहाने चला गया. उसकी मां गोमूत्र को बहुत ही पवित्र बताती थी पर अधिक दिनों से ... उस मूत्र की उस बोझिल गंध को वह जल्द से जल्द अपने ऊपर से उतार देना चाहता था. ... पहले एक बार जब वह कबड्डी खेलता हुआ घायल हुआ था तो घर लौटने पर उसके बाप ने ... उस गहरी चोट पर गाय के मूत्र के साथ न जाने क्या मिलाकर लेपा था. दो ही तीन बार के ... लेपन के बाद उसका वह घाव ठीक हो गया था. आज उसके माथे पर उस घाव का कोई भी नि... तक बाकी नहीं था.

कुएं पर हरि को अंजली का पति मिल गया. हरि जानता था कि वह चीनी लेने दूकान जा ... था फिर भी अनजान बनते हुए उसने उससे पूछा, "कहां जा रहे हो सोद्रों भैया?"

उसका त्वाकरण नाम हरि को बड़ा अजीब लगता था. इसलिए वह उसे सोद्रों नाम से ही ... पुकारता था. त्वाकरण ने भी उतने ही भोलेपन के साथ कहा, "बोमली खरीदने जा रहा हूं."

हरि हंस पड़ा.

कुएं से नहाकर जब वह लौटा तो हरीश रसोई का बाकी सामान लिये दूकान से लौट आ... उसके भाई बहनों में हरीश ही सबसे गोरा था. पर जितना गोरा था उतना ही दुर्बल भी था. ... दिन बीमार रहता था. उसके गले में अब भी मंदिर के पुजारी का दिया हुआ सूता बंधा रहता ... विजय और हरीश दोनों के पीछे हरी की मां को बार-बार अस्पताल दौड़ना पड़ता था.

हरि ने अपनी कमीज से उधड़ गये पेबंद को देखा. उसे अपनी मां के पास ले जाकर टांके ... देने को कहा. उसकी मां ने उसे सुई और धागा थमा दिया. अपनी कमज़ोर पड़ आयी आंखों ... सुई में धागा नहीं पिरो पाती थी. मां के पास कमीज छोड़कर हरि किसनसिंह की पुस्तक लेक... गया.

दो दिन पहले ही उसने उस हस्तलिखित पुस्तक को पढ़ना शुरू किया था. हरि पहले ही ... चुका था कि किसनसिंह ने सोमा और संतू की यह कहानी बांस की पतली कलम को जामुन के ... निचोड़े हुए रंग में डुबोकर लिखी थी. हरि ने आगे पढ़ना शुरू किया. पर न जाने क्या सोचक... से पिछले दो पन्नों को उलटकर एक बार फिर से उस अंश को पढ़ने लगा जो दो दिन पहले ... रुक गया था.

आज भी उसी ठौर पर पहुंचकर वह फिर से खयालों में गोता लगाने लगा. पूछने लगा ... से—क्या सचमुच आज भी उतनी लंबी यात्रा के बाद मजदूरों को संगठित कर पाना कठिन ... उस हड़ताल शब्द पर बार-बार सोचता रहा...यह कौन-सा शब्द था जिसको किसनसिंह ने ... संतू की कहानी में इस्तेमाल किया था! जब डाक्टर क्यूरे से मिलने जा रहा था तो मन ही मन ... आ जाती थी. उसको जब शादी हुई थी तो उसकी मां ने उसके हाथों को हरि की मां के हाथों ... रखकर अपनी बेटी से कहा था, "तू रोती क्यों है? मां की गोद से निकलकर मौसी की ही गो... में जा रही है."

लघु-कथा

ओवर-टाइम

दास वीरेंद्र चैतन्य

आदर्श पति की तलाश में प्रौढ़ावस्था में कदम रखती बड़ी कंपनी में कार्यरत एक युवती ने एक दिन अचानक अपने 'बॉस' को घर पर 'डिनर' के लिये आमंत्रित कर लिया. लगातार कई दिनों तक कार्यालय में भी देर तक रुककर 'ओवर-टाइम' किया. फलस्वरूप उसका रुका हुआ 'प्रमोशन' तो उसे मिला ही, साथ ही उसकी अति विशिष्ट कार्य-क्षमता के आधार पर पुरस्कार स्वरूप एक और 'प्रमोशन' मिला.

सिटी बसों में धक्के खाकर कार्यालय आनेवाली यह महिला अब सुख सुविधाओं से सुसज्जित बंगले में दर्पण के सामने खड़ी अपने चेहरे की झुर्रियों को 'मेक-अप' में ढक रही थी, बाहर कार में बैठा उसका अधिकारी पति 'शापिंग' पर जाने के लिये प्रतीक्षा कर रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि उससे इस हड़ताल शब्द की पूरी जानकारी पाने का प्रयत्न करेगा. वहां पहुंचकर मूल

और महादेव के बाप जब जीवित थे तो दोनों उन दिनों की कहानियां सुनाते रहते थे. का बाप तो कई मौकों पर अपनी पीठ पर के कोड़ों के उन निशानों को दिखाता और "यह काफी नहीं होता था. इन घावों पर नमक-मिर्च छिड़क दिया जाता था."

ई से मसाले की सोंधी गंध आने लगी थी. वह फिर से किसनसिंह की उस पुस्तक में खो पुस्तक की कहानी से कहीं अधिक उसे तिलमिला जाती थीं संतू के बाप की वे दर्दनाक बातें. उसके भोगे हुए सत्य, उसके जिये हुए दर्द की आहें होती थीं. वह सोचता रहा, आखिर क्या था तब से आज तक. बस यही न कि कुछ लोगों की अपनी थोड़ी ज़मीन-जायदाद हो गयी थी. लोग थे ही कितने! उसने एक दिन अपनी मां से पूछा था, "ये कुछ लोगों के अच्छे खासे से बन गये?"

उसकी मां ने गंभीरता बनाये हुए कहा था, "तुम्हारे बाप की तरह कुछ लोगों ने अपनी मेहनत बुद्धिमता से थोड़ा बहुत धन कमाया है और कुछ लोगों ने हरखू सरदार के बेटों की तरह अपने को बेचकर पैसा कमाया है."

हरि की समझ में बात नहीं आयी थी. उसकी मां ने यह भी बताया था उसे कि हरखू सरदार टों का धन बहुत दिनों तक नहीं रहेगा क्योंकि गरीबों की आहों से पैदा हुआ धन था वह. इस ने हरि के दिलोदिमाग में एक खलबली-सी पैदा कर दी थी. कई रातें वह अपने आपसे सवाल रह गया था—

मेरे अपने बाप का धन भी नहीं रहा. क्या वह भी गलत तरीकों से कमाया हुआ था!'

से अपने बाप की जायदाद के चले जाने का जो दुख हुआ था, वह इस अनायास के खयाल से आप कम हो गया था. वजह क्या थी, समझने की जरूरत नहीं समझी उसने. मां के कहने से भी एक-दो बार हरि के मन में शंका पैदा हुई थी. खैर, उसके अपने गांव में तो कोई धनी-आदमी था ही नहीं लेकिन गुडलेंस, फिर उधर पूद्रदोर और रोव्येर में कई लोगों की जमीनें बड़े-बड़े घर थे. घोड़े-गाड़ियां थीं. वह सब देखते हुए हरि ने अपने आपसे पूछा था कि क्या गन्ने के खेतों में काम करके कमाया गया था या इन्हें पाने के लिए धांधलियां की गयी थीं? अपने आप को जवाब नहीं दे सका था पर मां ने जब हरखू सरदार वाली बात कही तो हरि हर पर संदेह करने लगा. महादेव का बाप तो हमेशा यही कहता था कि उसके देखते-देखते कई रातों-रात धनी हुए थे. तांबी भी वैसा ही कहता था.

मूसा के बाहर से आवाज देकर भीतर आ जाने पर उसने अपने हाथ की पुस्तक को बंद कर खाट पर एकदम हरि की बगल में बैठते हुए मूसा ने पूछा, "आ रहे हैं वे लोग?"

"उम्मीद तो है पर पता नहीं. फरीद चाचा के मानने पर है."

"मुझे एक काम से निकलना था. पर कहीं ऐसा न हो कि मैं उधर जाऊं और फरीद खालू यहां आयें."

"कहां जाना है तुम्हें?"

"मामू. हमारे पड़ोस में जो उस्मान है न, उसके छोटे भाई के लिए एक लड़की देखने जाना

"कितने बजे?"

"समय की तो कोई ऐसी बात नहीं."

"तो फिर ऐसा क्यों नहीं करते कि उधर चले ही जाओ और डेढ़-दो बजे से पहले लौट आओ. कि अगर उनका आना हुआ भी तो मुझे नहीं लगता कि वे बारह-एक से पहले पहुंचेंगे. महादेव चाचा कह रहे थे न कि वे इस इलाके में बच्चों को मक्का-मदीना दिखाने जा रहे थे. तो लगता है कि वे लोग घूमते-घामते ही यहां पहुंचेंगे."

"तो मैं हो आऊं उधर से? उस्मान तो तैयार बैठा है."

"कैसे जाओगे?"

"साइकिल से ही जाना अधिक अच्छा रहेगा."

"तो फिर ठीक है. तुम हो आओ."

"मसाले की बड़ी सोंधी गंध आ रही है."

"जिनके लिए तैयारी हो रही है, पता नहीं वे आयेंगे भी या नहीं."

"वे आयें या न आयें, मेरे हिस्से का तो रखना ही होगा."

उसके चले जाने के बाद हरि ने फिर से पुस्तक खोल ली.

क्रमशः

अगले अंक में

किसनसिंह की पुस्तक पढ़कर हरि पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?...क्या फरीद मियां और सहदेव ठाकुर का आना हो सका ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता से स्वाधीनता की ओर

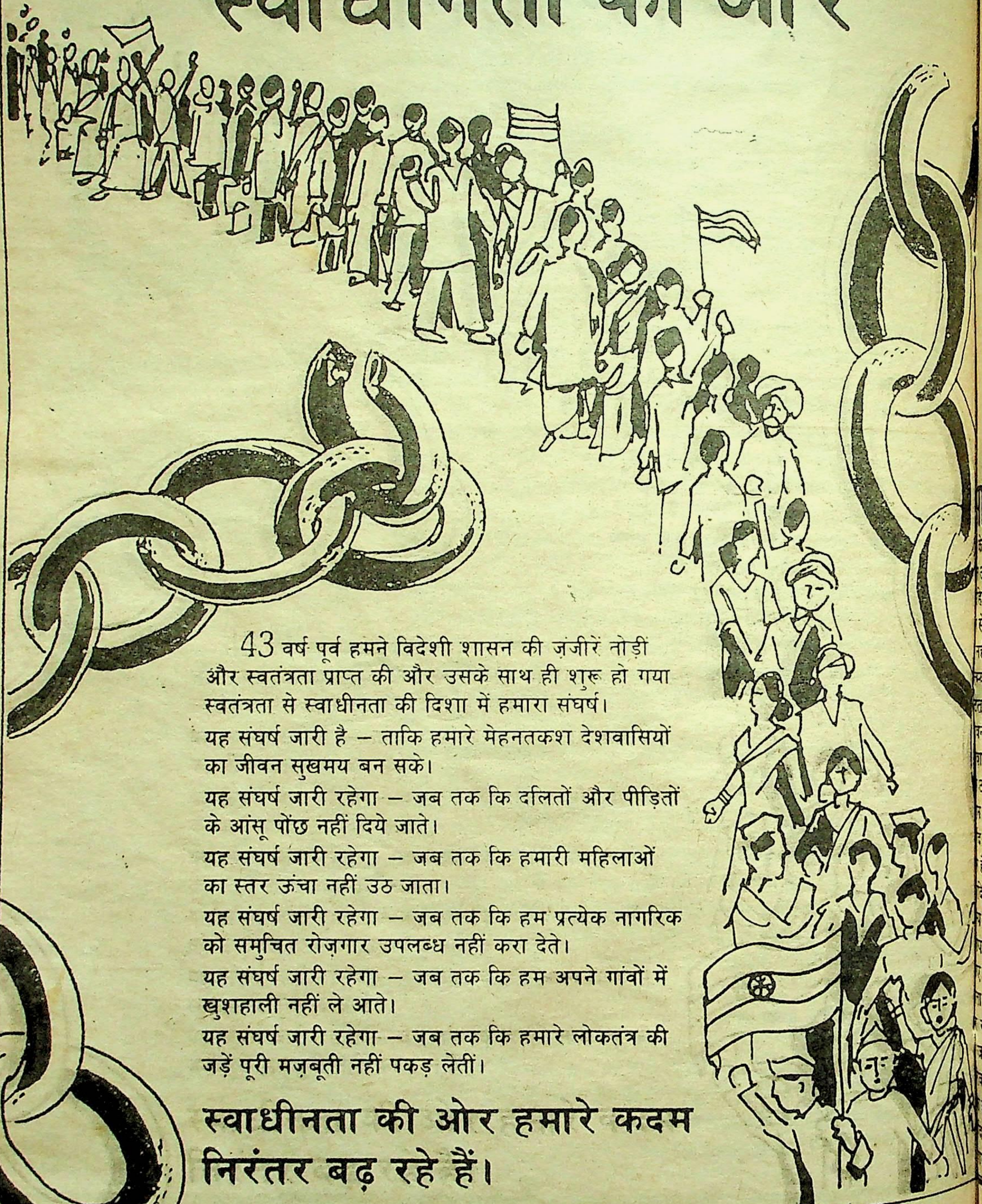

43 वर्ष पूर्व हमने विदेशी शासन की ज़ंजीरें तोड़ीं और स्वतंत्रता प्राप्त की और उसके साथ ही शुरू हो गया स्वतंत्रता से स्वाधीनता की दिशा में हमारा संघर्ष।

यह संघर्ष जारी है – ताकि हमारे मेहनतकश देशवासियों का जीवन सुखमय बन सके।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि दलितों और पीड़ितों के आंसू पोंछ नहीं दिये जाते।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हमारी महिलाओं का स्तर ऊंचा नहीं उठ जाता।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हम प्रत्येक नागरिक को समुचित रोज़गार उपलब्ध नहीं करा देते।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हम अपने गांवों में ख़ुशहाली नहीं ले आते।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हमारे लोकतंत्र की जड़ें पूरी मज़बूती नहीं पकड़ लेतीं।

स्वाधीनता की ओर हमारे कदम निरंतर बढ़ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन विज्ञान—आयुर्वेद

—आचार्य राजकुमार जैन

आयु के लिए कौन-सी वस्तु लाभदायक है या किस वस्तु के द्वारा आयु की हानि हो सकती है? किस प्रकार की आयु हितकर होती है और कैसी आयु अहितकर होती है? यह विषय जिस शास्त्र में वर्णित हो तथा रोग का निदान और उसके प्रतिकार के विषय में जिस शास्त्र में वर्णन किया गया हो—विद्वानों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूंकि आयु को प्राप्त करता है तथा आयु के विषय में जान लेता है, इसलिए मुनि श्रेष्ठों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र का यदि ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त करने का उपाय ज्ञात हो जाता है.

...युर्वेद एक शाश्वत जीवन विज्ञान है. ...प्रत्येक क्षण की प्रत्येक ...आयुर्वेदीय सिद्धांतों में ...त है. आयुर्वेद मानव ...से पृथक कोई भिन्न नहीं है, अपितु दोनों में ...भाव होने से अत्यधिक ...है. सामान्यत: मनुष्य ...न की आद्यंत प्रतिक्षण ...ली श्रृंखला ही आयु है ...आयु ही जीवन है. आयु ...ही आयुर्वेद है, अत: ...एक संपूर्ण जीवन ...है. आयुर्वेद में ...त सिद्धांत इतने ...व्यापक जन-...योगी एवं सर्व साधारण ...हितकारी हैं कि ...पूर्वक उन्हें अमल में ...यथाशीघ्र आरोग्य लाभ ...जा सकता है. अत: ...क, मानसिक एवं ...स्वास्थ्य की दृष्टि से ...की उपयोगिता ...है. आयुर्वेद केवल चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु यह शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, तत्व विज्ञान, दर्शन शास्त्र, आचार शास्त्र एवं धर्म-शास्त्र का एक ऐसा अद्भुत स्वरूप है, जो संपूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है. अत: नि:संदेह यह एक संपूर्ण जीवन विज्ञान है. आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं हैं अपितु आध्यात्मिक तत्वों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है. इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्य स्रोत वेद तथा उपनिषद के बीज ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं. इसके अतिरिक्त समकालीन होने के कारण दर्शन शास्त्र एवं धर्म शास्त्र ने भी आयुर्वेद के आध्यात्म संबंधी कतिपय सिद्धांतों को प्रभावित किया है. यही कारण है कि आयुर्वेद का आध्यात्म पक्ष भी उतना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बच्चों की पढ़ाई या सेहत का मामला हो तो मैं समझौता कभी नहीं करती..."

"इसीलिए मैं उन्हें नियमित रूप से झंडु स्पेशल च्यवनप्राश देती हूँ. सचमुच यह स्पेशल है. शुद्ध हरा आँवला, पीपली, वंशसालोचन, कुंडकोल, लौंग, जावंत्री, इलायची और अकलकरा जैसी जड़ी-बूटियाँ. सब को शुद्ध देसी घी में बनाया गया है. मेरा बाज़ार का आना-जाना तो रोज़ ही लगा रहता है, मैं जानती हूँ कि अच्छी और उम्दा दर्जे की चीज़ें हमेशा कुछ महँगी ही मिलती हैं. फिर, जब क्वालिटी की बात हो तो हर कोई झंडु को जानता है और उस पर भरोसा करता है.

मैं, अपने बच्चों को झंडु स्पेशल च्यवनप्राश बारहों महीने देती हूँ. इसीलिए उनमें छोटी-मोटी बीमारियों का मुक़ाबला करने की शक्ति आ गई है. ख़ास तौर से खाँसी और जुकाम.

हाँ, थोड़ी सी परेशानी मुझे ज़रूर है इसमें मिले तत्त्व इतने ताज़ा और शुद्ध हैं कि इसका स्वाद भी कमाल है. बच्चों का बस चले तो वे इसे दिनभर खाते रहें. हर दो-चार दिन बाद मुझे बोतल कहीं दूसरी जगह छिपाकर रखनी पड़ती है. क़ीमती है न!"

अब १ किलो के आकर्षक पॉलिजार में भी उपलब्ध.

क़ीमती ही सही **झंडु स्पेशल च्यवनप्राश.**

असली च्यवनप्राश

CLARION/B/ZP/17/242

सबल एवं परिपुष्ट है, जितना कि उसका भौतिक तत्व विश्लेषण संबंधी पक्ष है.

इस शास्त्र में मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ-साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गंभीर विचार किया गया है. शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व और उसके प्रगतिशील विकास क्रम को भी आयुर्वेद में यथोचित महत्व दिया गया है. यही कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र मात्र चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु वह संपूर्ण जीवन विज्ञान है, जिसमें मानव जीवन की दैनिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं पर गंभीर अनुचिंतन के पश्चात उनके समाधानात्मक उपाय प्रतिपादित किये गये हैं. पृथ्वी पर जबसे मानव जीवन प्रारंभ हुआ तब ही से आयुर्वेद अपने मौलिक स्वरूप के साथ विद्यमान है. अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वह शाश्वत है. अपनी कतिपय मूलभूत विशेषताओं के कारण आयुर्वेद मानव जीवन के जितना अधिक निकट है उतना कोई अन्य शास्त्र नहीं है. यही कारण है कि भीषण आघातों एवं प्रहारों के बावजूद आज वह न केवल जीवित है, अपितु सुरक्षित है. हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि आयुर्वेद का अतीत अत्यंत गौरवमय रहा है. किंतु काल गति जब दुर्भाग्य के साथ चलने लगी तो आयुर्वेद का विपुल साहित्य काल कवलित होने लगा और इसके साथ-साथ आयुर्वेद का गौरव भी शनैः शनैः क्षीण होता गया.

आयुर्वेद शास्त्र की यह एक मौलिक विशेषता है कि इसमें मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गंभीर विचार किया गया है. शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व का विवेचन, आत्मा और मन के विषय में स्वतंत्र दृष्टिकोण तथा शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास क्रम का यथोचित व... आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता के सबल प्रमाण हैं. उसकी वैद्यक विद्या अपनी पृथक पद्धति एवं चिकित्सा संबंधी व्यापकता के कारण विशिष्ट महत्वपूर्ण है. पोषण संबंधी तत्वों एवं रासायनिक पदार्थों का उसमें विशिष्ट रूप से विभिक्तीकरण किया गया जो पूर्णतः मात्रा और गुण पर आधारित है. विशिष्ट विधि पूर्वक रस-रसायन-पिष्टी-भस्म, चूर्ण-वटी लेप-घृतपाक, तैलपाक, अवलेह-मोदक आदि कल्पनाएं और समस्त वनौषधियों के प्रयोग ने इस विज्ञान को निश्चय ही मौलिक स्वरूप प्रदान किया है. अपनी सरलता और रोगमुक्त करने की क्षमता के कारण आयुर्वेद की अनेक प्रक्रियाओं ने ग्रामीण जन जीवन में इतनी आसानी से प्रवेश पा लिया है कि आज भी गांव में किसी के व्याधित या रोग पीड़ित हो जाने पर विभिन्न काढ़ों (क्वाथ), लेपों आदि के द्वारा ग्रामीण जन उपचार करते देखे जाते हैं. इसका मूल कारण यही है कि आयुर्वेद मानव जीवन के अत्यधिक सन्निकट है.

महर्षि चरक और सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित रोग निदान और चिकित्सा संबंधी सिद्धांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अंतरिम प्राण-बल ...षण पर भी बल दिया ... रोग के मूल कारण को ...आहार विहार जनित ...र जिस प्रकार संयम ...हार गत पथ्य के नियम ...ये हैं वे अत्यंत उत्कृष्ट ...हारिक हैं. जो लोग ... होमियोपैथी, रंग ...सा, जल चिकित्सा में ... रखते हैं, वे भी आज ... के महत्व को समझने ... और रोग निवारण के ...गी के चिकित्सा क्रम में ...रा विनिर्मित आहार ... क्रम को विशेष महत्व ... है. आयुर्वेद विज्ञान के ... मौलिक सिद्धांतों को ...कालीन विभिन्न ... प्रणालियों ने बड़ी ... के साथ अविकल रूप ...कर आत्मसात कर ... यह एक निर्विवाद ... कि प्राकृतिक चिकित्सा ... सिद्धांत एवं ...खाएं आयुर्वेद मूलक हैं. ...र कतिपय विद्वानों के ...सार प्राकृतिक चिकित्सा ... कोई स्वतंत्र चिकित्सा ... नहीं है, अपितु आयुर्वेद ...क शाखा विशेष है. ...कार संपूर्ण आयुर्वेद को ...विभाजन की सुविधा की ... आठ अंगों में ... कर दिया गया है और ...विषय को अलग-अलग ... संबंधित कर दिया गया ... प्रकार प्राकृतिक ...सा पद्धति को भी आयुर्वेद ... स्वतंत्र अंग मान लिया ...ता है. इसी प्रकार ... काल में समुद्भूत एवं ... को प्राप्त हुई अन्य ... प्रणालियों ने भी ... के अनेक विषयों एवं सिद्धांतों को अविकल रूप से ग्रहण कर आत्मसात कर लिया है. अतः इस तथ्य को निःसंकोच रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि आयुर्वेद विज्ञान ने अन्य चिकित्सा प्रणालियों के केवल उद्भव में ही योगदान नहीं किया है, अपितु उनके विकास एवं प्रसार हेतु भी मार्ग प्रशस्त किया है.

आयुर्वेद शब्द अपने आप में परिपूर्ण एवं अर्थ गांभीर्ययुक्त है. आयु और वेद (ज्ञान) इन दो शब्दों के संयोग से आयुर्वेद शब्द निष्पन्न हुआ है. जिसका सामान्य अर्थ होता है—जिसके द्वारा आयु (जीवन) का समुचित ज्ञान प्राप्त हो,वही आयुर्वेद है. महर्षि चरक ने आयुर्वेद की जो समीचीन व्याख्या की है वह निम्न प्रकार है—

''जिस शास्त्र में आयु का विषय अर्थात् स्वरूप प्रतिपादित किया गया हो, जिस शास्त्र का अध्ययन करने से आयु संबंधी ज्ञान प्राप्त होता है अथवा जिस शास्त्र के विषय में विचार करने से हितकर आयु, अहितकर आयु, सुखकर आयु और दुःखकर आयु के विषय में जानकारी प्राप्त होती है अथवा जिस शास्त्र में बताते हुए नियमों का पालन करने से दीर्घायु प्राप्त की जा सकी है उसका नाम आयुर्वेद है. इसी प्रकार स्वस्थ मनुष्य की प्रकृति, विकृति, शुभ और अशुभ बताने वाले दूत और अरिष्ट लक्षण इत्यादि के उपदेशों से जो शास्त्र आयु का विषय अर्थात् यह स्वल्पायु है अथवा मध्यमायु है या

पाँच उंगलियाँ साथ मिले तो मुट्ठी कहलाए
उंगलियों की चुस्ती-फुर्ती मुट्ठी की जान बन जाए.

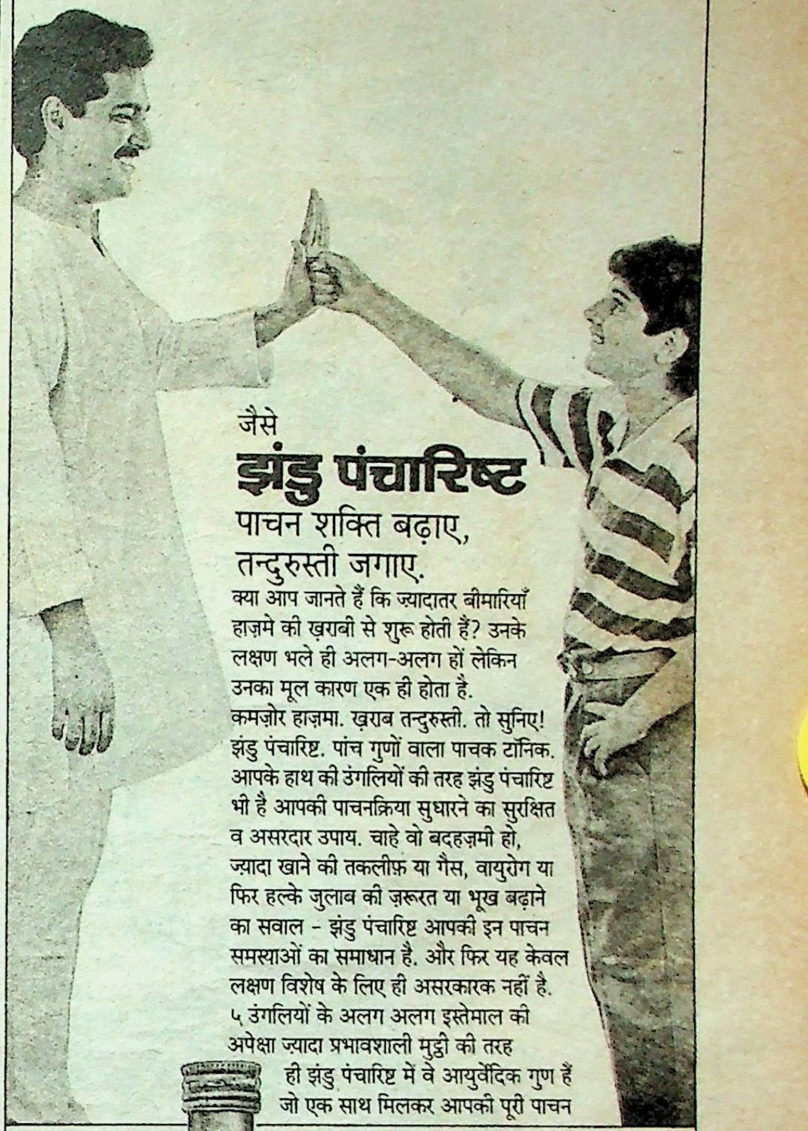

जैसे
झंडु पंचारिष्ट
पाचन शक्ति बढ़ाए,
तन्दुरुस्ती जगाए.

क्या आप जानते हैं कि ज़्यादातर बीमारियाँ हाज़मे की ख़राबी से शुरू होती हैं? उनके लक्षण भले ही अलग-अलग हों लेकिन उनका मूल कारण एक ही होता है. कमज़ोर हाज़मा. ख़राब तन्दुरुस्ती. तो सुनिए! झंडु पंचारिष्ट. पांच गुणों वाला पाचक टॉनिक. आपके हाथ की उंगलियों की तरह झंडु पंचारिष्ट भी है आपकी पाचनक्रिया सुधारने का सुरक्षित व असरदार उपाय. चाहे वो बदहज़मी हो, ज़्यादा खाने की तकलीफ़ या गैस, वायुरोग या फिर हल्के जुलाब की ज़रूरत या भूख बढ़ाने का सवाल - झंडु पंचारिष्ट आपकी इन पाचन समस्याओं का समाधान है. और फिर यह केवल लक्षण विशेष के लिए ही असरकारक नहीं है. ५ उंगलियों के अलग अलग इस्तेमाल की अपेक्षा ज़्यादा प्रभावशाली मुट्ठी की तरह ही झंडु पंचारिष्ट में वे आयुर्वेदिक गुण हैं जो एक साथ मिलकर आपकी पूरी पाचन क्रिया को सुधारते और उसे स्वस्थ बनाते हैं. झंडु पंचारिष्ट का नियमित इस्तेमाल कीजिए. कुछ ही दिनों में आप जान जाएंगे कि आप सेहतमंद हो रहे हैं. याद रखिए, अच्छा हाज़मा याने अच्छी तन्दुरुस्ती! और फिर जान है तो जहान है!

४५० मिली. और २०० मिली. में उपलब्ध.

झंडु पंचारिष्ट
पाँच गुणोंवाला पाचक टॉनिक

CLARION/B/ZP/20/242

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

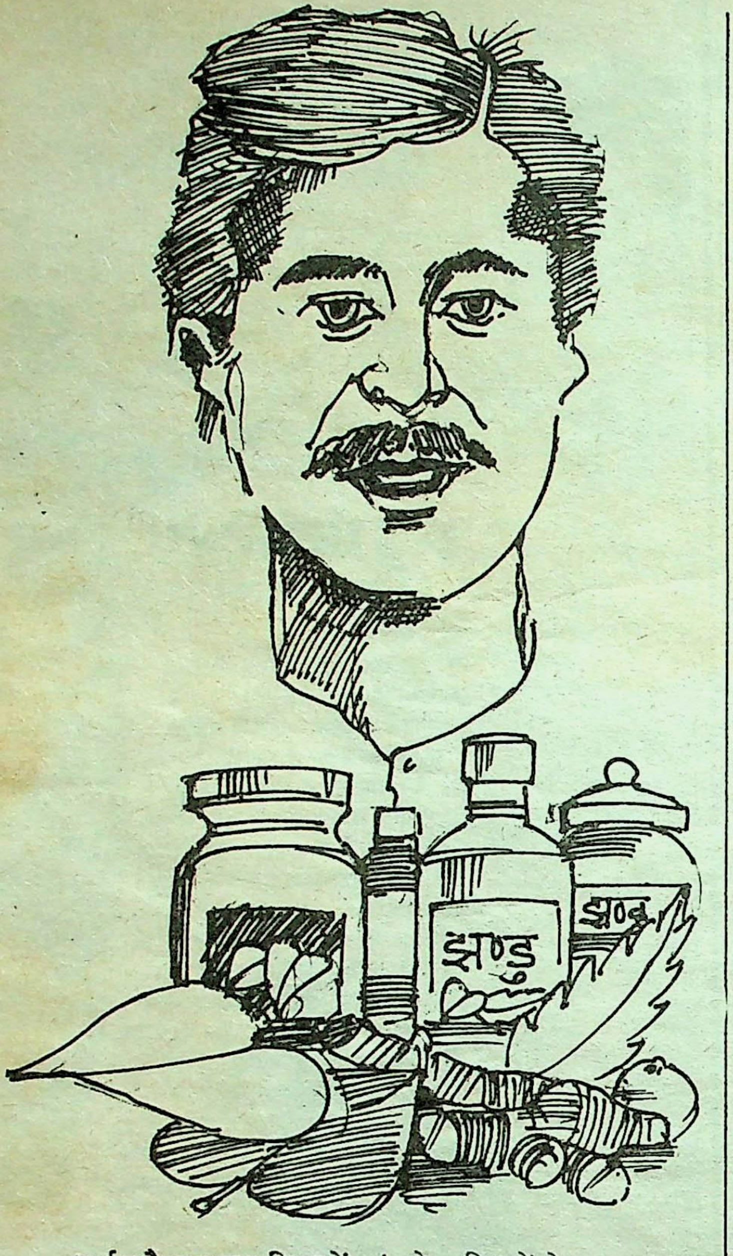

दीर्घायु है इन सब विषयों का ज्ञान करा देता है, वही आयुर्वेद है.''

आयु के लिए कौन-सी वस्तु लाभदायक है या किस वस्तु के द्वारा आयु की हानि हो सकती है? किस प्रकार की आयु हितकर होती है और कैसी आयु अहितकर होती है? यह विषय जिस शास्त्र में वर्णित हो तथा रोग का निदान और उसके प्रतिकार के विषय में जिस शास्त्र में वर्णन किया गया हो—विद्वानों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूंकि आयु को प्राप्त करता है तथा आयु के विषय में जान लेता है, इसलिए श्रेष्ठों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र का यदि ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त करने का उपाय ज्ञात हो जाता है. क्योंकि इस शास्त्र में बतलाये हुए आहार-विहार संबंधी नियमों और अन्य सदाचारों का पालन करने से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है. इसलिए ऋषियों, आचार्यों और विद्वानों ने इस शास्त्र को आयुर्वेद के नाम से अभिहित किया है.

स्वस्थ मनुष्यों के लिए आयुर्वेद शास्त्र में दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या तदनुसार आहार-विहार का विधान बतलाया गया है. जो उसके अनुसार आचरण करता है वह निश्चय ही स्वस्थ रहता है और अपनी सुदीर्घ आयु का निर्बाध रूप से उपभोग करता है. क्योंकि देश, काल, ऋतु और अपनी प्रकृति के अनुरूप सम्यक आहार-विहार करने से मानव शरीर में स्थित वात-पित्त, कफ ये तीनों दोष समान (प्राकृत) अवस्था में रहते हैं, जठराग्नि भी सम रहती है (अर्थात् न्यूनाधिकता को प्राप्त नहीं होती), धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद, अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल (स्वेद, मूत्र-पुरीष) प्रसन्न रहते हैं. इस प्रकार जिस मनुष्य के शरीर में समस्त क्रियाएं प्राकृत रूप से संपन्न होती रहती हैं, शरीर में किसी प्रकार की विषमता नहीं होती—उसका शरीर कभी विकार ग्रस्त नहीं हो सकता और वह सदैव स्वस्थ रहता है. अतः स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और इसके लिए सम्यक आहार विहार का उपदेश करना आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है.

मानव शरीर में वातादि दोषों में जब मिथ्या आहार-विहार या देश-काल ऋतु वैषम्य के कारण विषमता उत्पन्न हो जाती है तो वे धातुओं को दूषित कर उनमें भी विषमता उत्पन्न कर देते हैं. अनेक बार प्रज्ञापराध के कारण भी वि प्रकार के रोगों की उत्पत्ति शरीर में हो जाती है. अतः औषधोपचार, लंघन आदि तथा अन्य चिकित्सा विधि द्वारा विकारोपशमन या रोग निवृति हेतु उपाय किये ज हैं. यह भी आयुर्वेद का ए प्रयोजन है. इस प्रकार प्र स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य रक्षा करना और यदि, कि कारणवश विकारोत्पत्ति हो तो यथा विधि उसका उप करना—ये दो आयुर्वेद के मुख्य प्रयोजन हैं. इससे य स्पष्ट है कि आयुर्वेद के दो हैं—एक स्वास्थ्य रक्षा सं पक्ष और दूसरा चिकित्सा आयुर्वेद में प्रथमतः स्वास् रक्षा संबंधी पक्ष पर विशेष दिया गया है. क्योंकि मनु यदि अपने दैनिक क्रिया कलापों एवं संयमित आहा विहार के द्वारा स्वस्थ बना रहता है तो वह न केवल व्यक्तिगत जीवन, अपितु सामाजिक वातावरण एवं के लिए उपयोगी है. ऐसी स्थिति में द्वितीय चिकित् पक्ष अर्थहीन हो जाता है. भी सामान्यतः स्वस्थ सम निर्माण की दिशा में चिकि पक्ष की सार्थकता उतनी न है, जितनी अपने आहार आचार के द्वारा स्वस्थ बने की है. इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति समाज और देश के अपने कर्त्तव्य निर्वाह की भूमिका अदा कर सकता

भारतीय चि
केंद्रीय प
१ ई/६, स्वामी राम
नयी दिल्ली-११००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाही : समापन किस्त

पुरुषोत्तम

□ भगवती शरण मिश्र

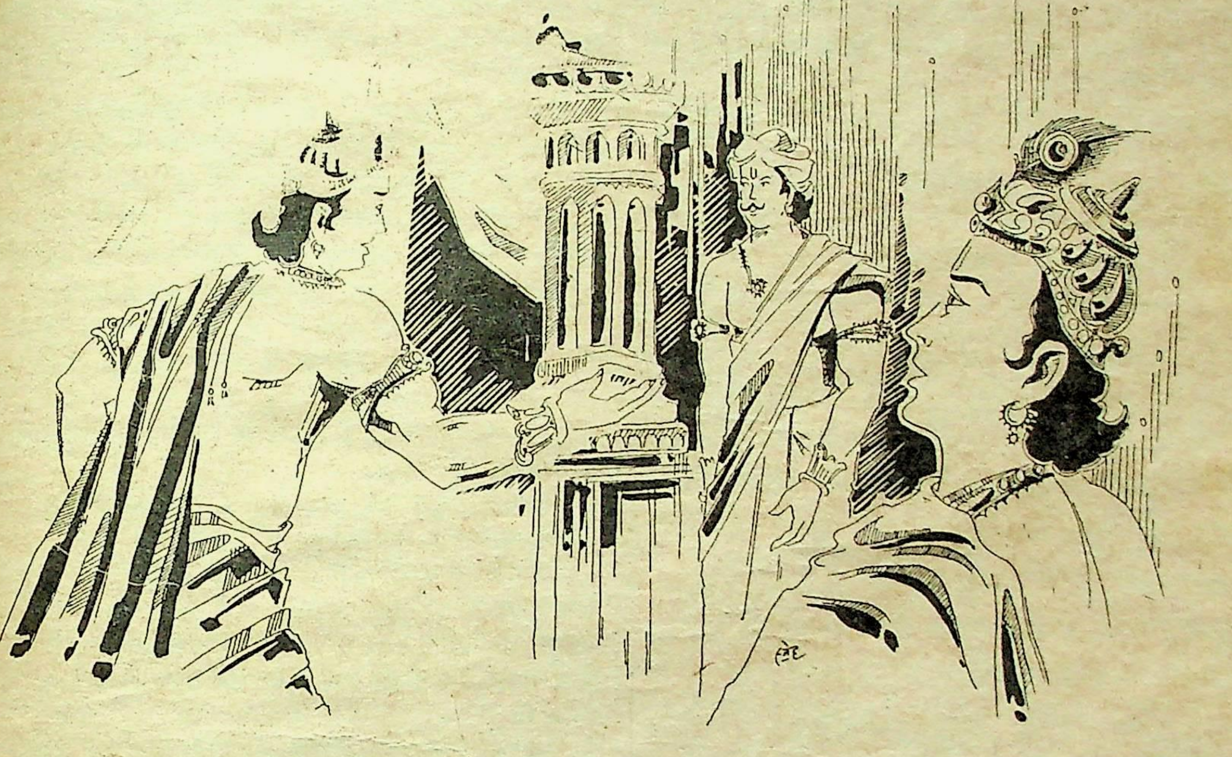

प्रसन था वह जा गायब था—ठीक उसी समय जब से मणि का अता-पता नहीं था. सत्राजित के महल में. प्रसेन अर्थात सत्राजित का सगा भाई—सहोदर. श्रीकृष्ण के गुप्तचरों ने पक्की सूचना दे दी थी.

''स्पष्ट है कि प्रसन के हाथों मणि की किसी गुहा-गह्वर में छिपाकर रखने की सत्राजित की योजना है. महाराज के लिए मणि की तुम्हारी मांग न उसे इस हेतु विवश किया है.''

''प्रसेन नहीं भी लौट सकता है.'' श्रीकृष्ण ने आशंका व्यक्त की.

''यह संभव है. उसे लौटना होता तो अब तक लौट सकता था.'' संकर्षण ने आशंका की पुष्टि की.

''इसका तात्पर्य यह कि....'' श्रीकृष्ण बोलते-बोलते रुक गये. अब तक प्रायः निर्विकार रहे प्रफुल्ल आनन पर चिंता की रेखाएं पुनः उभर आयीं. इनकी बड़ी-बड़ी आंखें दो विशाल प्रश्न-चिह्न बन बलराम के मुख से चिपक-सी गयीं. दो क्षण को दोनों चुप रहे. मौन का एक संत्रासक साम्राज्य उस मंत्रणा-कक्ष में व्याप्त हो गया. बलराम अपने अनुज के दर्द का अनुभव कर रहे थे और पूरी गहराई से कर रहे थे. प्रसेन के नहीं लौटने का तात्पर्य श्रीकृष्ण पर लगे कलंक का स्थायी हो जाना था—ठीक शशांक पर मढ़े मलिन और विद्रूप धब्बों की तरह.

''प्रसेन मारा भी तो जा सकता है. इतनी कीमती मणि लेकर वह एकाकी निकला है. गुप्तचरों की सूचना के अनुसार सत्राजित की छोटी सेना की टुकड़ी का कोई सैनिक तक नहीं अनुपस्थित है.'' श्रीकृष्ण ने ही मौन तोड़ा. चांद को छोड़कर खिसके बादलों की तरह चिंता की रेखाएं उनके शुभ्र आनन को उन्मुक्त कर चुकी थीं.

''एक संभावना भी बनती है और तब हमें इस कार्य में और शीघ्रता करनी चाहिए.'' बलराम ने एक तरह से अपना निर्णय सुनाया.

''किस कार्य में?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसेनान्वेषण के कार्य में. इसके पूर्व कि उसके शव का भी पता नहीं लगे और वह सड़-गल कर समाप्त हो जाय हमें उसे ढूंढ़ ही निकालना चाहिए मृत अथवा जीवित."

"इसका अर्थ यह कि सभी दिशाओं में हम सैनिक भेज दें." श्रीकृष्ण कुछ आश्वस्त हो बोले.

बलराम मुस्कराए.

"इसकी आवश्यकता नहीं," उन्होंने कहना आरंभ किया, "केवल तुम्हारा जाना ही पर्याप्त है. सैनिक इस अभियान को उतना महत्व नहीं भी दे सकते और फिर इसमें वीरता के साथ-साथ बुद्धि-चातुर्य की भी आवश्यकता है. प्रसेन ऐसे ही शूर-वीर है, कई सामान्य सैनिकों के लिए वह एकाकी ही भारी पड़ेगा."

"मैं ? मैं सभी दिशाओं में अकेले कैसे जा सकता हूं ? मैं तो अभी इसी क्षण प्रस्थान करने को प्रस्तुत हूं पर......"

"मैं जानता हूं. जानता हूं तुम्हारे कर्मयोगी रूप को. कर्तव्य का निर्धारण हो जाने के पश्चात् एक क्षण का भी विलंब तुम्हें सह्य नहीं. पर तुम्हारे असमंजस को भी पकड़ पा रहा हूं. एक ही साथ तुम्हें सभी दिशाओं में दौड़ने की आवश्यकता नहीं. प्रसेन तो किसी एक ही दिशा में गया होगा अथवा आगे जाकर दिशा-परिवर्तन कर लिया होगा उसने." बलराम ने गंभीरता से कहा.

"वह तो ठीक. पर उस दिशा का पता कैसे लगे ? लग जाय तो अभी मैं..."

बलराम के मुख पर पुनः एक मुस्कान खेली. जैसे वे इस बात को लेकर पूरी तरह आश्वस्त थे. जैसे उन्हें पता हो कि प्रसेन किस ओर गया हो. जैसे वह उन्हीं की आंखों के सामने निकला हो.

"तुम्हें लोग अंतर्यामी कहते हैं." संकर्षण ने कहना आरंभ किया, "बहुत बातें तुम सहज ही समझ जाते हो. तुम्हारी छठी इंद्रिय कुछ ज्यादा ही विकसित है अथवा गायत्री मंत्र के तुम्हारे नित्य जाप ने भगवान सविता का कुछ अधिक अनुग्रह हो तुम्हें उपलब्ध करा दिया है और तुम्हारी बुद्धि अधिक ही प्रखर हो आयी है. पर जैसे सूर्य को भी ग्रहण लग जाता है वैसे ही इस समय तुम्हारी सोचने-समझने की शक्ति कुछ कुंठित हो आयी है. प्रसेन किस दिशा में गया है यह पता लगाना अत्यंत सहज है."

"कैसे ?" श्रीकृष्ण कुछ नहीं समझकर बोले.

"तुम्हारे गुप्तचरों ने तो बताया होगा कि वह रथ पर निकला है अथवा अश्व पर. अगर रथ पर निकला है तो और आसान है. रथ-चक्र के चिह्न पकड़कर...."

"ठहरिए भैया, इतना तो मैं भी समझता था. प्रसेन के रथ-चिन्हों की पहचान बहुत कठिन नहीं थी, पर दोनों भाइयों के रथ तो उनके महल में ही पड़े हैं. प्रसेन का प्रिय अश्व अवश्य गायब है."

"तब तो और आसान है."

"कैसे ? अश्व के खुरों के चिह्न कभी के मिट गये होंगे."

"मिट तो रथ के चिह्न भी गये होंगे कम-से-कम वहां तक, जहां तक लोगों का आना-जाना बना रहता है. पर अश्व की एक विशेषता है."

"क्या ?"

"अश्व अपनी राह में खुरों के निशान ही नहीं, कुछ और पहचान भी छोड़ता है. तुम प्रसेन के अश्व के पोषकों से भेद लो—अपने आदमियों को भेजकर. अश्व के मल-मूत्र की पहचान कर लें वे. उनकी गंध तक की. ऐसे प्रशिक्षित लोग अपनी सेना में भी हैं. उन्हें ही प्रसेन के यहां भेजकर इन बातों का पता करो. हो सके तो उसके अश्व-सेवकों में से एक-दो को अपने पक्ष में कर लो. राजनीति में सब चलता है."

बलराम की बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए. उनका कर्तव्य निर्धारित हो चुका था. पथ प्रशस्त. अग्रज की बुद्धि का लोहा उन्हें पुनः एक बार और मानना पड़ा था.

"एक बात और करनी है." संकर्षण ने महल-द्वार तक उन्हें छोड़ते हुए कहा था.

"क्या ?" मुख और आंख दोनों से पूछा था श्रीकृष्ण ने. उनमें स्पष्टतः शीघ्रता थी. वे स्पंदन की ओर एक पैर बढ़ा चुके थे.

"न सही अपने साथ सैनिक पर साक्ष्य के लिए नगर के कुछ गण मान्य व्यक्तियों को अवश्य ले लेना. प्रसेन अकेला गया है तो सैनिकों की सचमुच आवश्यकता नहीं, पर अगर वह सचमुच काल-कवलित हो गया हो तो नागरजन ही तुम्हारे कार्य आयेंगे वर्ना प्रसेन की हत्या का एक नया कलंक भी तुम पर....."

"ठीक है," श्रीकृष्ण ने शीघ्रता में कहा और स्पंदन पर सवार हो गये. सारथी ने अश्वों की वल्गाएं संभालीं तो श्रीकृष्ण के मुख पर विषम स्थिति में भी स्मिति की एक रेखा खिंच गयी. उनका मन अकस्मात् गोकुल की गलियों में लौट गया था. मां यशोदा का कान उमेठना याद हो आया था, "मत देखना फिर इस चतुर्थी के चांद को." कलंक पर कलंक की संभावना बढ़ती जा रही है. सच कितना अशुभ था वह चांद-दर्शन ? कौन चांद-दर्शन ? भगवान का मन अब भावुक हो आया था. गगन के उस चांद के दर्शन अशुभ भी हो सकते हैं पर गोकुल की गलियों, कुंज-निकुंजों का वह चांद ? राधा का वह चंद्र-मुख ? काश, अगर राधा आज उनके साथ होती तो ? तो क्या वे इस तरह व्यथित और उद्विग्न होते ? उनके मुख की एक-एक भंगिमा, एक-एक सूक्ष्म से सूक्ष्मतम रेखा से परिचिता राधा क्या उनको एक क्षण के लिए भी व्यग्र देख पाती ? सारे दुःखों को स्वयं पीकर वह उन्हें आश्वस्त और प्रसन्न कर देने के किसी प्रयास से मुख मोड़ती क्या? □

[यह उपन्यास शीघ्र ही राजपाल एंड संस, दिल्ली से प्रकाश्य.]

नूतन हिन्दी शब्द कोश

- हिन्दी भाषा का आधुनिक प्रचलित सही ज्ञान
- कठिन शब्दों के अर्थ
- पर्यायवाची, विपरीतार्थक शब्द
- मुहावरें तथा लोकोक्तियां
- लगभग 30,000 शब्दार्थ

पृष्ठ 992, मूल्य 40/- रु. (डाकखर्च सहित)
वी.पी.पी. द्वारा मगांए.

न्यू स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन्स
1813/A, चन्द्रावल रोड, दिल्ली-110007.

INCREASE YOUR VOCABULARY

Learn to spell, pronounce & use words correctly.
Don't let English be a difficult & troublesome language any more.

Pages 1120 Rs 50/-
Postage Free
(Only in India)

POPULAR OXFORD
ENCYCLOPAEDIC ILLUSTRATED
DICTIONARY
Eng.-Eng. & Hindi

Contains 86000 main entry words, their pronunciations, followed by grammar & meaning in English & Hindi with phrases or derivatives added to it.

Rush your order by V.P.P

NEW STANDARD PUBLICATIONS
1813/A, Chandrawal Road, Delhi-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक/सरकारी संस्थान प्रगति के पथ पर

भारत में पेट्रोलियम संरक्षण

पी.के. गोयल,
पेट्रोलियम कंजर्वेशन रिसर्च एसोसिएशन

१९७३ की मूल्यवृद्धि से पहले देश में पेट्रोलियम पदार्थों का आयात भारत के कुल आयात (१९७०-७१ में १३२ करोड़ रुपये) का लगभग ८-१० प्रतिशत ही होता था. आज पेट्रोलियम उत्पादों के आयात पर लगभग ६००० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च होती है जो कुल आयात का २५ प्रतिशत है. यह तब है जब कि तेल तथा गैस का घरेलू उत्पादन कई गुना बढ़ गया है.

पेट्रोलियम उत्पादों की बढ़ती हुई कीमतों और इस पर विदेशी मुद्रा के भारी खर्च को देखते हुए १९७६ में भारत सरकार ने पेट्रोलियम कंजर्वेशन रिसर्च एसोसिएशन नामक संस्था का गठन किया जो पेट्रोलियम संरक्षण के क्षेत्र में काम कर सके.

इसे जो काम सौंपे गये थे, वे इस प्रकार थे :—

१. औद्योगिक तथा संगठित यातायात क्षेत्र में ईंधन की बचत का अध्ययन किया जाये.

२. यातायात, घरेलू तथा कृषि जैसे असंगठित क्षेत्रों के लिए प्रचार अभियान चलाया जाये, जिसमें रेडियो, टी.वी. अखबार, होर्डिंग आदि सभी प्रचार साधनों का उपयोग किया जाये.

३. ईंधन में बचत करने के तरीकों तथा उपकरणों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रम चलाये.

४. ईंधन की बचत को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार से प्रोत्साहन सहायता की सिफारिश. जैसे : घटिया बायलरों को बदलने के लिए आसान शर्तों पर कर्ज की योजना, प्रेशर कुकर जैसे ईंधन में बचत करने वाले उपकरणों पर नये कर समाप्त करना आदि.

यातायात घरेलू, औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों की विभिन्न गतिविधियों में एसोसिएशन ने गत १२ वर्षों में १२ करोड़ रुपये खर्च किये और उन प्रयासों से पेट्रोलियम पदार्थों की जो बचत हुई है, उसका मूल्य है—२८० करोड़ रुपये.

पेट्रोलियम पदार्थों की खपत प्रतिवर्ष तीस लाख टन से भी अधिक रफ्तार से बढ़ रही है. यदि हम मानकर चलें कि किसी नये तेल क्षेत्र में हम २५ प्रतिशत तेल पा सकेंगे और १५ वर्षों तक ३० लाख टन प्रतिवर्ष वहां से मिलेगा तो इसके लिए हमें प्रतिवर्ष एक ऐसे नये तेल क्षेत्र की खोज करनी होगी, जिसकी कुल क्षमता १८ करोड़ टन हो, तभी हम देश की बढ़ती पेट्रोलियम उत्पादों की मांग का मुकाबला कर पायेंगे. पर इस काम के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी उसे जुटाना भी इतना आसान नहीं होगा.

ऊर्जा के लिए गठित कपूर आयोग ने १९८३ में अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया था कि ऊर्जा संरक्षण के उपायों पर यदि ३६०० करोड़ रुपये खर्च किये जायें तो प्रतिवर्ष ऊर्जा की बचत से १९२५ करोड़ रुपये बचाये जा सकेंगे. यानि दो साल में ही इस खर्चे की भरपाई हो जायेगी. अन्यथा इतनी मात्रा में ऊर्जा पैदा करने के लिए ५७६० करोड़ रुपयों के निवेश की आवश्यकता होगी. इसलिए अतिरिक्त ऊर्जा के उत्पादन के लिए नयी सुविधाएं जुटाने के बजाय ऊर्जा की बचत को एक सस्ता विकल्प पाया गया

यंत्रों में, घिसाई कम करने के लिए, उपयोग में आने वाला चिकनाई पैदा करने वाला तेल पेट्रोलियम पदार्थों में सबसे महंगा है. इस समय इसके आयात पर प्रतिवर्ष १५० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च हो रही है. देश में निकलने वाला तेल इसे बनाने के लिए अनुपयोगी है. अतः उसकी खपत कम करने के लिए एसोसिएशन ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं. साथ ही चिकनाई वाले तेलों की बचत के बारे में ५ पुस्तकें भी तैयार की हैं और कई संगोष्ठियां भी आयोजित की हैं.

पेट्रोलियम तथा रसायन मंत्रालय के पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस विभाग ने तेल शोधकों के लिए कई योजनाएं तैयार की हैं, ताकि उन्हें स्तरीय उत्पादों के उत्पादन में सहायता मिल सके. योजना आयोग में विशेषज्ञों के एक दल ने एक ऐसी योजना तैयार की है जिससे सन् २००० में तेल/कोयला/विद्युत की खपत बहुत ही कम हो जायेगी.

इससे जाहिर होता है कि यदि उद्योग, सरकारी एजेंसियां तथा अनुसंधान एवं विकास आदि क्षेत्र कंधे से कंधा मिलाकर काम करें तो इस समस्या का प्रभावी ढंग से मुकाबला किया जा सकता है और ऊर्जा संरक्षण के मामले में लाखों रुपये बचाये जा सकते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९० के दशक के लिए भेल की योजनाएं तथा कार्यक्रम

पी.एस. गुप्ता

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
भारत हेवी इलैक्ट्रिकल्स लि

किसी भी विकासशील देश के आर्थिक विकास तथा समग्र उन्नति के लिए व्यावसायिक ऊर्जा का उत्पादन बहुत महत्व रखता है. राष्ट्रीय स्तर पर हमारे नीति निर्धारकों ने ठीक ही सोचा कि भारत जैसे आकार और विविधताओं वाले देश में बड़े पैमाने पर ऊर्जा के उत्पादन के लिए यह जरूरी है कि इसके लिए आवश्यक उपकरणों का निर्माण देश में ही हो और इस प्रकार भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स (भेल) अस्तित्व में आया.

पचास के दशक के मध्य में भोपाल में इसका पहला कारखाना लगाया गया, जिसके साथ ही भारत में विद्युत उपकरणों के निर्माण कार्य का प्रारंभ भी हो गया. इसके बाद साठ के दशक में हरिद्वार, हैदराबाद तथा तिरुचिरापल्ली में तीन और कारखाने लगाये गये. तीस साल के भीतर-भीतर भेल के प्रयासों का ही परिणाम था कि कहां तो भारत को विद्युत उपकरणों के लिए विदेशों को मुंह ताकना पड़ता था और कहां भारत इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में आ गया. आज देश की कुल ६३००० मेगावाट उत्पादन क्षमता के ६३ प्रतिशत विद्युत का उत्पादन भेल के बने उपकरणों से ही हो रहा है.

आज भेल के कुल १३ कारखाने उत्पादन कार्य में लगे हैं. १८ सर्विस सेंटर हैं. इनके अतिरिक्त देश-विदेश में १०० प्रोजेक्ट साइट पर भेल काम कर रहा है. हैदराबाद में भेल का एक अनुसंधान तथा विकास केंद्र भी है. भेल आज देश के इंजीनियरी संस्थानों में सबसे बड़ा है और दुनिया के प्रतिष्ठित निगमों के साथ सहयोग कर रहा है. ७५ हजार समर्पित कर्मचारियों की सेवा इसे मिल रही है. अमरीका से बाहर के ५०० बड़े निगमों की फॉरचून पत्रिका की ताजा सूची में भेल का भी नाम है.

वर्ष १९८९-९० में भेल का टर्न ओवर २८८५ करोड़ रुपये तथा टैक्स देने से पहले का लाभ १९५ करोड़ रुपये रहा है. यद्यपि कंपनी को देश में विद्युत क्षेत्र की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही गठित किया गया और इन टर्न ओवर का दो-तिहाई देश के विद्युत क्षेत्र से ही प्राप्त होता है पर शेष एक तिहाई उद्योग, ट्रांसमिशन, यातायात तथा तेल एवं गैस क्षेत्र से भी प्राप्त होता है.

कंपनी विदेशों में उत्पादनों तथा सेवाओं की आपूर्ति के अतिरिक्त ४० देशों में परामर्श सेवा भी दे रही है. अंतर्राष्ट्रीय बाजार की तगड़ी प्रतियोगिता के बावजूद कई ऐसे ठेके हासिल किये हैं जिनसे इसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी है. माल्टा को २X६० मेगावाट टी जी सेट, मलेशिया को नये बायलरों के लिए टर्नकी, टर्की के लिए इंसुलेटर, सोवियत संघ के लिए ८०० मेगावाट के कंडेंसर अमरीका को फ्लुडाइजड बैड कंबश्चन बायलर के हिस्सों के ठेके तो भेल को पिछले एक साल में ही मिले हैं.

यह सब कंपनी के योजनाबद्ध ढंग से काम करने के कारण संभव हुआ है. भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए भी कंपनी ने एक निगमित योजना तैयार कर ली है.

९० का दशक हमारे लिए कई आश्चर्यों और कई चुनौतियों को लेकर आया है. ८० के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था में नरमी की प्रक्रिया शुरू हुई. भेल जैसी कंपनी के लिए घरेलू बाजार तक में अपने को बनाये रखने के लिए तगड़े अंतर्राष्ट्रीय मुकाबलों को झेलना पड़ रहा है. गत पांच वर्षों में भेल के टर्न-ओवर का ७० प्रतिशत घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय निर्माताओं के साथ कड़े मुकाबलों के बाद प्राप्त किया गया है. ९० के दशक में और भी कड़े मुकाबलों के लिए कंपनी ने अपने को तैयार कर लिया है.

सुरक्षा, दूरसंचार, यातायात आदि अन्य क्षेत्रों में भी देश में ही ठेके पाने के लिए भेल को अपने से १० से २५ गुना तक बड़ी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के साथ मुकाबला करना पड़ता है. ये कंपनियां बड़े आकार तथा बड़ी अर्थव्यवस्था रखने के कारण भेल की तुलना में अधिक सुविधाजनक स्थिति में होती हैं.

नयी विद्युत उत्पादन इकाइयों से उपकरणों की मांग की कमी को देखते हुए भेल ने तय किया है कि देश में अधिक विद्युत उत्पादन के लिए वर्तमान विद्युत उत्पादन इकाइयों के रख-रखाव उनके नवीकरण तथा उनकी कार्य-अवधि को बढ़ाने के काम में वह अधिक ध्यान देगा ताकि इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में वह अपनी प्रमुखता बनाये रखे.

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उपकरणों के निर्यात को बढ़ाने के लिए भेल ने कुछ देशों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है—ये हैं दक्षिण पूर्व एशिया के देश—माल्टा, साइप्रस, इरान आदि. इन देशों में निर्यात में वृद्धि की संभावनाओं पर काम किया जा रहा है. कुछ सफलता भी मिली है.

१९९५ तक कंपनी का लक्ष्य है कि वार्षिक टर्नओवर ६००० करोड़ रुपये के स्तर तक पहुंचाया जाये. हमें विश्वास है कि संपूर्ण भेल परिवार की इच्छाशक्ति और समर्पणभाव की शक्ति पाकर हम अपनी सारी कठिनाइयों तथा बाधाओं पर काबू पा लेंगे और देश के हित में व्यवसाय के सभी मौकों का भरपूर लाभ उठायेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना कुछ सोचे समझे हमारे वातावरण को बोझिल बनाना और प्रकृति का उस दूषित होते हुए वातावरण को आत्मसात करने में जुट जाना।

किंतु प्रकृति तो सिर्फ़ इतना ही कर सकती है, क्योंकि हम तो पहले से ही उसके साथ न जाने कितना खिलवाड़ कर चुके हैं।

और यह धरती तपने लगती है।

हिमरेखा संकुचित होती जाती है, ध्रुवीय चोटियां पिघलने लगती हैं और समुद्री जल उस ताप के कारण दिगंत को छूने को तत्पर हो जाता है।

जब यह हिम अपना समूचा अस्तित्व खो बैठेगा, तटीय प्रदेश नष्ट हो उस जल प्लावन में डूब जाएंगे।

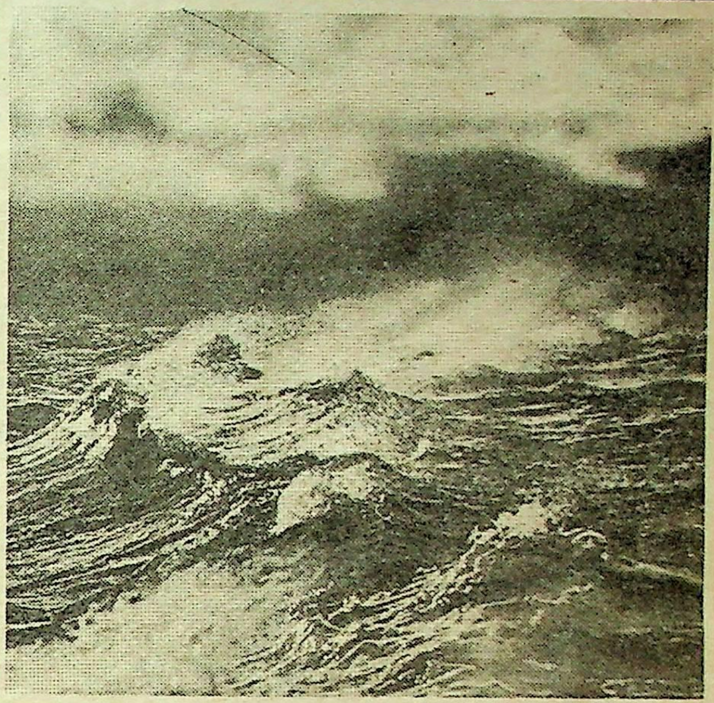

बंबई नगरी कभी यहां बसी थी

न सिडनी होगा, न मायामी, न मांटे कार्लो और न होगी यह बंबई। उनकी जगह होगा यह उफ़नता सागर जल और उन पर छाया होगा एक भयावह सन्नाटा।

और तब ये वाचाल नगर एक कभी न टूटनेवाली ख़ामोशी में खो चुके होंगे।

कुछ ऐसा ही होगा तब।

यदि यह भविष्य आपको तनिक भी भयभीत करता है, तो वह कीजिए जो आपको करना चाहिए।

इस धरती को बचाइए
यही हमारा एक मात्र संसार है

दि मिनरल्स एण्ड मेटल्स ट्रेडिंग कारपोरेशन ऑफ़ इण्डिया लिमिटेड.
स्कोप परिसर, कोर 1, 7 लोदी रोड
नयी दिल्ली-110003.

R K SWAMY/MMTC/5879/HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रय हो ज्यादा –
लेखा जांच हो बाकायदा

आयकर अधिनियम 1961 के अंतर्गत

अनिवार्य लेखा परीक्षा

आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 44 क ख के अंतर्गत व्यापारियों व व्यवसायियों के लिए "निर्धारित तिथि" तक "एकाउंटेंट" से अपने पूर्व वर्ष के खातों का आडिट करवाना अनिवार्य है :

(क) व्यापारी — यदि वार्षिक बिक्री, टर्न ओवर या सकल प्राप्तियां चालीस लाख रुपये से अधिक हों।

(ख) व्यवसायी — यदि वार्षिक प्राप्तियां दस लाख रुपये से अधिक हों।

एकाउंटेंट

या तो "चार्टर्ड एकाउंटेंट" या किसी राज्य के मामले में कोई ऐसा व्यक्ति जो कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 226(2) के अधीन उस राज्य में पंजीकृत कंपनियों के लिए आडिटर के रूप में नियुक्ति के योग्य हो।

निर्धारित तिथि

(क) कंपनी के मामले में : निर्धारण वर्ष के 31 दिसंबर तक
(ख) अन्य मामलों में : निर्धारण वर्ष के 31 अक्तूबर तक

"एकाउंटेंट" से निर्धारित प्रारूप में आडिट रिपोर्ट प्राप्त करें।

उल्लंघन के लिए दंड

कानून के अंतर्गत नियत समय के अंदर ऐसी आडिट रिपोर्ट प्राप्त करने में या अपनी आय की रिटर्न दाखिल करते समय उसे साथ लगाने में भूल करने पर कुल बिक्री, टर्न ओवर या सकल प्राप्तियों के एक बटा दो प्रतिशत के बराबर राशि, जोकि अधिकतम एक लाख रुपये तक है, जुर्माने के रूप में वसूल की जा सकती है।

आयकर विभाग
आयकर निदेशालय (ग सां प्र व जन संपर्क)
नयी दिल्ली-110001

डीएवीपी 90 131

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

'इन्द्रप्रस्थ कहानी संग्रह'

- इस संग्रह में वरिष्ठ पीढ़ी के एवं युवा पीढ़ी के कहानीकारों की रचना-दृष्टि एक साथ ही पाठकों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।
- लगभग 300 पृष्ठ के इस कहानी संग्रह में 35 कहानियां संकलित की गई हैं ।
- ये कहानियां जहां आज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का आईना प्रस्तुत करती हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंक में समेटते हुए मानवीय रिश्तों, संवेदनाओं और परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं ।
- कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए ।
- रॉयल डिमाइ आकार में पक्की जिल्द सहित संग्रह का मूल्य केवल 100/- रु, जिसे सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचे दिये गये पते पर भेजा जा सकता है ।
- अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

—डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव,
हिन्दी अकादमी,
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरेंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110 002.

733950
730274

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अकादमी

महत्वपूर्ण कार्य व उपलब्धियां

सम्मान, पुरस्कार, छात्रवृत्ति आदि

१. **'शलाका' सम्मान :** हिंदी अकादमी का यह सर्वोच्च सम्मान है. यह सम्मान अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी भाषा, साहित्य एवं भाषाई एकता और संस्कृति के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा और योगदान के लिए दिया जाता है.

२. **साहित्यकार सम्मान :** हिंदी भाषा और साहित्य की विशिष्ट सेवा तथा प्रचार व प्रसार के लिए ३९ साहित्यकार पत्रकार और हिंदी-सेवी सम्मानित. सम्मान स्वरूप २१,०००/- रु. की राशि, प्रशस्ति-पत्र व शॉल भेंट.

३. **साहित्यिक कृति पुरस्कार :** रचनात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण साहित्य सृजन के लिए ६७ लेखक पुरस्कृत. पुरस्कार स्वरूप ११,१०१/- रु. की राशि तथा ट्राफी भेंट.

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पुरस्कार भी हैं :

—बाल साहित्य पुरस्कार
—नवोदित लेखक पुरस्कार
—छात्र पुरस्कार
—विश्वविद्यालय कविता पुरस्कार
—शोध छात्रवृत्ति

आर्थिक सहयोग व सहायता

१. **साहित्यकार सहयोग :** ५० से अधिक विपत्तिग्रस्त या ज़रूरतमंद साहित्यकारों अथवा उनके परिवार के आश्रितों को आर्थक सहायोग.

२. **छात्र सहयोग :** २५ छात्रों को उच्च शिक्षा अथवा शोध कार्य के लिए आर्थिक सहयोग.

३. **संस्था सहयोग :** लगभग २५० स्वयंसेवी संस्थाओं को हिंदी के प्रचार व प्रसार से संबद्ध कार्यों के लिए आर्थिक सहयोग.

४. **स्कूल व कॉलेजों को सहयोग :** छात्रों में हिंदी के प्रति रुचि जागृत करने तथा उनकी साहित्यिक प्रतिभा के विकास के लिए स्कूल व कॉलेजों में प्रतियोगिताओं, गोष्ठियों, परिचर्चाओं आदि के आयोजन के लिए सहयोग.

५. **प्रकाशन सहयोग :** लगभग २०० लेखकों को उनकी पांडुलिपियों के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग.

६. **लघु पत्र-पत्रिका सहयोग :** लगभग २५० लघु पत्र-पत्रिकाओं को विज्ञापन के माध्यम से सहयोग.

(इ) गोष्ठियां, सम्मेलन, परिचर्चा आदि

अकादमी द्वारा समय-समय पर साहित्यिक गोष्ठियों, सम्मेलनों, परिचर्चाओं आदि का आयोजन किया जाता है. आयोजित कार्यक्रमों में कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं :

'शिक्षा' गोष्ठी, 'पत्रकारिता' गोष्ठी, 'अनुवाद' गोष्ठी, 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' गोष्ठी, 'भारतेंद्र हरिश्चंद्र. गोष्ठी, 'मैथिलीशरण गुप्त' गोष्ठी, 'मुंशी प्रेमचंद. गोष्ठी, 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद', गोष्ठी, 'हिंदी और राष्ट्रीय एकता' गोष्ठी, 'हिंदी-उर्दू आपसी संबंध' गोष्ठी, 'हिंदी के विकास में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' संगोष्ठी, 'प्रशासनिक कार्यों में हिंदी का प्रयोग व प्रगति' गोष्ठी, 'तुलसी के काव्य में भारतीय संस्कृति' संगोष्ठी, 'आचार्य काका कालेलकर' संगोष्ठी, 'मदन मोहन मालवीय' संगोष्ठी, 'सूर्यकांत त्रिपाठी' 'निराला' गोष्ठी, 'डॉ. जाकिर हुसैन संगोष्ठी, 'संत रविदास' संगोष्ठी, सुब्रह्मण्य भारती' संगोष्ठी, 'दयानंद सरस्वती' संगोष्ठी, 'पं. रामनरेश त्रिपाठी' जन्म शताब्दी संगोष्ठी, 'हिंदी के विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान' विषय पर संगोष्ठी, 'हिंदी के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान' विषय पर संगोष्ठी, 'स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी साहित्यकारों का योगदान' परिचर्चा, 'साहित्य और सौहार्द' परिचर्चा, 'हिंदी के २० बसंत' परिचर्चा, 'हिंदी हम सबकी' परिचर्चा, 'हिंदी शिक्षक' सम्मेलन, हिंदी कार्यकर्ता' सम्मेलन, 'हिंदी दिवस/सप्ताह' का आयोजन, 'अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ एवं अखिल भारतीय हिंदी संथा संघ के सदस्यों में भेंट व वार्ता, 'एकता ज्योति' संयोजन व आयोजन, हरियाणा साहित्य अकादमी के साथ मिलकर 'तुलसी जयंती' का आयोजन, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के दिल्ली में आयोजित ४४वें राष्ट्रीय अधिवेशन में सहयोग.

कवि-सम्मेलन

अकादमी द्वारा प्रतिवर्ष मुख्य रूप से गणतंत्र दिवस तथा स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है. राष्ट्रीय एकता तथा सांप्रदायिक सौमनस्य के प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से कुछ अन्य विशेष अवसरों पर भी राष्ट्रीय कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है. इस श्रृंखला के अंतर्गत अकादमी द्वारा आयोजित 'एकता के स्वर', 'वंदना के स्वर', 'चेतना के स्वर' और 'सौहार्द्र के स्वर' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

पुस्तकालय, वाचनालय व हिंदी केंद्र

हिंदी अकादमी द्वारा मॉडल टाउन स्थित छत्रसाल स्टोडियम में दस हजार से अधिक संदर्भ ग्रंथों वाले एक पुस्तकालय व वाचनालय की स्थापना की गयी है. इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों तथा पुनर्वास कालोनियों में हिंदी, उर्दू और पंजाबी भाषाओं के ६० से अधिक संयुक्त पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना भी की गयी है. अकादमी द्वारा स्वयंसेवी संस्थाओं को भी पुस्तकालय और वाचनालय के लिए सहयोग दिया जाता है.

हिंदी अकादमी द्वारा तीस हजारी, विकास भवन तथा गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, राजघाट, नयी दिल्ली में हिंदी केंद्रों की स्थापना भी की गयी है.

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

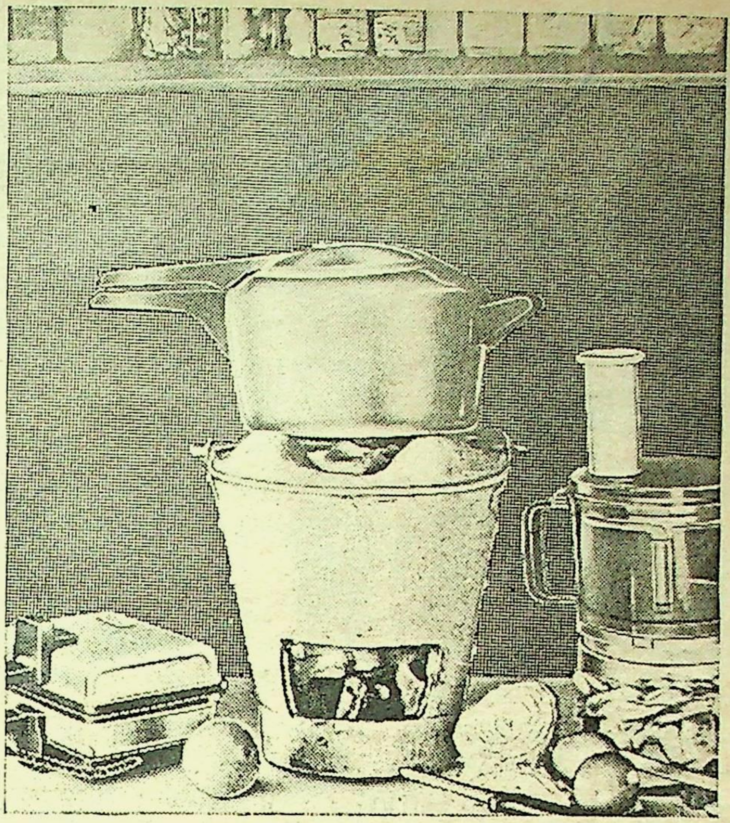

सन् 2010 तक भारतीय गृहणी के लिए एक वक्त का खाना बनाना दिन भर का कार्य हो जाएगा!

क्योंकि सन् 2010 तक हमारे देश के तेल भण्डार रिक्त हो चुके होंगे। तब देश में शायद ना तो कुकिंग गैस होगी, ना मिट्टी का तेल — ना पेट्रोल और ना ही डीज़ल!

हमारी आयात पर पूर्ण निर्भरता सुनिश्चित होगी एवं देश का आयात-निर्यात संतुलन अस्थिर हो जाएगा! पहले से ही हम 6400 करोड़ रुपये मूल्य का पेट्रोलियम आयात करते हैं जो कि हमारे निर्यात की आमदनी का 24% हिस्सा है!

प्रतिवर्ष हम 2000 क़रोड़ रुपये मूल्य के पेट्रोलियम उत्पाद बरबाद करते हैं।

यदि हम इसके संरक्षण के लिए अभी से कदम नहीं उठाएंगे तो सन् 2010 तक भारतीय गृहणी को खाना बनाने के लिए उस ईंधन की जरुरत होगी जो चार दशक पूर्व इस्तेमाल किया जाता था।

अधिक जानकारी व सहायता के लिए लिखें, परामर्श करें या मिलें।

परवाह है, हमें!

कृपया मुझे पेट्रोलियम कंज़रवेशन के बारे में मुफ़्त पुस्तकें भेजें!

नाम________________

पता________________

____

शहर/जिला________________

PCRA

पैट्रोलियम कंजर्वेशन
रिसर्च एसोसिएशन
पोस्ट बॉक्स नं. 572, नई दिल्ली-110001
फोन: 3315868

Mudra:D PCRA:7431 Hin

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य अकादेमी के नये प्रकाशन

पृथ्वी की पीड़ा	लेखक	जोगेश दास	१९८९	४०.०० रुपये
भारतीय अंग्रेजी-साहित्य का इतिहास	लेखक	एम. के. नाईक	१९८९	६०.०० ,,
आधुनिक हंगारी कविता	संपादक	मिकलोश वायेदा	१९८९	५०.०० ,,
माखनलाल चतुर्वेदी	लेखक	श्रीकांत जोशी	१९८९	२०.०० ,,
हिंदी कहानी संग्रह	संपादक	भीष्म साहनी	१९८८	५०.०० ,,
आजादी	लेखक	चमल नाहल	१९८८	६०.०० ,,
बड़ा चिड़ियाघर और अन्य कविताएं	अनुवादक	गिरधर राठी	१९८८	१५.०० ,,
स्वामी दयानंद सरस्वती	लेखक	विष्णु प्रभाकर	१९८९	१०.०० ,,
प्रेमचंद	लेखक	प्रकाशचंद्र गुप्त	१९८९	१०.०० ,,
राजा राममोहन राय	लेखक	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर	१९८९	१०.०० ,,
मार्तिन फिएरों	लेखक	खोसे अर्नान्देस	१९८९	६०.०० ,,

डाक व्यय निःशुल्क ● १०% की छूट.

शुल्क मनीआर्डर/बैंक-ड्राफ्ट द्वारा सचिव, साहित्य अकादेमी के नाम भेजें.

अधिक जानकारी और निःशुल्क सूचीपत्र के लिए लिखें :

बिक्री प्रबंधक

साहित्य अकादेमी

'स्वाति', मंदिर मार्ग

नई दिल्ली-११० ००१

दूरभाष : ३५३२९७

रवींद्र भवन	२९, एल्डाम्स रोड	१७२, मुंबई मराठी ग्रंथ
३५, फ़ीरोज़शाह मार्ग	तेनाम पेठ	संग्रहालय मार्ग, दादर
नई दिल्ली-११० ००१	मद्रास-६०० ०१८	बंबई-४०० ०१४

जीवन तारा बिल्डिंग,
चौथी मंजिल
डायमंड हारबौर रोड
कलकत्ता-७०० ०५३

साक्षरता

हिंदी अकादमी की यह एक नयी योजना है, जिसके अंतर्गत ग्रामीण व पिछड़े इलाकों तथा हरिजन और पुनर्वास बस्तियों में साक्षरता कार्यक्रम को लागू किया गया है. इसके अंतर्गत ग्रामीण व पिछड़े इलाकों तथा हरिजन और पुनर्वास बस्तियों में अनपढ़ तथा निरक्षर व्यक्तियों को हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान (शब्द व अक्षर पहचान) दिये जाने की व्यवस्था है. अब तक रंगपुरी पहाड़, महिपालपुर व अन्य कई बस्तियों में ऐसे केंद्र स्थापित किये जा चुके हैं.

प्रकाशन

हिंदी अकादमी द्वारा कई महत्वपूर्ण प्रकाशन आरंभ किये गये हैं, जिनकी सर्वत्र सराहना की गयी है. इनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं:

१. **'इंद्रप्रस्थ भारती'—त्रैमासिक पत्रिका :** 'इंद्रप्रस्थ भारती' हिंदी अकादमी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है, जिसके पूरे देश में पाठक हैं.

२. **संकल्प :** हिंदी अकादमी द्वारा हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में 'संकल्प' नामक स्मारिका का प्रकाशन किया जाता है. आकदमी द्वारा पिछले वर्ष से स्मारिका के स्थान पर पूर्ण ग्रंथ का प्रकाशन आरंभ किया गया है.

३. **'दिल्ली और आजादी :** 'दिल्ली और आजादी' दिल्ली के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास है. हिंदी अकादमी द्वारा इस पुस्तक का प्रकाशन दिल्ली प्रशासन के स्वतंत्रता सेनानी समन्वय समिति के लिए किया गया है.

४. **'ज्योति कलश' :** हिंदी अकादमी द्वारा गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में लाल किले पर आयोजित कवि सम्मेलन में सुनायी गयी कविताओं को 'ज्योति कलश' नामक पुस्तक में संकलित और प्रकाशित किया जाता है.

५. **'उगती किरणें' :** हिंदी अकादमी द्वारा आयोजित नवोदित लेखक पुरस्कार प्रतियोगिता की पुरस्कृत रचनाओं को 'उगती किरणें' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया जाता है.

६. **'दिल्ली हिंदी साहित्यकार निर्देशिका' :** हिंदी अकादमी द्वारा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र में हिंदी लेखकों, कवियों और साहित्यकारों के संक्षिप्त परिचय 'निर्देशिका' का प्रकाशन किया गया है. इस निर्देशिका में लगभग ५०० साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय शामिल है.

अनुवाद योजना

भाषायी संस्कृति और पारस्परिक आदान-प्रदान के उद्देश्य से हिंदी के श्रेष्ठ साहित्य का अन्य भारतीय भाषाओं में तथा अन्य भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित करने का प्रावधान है.

अन्य विविध

हिंदी अकादमी द्वारा उर्दू, पंजाबी और संस्कृत अकादमी के साथ मिलकर भी संयुक्त कार्यक्रमों का समय-समय पर आयोजन किया जाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्तर रेलवे आपके नित्य जीवन का अभिन्न अंग

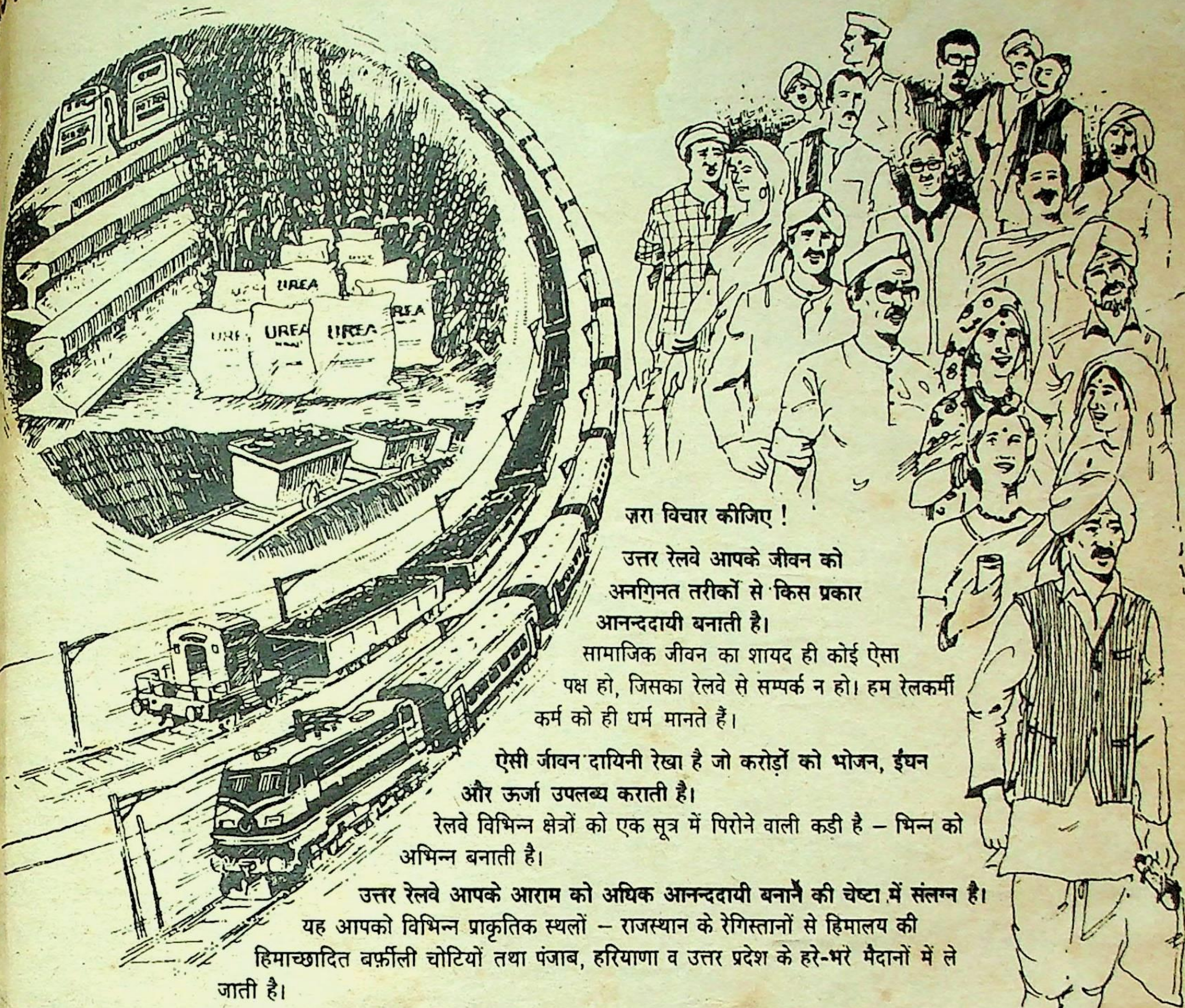

ज़रा विचार कीजिए !

उत्तर रेलवे आपके जीवन को अनगिनत तरीकों से किस प्रकार आनन्ददायी बनाती है।

सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका रेलवे से सम्पर्क न हो। हम रेलकर्मी कर्म को ही धर्म मानते हैं।

ऐसी जीवन दायिनी रेखा है जो करोड़ों को भोजन, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराती है।

रेलवे विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है – भिन्न को अभिन्न बनाती है।

उत्तर रेलवे आपके आराम को अधिक आनन्ददायी बनाने की चेष्टा में संलग्न है।

यह आपको विभिन्न प्राकृतिक स्थलों – राजस्थान के रेगिस्तानों से हिमालय की हिमाच्छादित बर्फ़ीली चोटियों तथा पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के हरे-भरे मैदानों में ले जाती है।

उत्तरी भारत में रेलवे लगभग सवा सौ वर्षों से राष्ट्रीय विकास के प्रत्येक प्रयास – परिवहन, हरित क्रांति, ऊर्जा उत्पादन, तीव्र औद्योगीकरण आदि में सक्रिय योगदान दे रही है।

उत्तर रेलवे प्रतिदिन 900 मेल/एक्सप्रेस एवं सवारी गाड़ियों में 11 लाख यात्रियों का वहन करती है। साथ ही प्रतिदिन 2 लाख टन माल ढोया जाता है।

उत्तर रेलवे की दैनिक गतिविधियों में शामिल हैं –

– 47,000 टन अनाज का उत्तर के उपजाऊ क्षेत्र से देश के विभिन्न भागों को परिवहन.
– 62,000 टन कोयला, उद्योगों के लिए पहुँचाना.
– 15,000 टन पेट्रोलियम पदार्थों का यातायात.
– 17,000 टन खाद ढोना.

ये सब देश में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना की जागृति लाने में सहायक हैं।

रेल पटरियों का जाल, जीवन दायिनी शिराओं और धमनियों की भांति काम कर रहा है।

उत्तर रेलवे करोड़ों देश वासियों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सतत प्रयत्नशील है।

उत्तर रेलवे

उत्तरी क्षितिज में स्थिर और निरंतर चमकता हुआ नक्षत्र है – उत्तर रेलवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कैसे करें?

इसके लिए ग्रामीण विकास पर
योजना
के
स्वतंत्रता दिवस विशेषांक
की
प्रति खरीदें

इस अंक में विख्यात अर्थशास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों प्रशासकों, पर्यावरण वैज्ञानिको... के गहन विश्लेषणो से युक्त महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है।

आज ही अपने आर्डर एजेंट को दे या
व्यावसायिक प्रबंधक,
प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस,
नयी दिल्ली-110001 से संपर्क बनाये रखे।
दूरभाष 387983

योजना : पढ़ने और सुरक्षित रखने योग्य पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar